दैत्यको आते देख श्रीकृष्ण अवहेलनापूर्वक हँसने लगे और अपने स्थानसे तिलभर भी पीछे न हटे। ज्यों ही वह दैत्य समीप आया, मधुसूदनने झट उसके दोनों सींग पकड़ लिये और अपने घुटनेसे उसकी कोखमें प्रहार किया। सींग पकड़ लिये जानेसे वह दानव हिल-डुल नहीं पाता था। उसका अहंकार और बल दोनों नष्ट हो चुके थे। श्रीकृष्णने उसकी गर्दनको भीगे हुए कपड़ेकी भाँति निचोड़ डाला और एक सींग उखाड़कर उसीसे उसपर प्रहार किया। इससे वह महादैत्य मुँहसे रक्त वमन करके मर गया। उसके मारे जानेपर गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की—ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें जम्भासुरके मारे जानेपर देवताओंने इन्द्रकी स्तुति की थी।

कंसका अक्रूरको नन्दगाँव जानेकी आज्ञा देना और केशीका वध तथा भगवान्‌के पास नारदका आगमन

व्यासजी कहते हैं—महर्षियो! जब वृषभरूपधारी अरिष्टासुर, धेनुक और प्रलम्ब आदि असुर मारे जा चुके, गोवर्धन पर्वत धारण करके श्रीकृष्णने गोकुलको बचा लिया, उनके द्वारा कालिय नागका दमन, दोनों यमलार्जुन वृक्षोंका भङ्ग, पूतनाका वध और शकट-भङ्ग आदि घटनाएँ हो गयीं, तब देवर्षि नारदने कंसके पास जाकर क्रमशः सब समाचार कह सुनाया। यशोदा और देवकीके बालकोंमें जो अदला-बदली हुई, वहाँसे लेकर अरिष्ट-वधतककी सारी बातें नारदजीके मुखसे सुनकर खोटी बुद्धिवाले कंसने वसुदेवजीके प्रति बड़ा क्रोध किया और समस्त यादवोंकी सभामें अत्यन्त रोषपूर्वक उलाहना देकर उसने यदुवंशियोंकी बड़ी निन्दा की; फिर आगेके कर्तव्यके विषयमें इस प्रकार विचार किया—'बलराम और कृष्ण दोनों अभी बालक हैं। जबतक वे युवा होकर अत्यन्त बलवान् नहीं हो जाते, तबतक ही मुझे उनका वध कर डालना चाहिये। युवा होनेपर तो वे मेरे काबूके बाहर हो जायँगे। यहाँ महापराक्रमी चाणूर और बलवान् मुष्टिक दोनों पहलवान मौजूद हैं। इनके द्वारा मल्लयुद्धमें उन दोनों मतवाले बालकोंको मरवा डालूँगा। धनुषयज्ञ नामक उत्सव देखनेके बहाने दोनोंको व्रजसे बुलाकर ऐसा यत्न करूँगा, जिससे उनका नाश हो जाय।'

इस प्रकार सोच-विचारकर दुष्टात्मा कंसने बलराम और श्रीकृष्णको मार डालनेका निश्चय किया और वीरवर अक्रूरको बुलाकर कहा—'दानपते! तुम मेरी प्रसन्नताके लिये एक बात मानो, यहाँसे रथपर बैठकर नन्दगाँव जाओ। वहाँ वसुदेवके दो पुत्र हैं, जो मेरा विनाश करनेके लिये विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। वे दोनों दुष्ट बढ़ते जा रहे हैं। चतुर्दशीको धनुषयज्ञका उत्सव होनेवाला है। उसमें कुश्ती लड़नेके लिये उन दोनोंको बुला लाओ। मेरे दो पहलवान चाणूर और मुष्टिक दाँव-पेचमें बहुत

कुशल हैं। इनके साथ यहाँ उन दोनोंकी कुश्ती हो और सब लोग देखें। वसुदेवके दोनों पापी पुत्र अभी बालक ही हैं। द्वारपर आते ही उन दोनोंको महावतकी प्रेरणासे मेरा कुवलयापीड हाथी मार डालेगा। उन दोनोंको मारकर मैं दुष्ट बुद्धिवाले वसुदेव, नन्द और अपने पिता उग्रसेनको भी मौतके घाट उतारूँगा। तत्पश्चात् समस्त गोपोंका गोधन और सारा वैभव छीन लूँगा, क्योंकि वे दुष्ट मेरे वधकी इच्छा करते हैं। दानपते! तुम्हारे सिवा ये सभी यादव बड़े दुष्ट हैं, अतः मैं क्रमशः इनका भी वध करनेके लिये प्रयत्न करूँगा। तदनन्तर यादवोंसे रहित यह समस्त अकण्टक राज्य अकेला ही भोगूँगा। अतः वीर! तुम मेरी प्रसन्नताके लिये वहाँ जाओ। गोपोंसे ऐसा कहना जिससे वे भैंसका घी, दही आदि उपहारकी वस्तुएँ लेकर शीघ्र यहाँ आयें।'

अक्रूरजी बड़े भगवद्भक्त थे। कंसके इस प्रकार आदेश देनेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी बहाने कल भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन तो करूँगा, इस विचारने उन्हें उतावला बना दिया। राजा कंससे 'बहुत अच्छा' कहकर अक्रूरजी शीघ्र ही रथपर सवार हुए और मथुरापुरीसे निकलकर नन्दगाँवकी ओर चल दिये।

इधर कंसका दूत महाबली केशी कंसके ही आदेशसे वृन्दावनमें आया। श्रीकृष्णचन्द्रका वध करना ही उसकी यात्राका उद्देश्य था। उसने घोड़ेका रूप धारण कर रखा था। वह अपनी टापोंसे पृथ्वीको खोदता, गर्दनके बालोंसे बादलोंको उड़ाता तथा वेगसे उछलकर चन्द्रमा और सूर्यके भी मार्गको लाँघता हुआ गोपोंके समीप आया। उसके हींसनेके शब्दसे समस्त गोप और गोपाङ्गनाएँ भयभीत हो भगवान् गोविन्दकी शरणमें गयीं। उनकी त्राहि-त्राहिकी पुकार सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण जलपूर्ण मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर वाणीमें इस प्रकार बोले—'गोपालगण! इस केशीसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। आपलोग तो गोप-जातिके हैं। इस तरह भयसे व्याकुल होकर अपने वीरोचित पराक्रमका लोप क्यों कर रहे हैं। अरे! इस दैत्यमें शक्ति ही कितनी है, यह हमारा क्या कर लेगा। यह तो जोर-जोरसे हिनहिनाकर केवल आतङ्क फैला रहा है। इसपर तो दैत्योंकी सेना सवारी करती है। यह दुष्ट अश्व व्यर्थ ही उछल-कूद मचा रहा है।' ग्वालोंसे यों कहकर भगवान्ने उस दैत्यसे कहा—'ओ दुष्ट! इधर आ। मैं कृष्ण हूँ। जैसे पिनाकधारी वीरभद्रने पूषाके दाँत तोड़ दिये थे, उसी तरह मैं भी तेरे सारे दाँत गिराये देता हूँ।'

यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण केशीके सामने गये। वह दैत्य भी मुँह फैलाकर उनकी ओर दौड़ा। श्रीकृष्णने अपनी बाँहको बढ़ाकर दुष्ट केशीके मुखमें घुसेड़ दिया। उससे टकराकर केशीके सारे दाँत शुभ्र मेघ-खण्डोंकी भाँति छिन्न-भिन्न हो गिर गये। श्रीकृष्णकी भुजा केशीके शरीरमें बढ़ती ही चली गयी। जैसे अवहेलनापूर्वक उपेक्षा किया हुआ रोग धीरे-धीरे बढ़कर विनाशका कारण बन जाता है, वैसे ही वह भुजा भी उस दैत्यकी मृत्युका साधन बन गयी। उसके जबड़े फट गये। वह मुखसे फेन और रक्त फेंकने लगा। नस-नाड़ियोंके बन्धन टूट जानेसे उसके दोनों जबड़े बिलग हो गये।

वह लीद और पेशाब करता हुआ धरतीपर पैर पटकने लगा। उसका सारा शरीर पसीनेसे तर हो गया और वह थककर प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उसकी सारी हलचल समाप्त हो गयी। जैसे बिजली गिरनेसे किसी वृक्षके दो टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी भुजासे वह महाभयंकर असुर दो टुकड़े होकर गिर पड़ा। केशीको मारनेसे श्रीकृष्णके शरीरमें कोई थकावट नहीं हुई। वे स्वस्थरूपसे हँसते हुए वहीं खड़े रहे। उस दैत्यके मारे जानेसे गोप और गोपियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे श्रीकृष्णको सब ओरसे घेरकर आश्चर्यचकित हो उनकी स्तुति करने लगे। इसी समय देवर्षि नारद बड़ी उतावलीके साथ वहाँ आये और बादलोंमें स्थित हो गये। केशीको मारा गया देख वे हर्षसे फूले नहीं समाते थे।

नारदजी बोले—जगन्नाथ ! आपको धन्यवाद है। अच्युत! आपने खेल-खेलमें ही इस केशीको मार डाला। यह देवताओंको बड़ा क्लेश दिया करता था। मधुसूदन ! आपने इस अवतारमें जो-जो महान् कर्म किये हैं, उनसे मेरे चित्तको बड़ा आश्चर्य और संतोष हुआ है। यह अश्वरूपधारी दैत्य जब गर्दनके बालोंको हिलाते और हिनहिनाते हुए आकाशकी ओर देखता था, उस समय देवराज इन्द्र और सम्पूर्ण देवता भी थर्रा उठते थे। जनार्दन! आपने दुष्टात्मा केशीका वध किया है, इसलिये अब लोकमें आप 'केशव' नामसे विख्यात होंगे। आपका कल्याण हो, अब मैं जाऊँगा और परसों कंसके यहाँ आपके साथ जो युद्ध होगा, उसमें फिर सम्मिलित होऊँगा। धरणीधर! उग्रसेनकुमार कंस जब अपने अनुचरोंसहित मारा जायगा, उस समय पृथ्वीका भार आप बहुत कुछ उतार देंगे। उसके बाद भी राजाओंके साथ आपके अनेक युद्ध हमें देखनेको मिलेंगे। गोविन्द! आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया और मुझे भी बहुत आदर दिया। आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ।

यों कहकर नारदजी चले गये। तब श्रीकृष्ण अत्यन्त सौम्यभावसे ग्वालोंके साथ गोकुलमें चले आये।

अक्रूरका नन्दगाँवमें जाना, श्रीराम-कृष्णकी मथुरायात्रा, गोपियोंकी कथा, अक्रूरको यमुनामें भगवद्दर्शन, उनके द्वारा भगवान्‌की स्तुति, मथुरा-प्रवेश, रजक-वध और मालीपर कृपा

व्यासजी कहते हैं—अक्रूरजी शीघ्र चलनेवाले रथपर चढ़कर मथुरासे निकले और श्रीकृष्णके दर्शनका लोभ लेकर नन्दगाँवकी ओर चल दिये। मार्गमें सोचने लगे—"अहा! मुझसे बढ़कर सौभाग्यशाली कोई नहीं है, क्योंकि आज मैं अंशसहित अवतीर्ण हुए साक्षात् भगवान् विष्णुका मुख देखूँगा। आज मेरा जन्म सफल हुआ और आनेवाला प्रभात बहुत ही सुन्दर होगा। क्योंकि मैं विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् विष्णुके मुखका दर्शन करूँगा। जो स्मरण अथवा ध्यानमें आकर भी मनुष्यके सारे पाप हर लेता है, वही कमल-सदृश नेत्रोंवाला श्रीविष्णुका सुन्दर मुख आज मुझे देखनेको मिलेगा। जिससे सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गोंका प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो देवताओंके लिये सर्वश्रेष्ठ आश्रय है, भगवान्‌के उसी मुखका आज मैं दर्शन करूँगा।* ब्रह्मा, इन्द्र,

* चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया। योऽहमंशावतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चक्रिणः॥
अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाता च मे निशा। यदुत्रिद्राब्जपत्राक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम्॥
पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं संकल्पनामयम्। तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम्॥
निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च। द्रक्ष्यामि यत्परं धाम देवानां भगवन्मुखम्॥
(१९१। २—५)

रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्गण जिनके स्वरूपको नहीं जानते, वे श्रीहरि आज मेरा स्पर्श करेंगे। जो सर्वात्मा, सर्वव्यापी, सर्वस्वरूप, सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित, अव्यय एवं व्यापी परमात्मा हैं, वे ही आज मेरे नेत्रोंके अतिथि होंगे। जिन्होंने अपनी योगशक्तिसे मत्स्य, कूर्म, वराह और नरसिंह आदि अवतार ग्रहण किये थे, वे ही भगवान् आज मुझसे वार्तालाप करेंगे। स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले अविनाशी जगन्नाथ इस समय कार्यवश व्रजमें निवास करनेके लिये मानवरूप धारण किये हुए हैं। जो भगवान् अनन्त अपने मस्तकपर इस पृथ्वीको धारण करते हैं, वे ही जगत्का हित करनेके लिये अवतीर्ण हो आज मुझे 'अक्रूर' कहकर बुलायेंगे। पिता, पुत्र, सुहृद्, भ्राता, माता और बन्धु-बान्धवरूपिणी जिनकी मायाको यह जगत् हटा नहीं पाता, उन भगवान्को बारंबार नमस्कार है। जिनको हृदयमें स्थापित करके मनुष्य इस योगमायारूप फैली हुई अविद्याको तर जाते हैं, उन विद्यास्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जिन्हें यज्ञपरायण मनुष्य यज्ञपुरुष, भगवद्भक्त-जन वासुदेव और वेदान्तवेत्ता सर्वव्यापी श्रीविष्णु कहते हैं, उनको मेरा नमस्कार है। जो सम्पूर्ण जगत्के निवासस्थान हैं, जिनमें सत् और असत् दोनों प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् अपने सहज सत्त्वगुणसे मुझपर प्रसन्न हों। जिनका स्मरण करनेपर मनुष्य पूर्ण कल्याणका भागी होता है, उन पुरुषश्रेष्ठ श्रीहरिकी मैं सदाके लिये शरण लेता हूँ।*

अक्रूरका हृदय भक्तिसे विनम्र हो रहा था। वे इस प्रकार श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए कुछ दिन रहते नन्दगाँवमें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको उस स्थानपर देखा, जहाँ गौएँ दुही जा रही थीं। वे बछड़ोंके बीचमें खड़े थे। उनका श्रीअङ्ग विकसित नीलकमलकी आभासे सुशोभित था। नेत्र खिले हुए कमलकी शोभा धारण करते थे। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न दिखायी देता था। बड़ी-बड़ी बाँहें, चौड़ी और उभरी हुई छाती, ऊँची नासिका, विलासयुक्त मुसकानसे सुशोभित मुख, लाल-लाल नख, शरीरपर पीताम्बर, गलेमें जंगली पुष्पोंके हार, हाथमें स्निग्ध नील लता और कानोंमें श्वेत कमलपुष्पके आभूषण—यही उनकी झाँकी थी। उनके दोनों चरण भूमिपर विराजमान थे। श्रीकृष्णका दर्शन करनेके बाद अक्रूरजीकी दृष्टि यदुनन्दन बलभद्रजीपर पड़ी, जो हंस, चन्द्रमा और कुन्दके समान गौरवर्ण थे। उनके शरीरपर नील वस्त्र शोभा पा रहे थे। उनकी कद ऊँची और बाँहें बड़ी-बड़ी थीं। मुख प्रफुल्ल कमल-सा सुशोभित था। नीलाम्बरधारी गौराङ्ग बलभद्रजी ऐसे जान पड़ते थे, मानो मेघमालासे घिरा हुआ दूसरा

---

* न ब्रह्मा नेन्द्ररुद्राश्विवस्वादित्यमरुद्गणाः। यस्य स्वरूपं जानन्ति स्पृशत्यद्य स मे हरिः॥
सर्वात्मा सर्वगः सर्वः सर्वभूतेषु संस्थितः। यो भवत्यव्ययो व्यापी स वीक्ष्यते मयाऽद्य ह॥
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैः सिंहरूपादिभिः स्थितम्। चकार योगतो योगं स मामालापयिष्यति॥
सांप्रतं च जगत्स्वामी कार्यजाते व्रजे स्थितिम्। कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्वेच्छादेहधृगव्ययः॥
योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थिताम्। सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्रूरेति वक्ष्यति॥
पितृबन्धुसुहृद्भ्रातृमातृबन्धुमयीमिमाम्। यन्मायां नालमुद्धर्तुं जगत्तस्मै नमो नमः॥
तरन्त्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते। योगमायामिमां मर्त्यास्तस्मै विद्यात्मने नमः॥
यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च सात्वतैः। वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम्॥
तथा यत्र जगद्धात्रि धार्यते च प्रतिष्ठितम्। सदसत्त्वं स तत्त्वेन मय्यसौ यातु सौम्यताम्॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषप्रवरं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥
(१९१। ८—१७)

कैलास पर्वत हो।* उन दोनों भाइयोंको देखकर महाबुद्धिमान् अक्रूरजीका मुखकमल प्रसन्नतासे खिल उठा। सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे मन-ही-मन इस प्रकार कहने लगे—'इन दोनों बन्धुओंके रूपमें यहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु विराज रहे हैं। ये ही वह परम धाम और ये ही वह परम पद हैं। अनन्तमूर्ति भगवान् आज ही मेरे हाथका स्पर्श करके उसे शोभासम्पन्न बनायेंगे। इन्हीं भगवान्‌की अँगुलियोंके स्पर्शसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जानेके कारण मनुष्य उत्तमोत्तम सिद्धि प्राप्त करते हैं तथा अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र और वसु आदि देवता प्रसन्न होकर उन्हें उत्तम वर देते हैं। इन्हीं भगवान्‌ने दैत्यराजकी सेनाका विनाश करके दैत्यपत्नियोंकी आँखोंका काजल भी छीन लिया। राजा बलिने जिनके हाथमें संकल्पका जल छोड़कर रसातलमें रहते हुए भी मनोहर स्वर्गीय भोग प्राप्त कर लिये तथा देवराज इन्द्रने जिनकी आराधना करके एक मन्वन्तरके लिये देवलोकका अखण्ड साम्राज्य प्राप्त किया, वे ही भगवान् कंसके साथ रहनेके कारण निर्दोष होते हुए भी दोषके पात्र बने हुए मुझ अक्रूरका क्या आदर न करेंगे? जो साधु पुरुषोंसे बहिष्कृत हैं उसके जन्मको धिक्कार है। भगवान् श्रीहरि ज्ञानस्वरूप हैं। परिपूर्ण सत्त्वके पुञ्ज हैं। सब प्रकारके दोषोंसे रहित हैं, अव्यक्त हैं और समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं। जगत्‌में कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो उन्हें ज्ञात न हो। अतः मैं भक्तिसे विनीत होकर आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, पुरुषोत्तम, भगवान् विष्णुके अंशावतार तथा ईश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णकी शरणमें जाता हूँ।'

इस प्रकार विचार करते हुए वे भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और 'मैं यदुवंशी अक्रूर हूँ'—यों कहकर उनके चरणोंमें पड़ गये। भगवान्‌ने भी ध्वजा, वज्र और कमल आदि चिह्नोंसे सुशोभित अपने करकमलद्वारा उनका स्पर्श किया और उन्हें खींचकर प्रेमपूर्वक गाढ़ आलिङ्गन दिया। फिर बलराम और श्रीकृष्णने उनसे बातचीत की और उन्हें साथ ले अपने भवनमें चले गये। परस्पर प्रणाम आदिके बाद अक्रूरने दोनों भाइयोंके साथ बैठकर भोजन किया और यथायोग्य उनसे सब बातें निवेदन कीं। दुरात्मा दानव कंसने वसुदेव

---

* स ददर्श तदा तत्र कृष्णमादोहने गवाम्। वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम्॥
प्रफुल्लपद्मपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्। प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरःस्थलमुन्नसम्॥
सविलासस्मिताधारं बिभ्राणं मुखपङ्कजम्। तुङ्गरक्तनखं पद्भ्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम्॥
बिभ्राणं बाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम्। सान्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम्॥
हंसेन्दुकुन्दधवलं नीलाम्बरधरं द्विजाः। तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम्॥
प्रांशुमुत्तुङ्गबाहुं च विकाशिमुखपङ्कजम्। मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम्॥
(१९१। १९—२४)

और देवकीको जिस प्रकार धमकाया था, उग्रसेनके प्रति जैसा उसका बर्ताव था और जिस उद्देश्यसे कंसने उन्हें व्रजमें भेजा था, वह सब विस्तारके साथ कह सुनाया। सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'ये सब बातें मुझे ज्ञात हैं। इस विषयमें जो उचित कर्तव्य है, उसे मैं करूँगा। आप अन्यथा विचार न करें। कंसको मारा गया ही समझें। मैं बलरामजीसहित कल आपके साथ मथुरा चलूँगा। बड़े-बूढ़े गोप भी भेंटकी बहुत-सी सामग्री लेकर जायँगे। वीर! आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। आरामसे यहाँ रात बितायें। आजसे तीन रातके भीतर ही मैं अनुचरोंसहित कंसको मार डालूँगा।'

तदनन्तर गोपोंको मथुरा चलनेका आदेश दे अक्रूर, श्रीकृष्ण तथा बलरामजी नन्दके घरमें सोये। सबेरा होनेपर महाबली राम और श्रीकृष्ण अक्रूरके साथ मथुरा जानेको तैयार हो गये, यह देख गोपियोंके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे चिन्तासे इतनी दुर्बल हो गयीं कि उनके कंगन और बाजूबंद खिसक-खिसककर गिरने लगे। वे दु:खसे पीड़ित हो लंबी साँस लेती हुई एक दूसरीसे कहने लगीं—'सखी! गोविन्द मथुरा जाते हैं। वहाँ जाकर वे इस गोकुलमें फिर क्यों आने लगे। वहाँ तो अपने कानोंद्वारा नगरकी स्त्रियोंके मधुर वार्तालापका रस पान करेंगे। नगरकी नारियोंके विलासपूर्ण वचनोंमें जब इनका मन आसक्त हो जायगा, तब फिर गाँवोंकी रहनेवाली इन गँवार गोप-गोपियोंकी ओर उनका झुकाव कैसे हो सकेगा। हाय ! श्रीहरि सम्पूर्ण व्रजके प्राण थे। इन्हें छीनकर दुरात्मा और निर्दयी विधाताने हम गोपियोंपर निष्ठुर प्रहार किया है। नगरकी युवतियाँ भावभरी मुसकानके साथ बात करती हैं। उनकी गतिमें लालित्य है। वे कटाक्षपूर्ण नेत्रोंसे देखती हैं। अत: ये हमलोगोंके पास क्यों आने लगे। यह देखो, गोविन्द रथपर बैठकर मथुरा जाते हैं। क्रूर अक्रूरने उन्हें चकमा दिया है। क्या इस निर्दयीको प्रेमीजनोंकी मानसिक वेदनाका अनुभव नहीं है, जो यह हमारे नयनानन्द गोविन्दको अन्यत्र लिये जाता है? गोविन्द भी आज अत्यन्त निष्ठुर हो गये हैं। देखो न, बलरामजीके साथ रथपर बैठकर चले जा रहे हैं। अरी ! इन्हें रोकनेमें शीघ्रता करो। ऐं! क्या कहती हो—गुरुजनोंके सामने हमारा कुछ बोलना उचित नहीं है ? अरी! हम तो यों ही विरहकी आगमें जल रही हैं। अब ये गुरुजन हमारा क्या कर लेंगे। हाय ! ये नन्दबाबा आदि भी जानेको उद्यत हैं। कोई भी श्रीकृष्णको लौटानेका उद्योग नहीं करता। आज मथुरावासिनी युवतियोंके नेत्ररूपी भ्रमर श्रीकृष्णके मुखकमलका मकरन्द पान करेंगे। वे लोग धन्य हैं, जो मार्गमें पुलकित शरीरसे बेरोक-टोक श्रीकृष्णका दर्शन करेंगे। आज गोविन्दका दर्शन पाकर मथुराकी नागरियोंके नेत्रोंमें महान् आनन्द छा जायगा।

आज उन भाग्यशालिनी युवतियोंने कौन-सा शुभ स्वप्न देखा है, जो वे अपने विशाल एवं कमनीय नेत्रोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरीका पान करेंगी।

अहो! विधाताको किञ्चिन्मात्र भी दया नहीं है। उसने हम गोपियोंको बहुत बड़ी निधिका दर्शन कराकर हमारी आँखें ही निकाल लीं। हमारे प्रति श्रीकृष्णका अनुराग ज्यों-ज्यों शिथिल होता जाता है, त्यों-ही-त्यों हमारे हाथोंके कङ्कण भी शीघ्रतापूर्वक ढीले होते जा रहे हैं। अक्रूरका हृदय बहुत ही क्रूर है। वह घोड़ोंको बहुत जल्दी-जल्दी हाँकता है। हम-जैसी आर्त स्त्रियोंपर उसे छोड़ किसको दया नहीं आयेगी। अरी ! वह देखो, श्रीकृष्णके रथकी धूल बहुत ऊँचेपर दिखायी देती है। हाय! अब वह धूल भी नहीं दिखायी देती। अब वह भगवान्‌को बहुत दूर ले गयी।' इस प्रकार गोपियोंके अत्यन्त अनुरागपूर्वक देखते-देखते बलरामसहित श्रीकृष्णने व्रजके उस भूभागका परित्याग किया। रथके घोड़े बहुत तेज चलनेवाले थे; अतः बलराम, अक्रूर और श्रीकृष्ण दोपहर होते-होते मथुराके समीपवर्ती यमुना-तटपर पहुँच गये।

तब अक्रूरने श्रीकृष्णसे कहा—'आप दोनों भाई यहीं रथपर बैठे रहें। तबतक मैं यमुनाके जलमें नैत्यिक स्नान और पूजन कर लेता हूँ।' श्रीकृष्णने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली। परम बुद्धिमान् अक्रूरने यमुनाके जलमें प्रवेश करके स्नान और आचमन किया। तत्पश्चात् वे परब्रह्मका चिन्तन करने लगे। उन्हें जलके भीतर सहस्रों फणोंसे युक्त बलभद्रजी दिखायी दिये। उनका शरीर कुन्दके समान गौर और नेत्र कमलपत्रके समान विशाल थे। वासुकि तथा डिम्भ आदि बड़े-बड़े नाग उन्हें घेरे हुए स्तुति कर रहे थे। गलेमें सुगन्धित वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। वे दो नील वस्त्र और सुन्दर कर्णभूषण धारण किये मनोहर गेंडुली मारे जलके भीतर विराजमान थे। उनकी गोदमें भगवान् श्रीकृष्ण दृष्टिगोचर हुए, जो सजल मेघके समान श्याम, किञ्चित् लालिमायुक्त विशाल नेत्रोंवाले, चतुर्भुज, सुन्दर और चक्र आदि आयुधोंसे विभूषित थे। उन्होंने दो पीताम्बर धारण कर रखे थे। विचित्र-विचित्र हार उनकी शोभा बढ़ाते थे। इन्द्रधनुष और विद्युन्मालासे विभूषित मेघकी भाँति उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न सुशोभित था। भुजाओंमें भुजबन्ध और मस्तकपर मुकुट देदीप्यमान था। कानोंमें कमलपुष्प कुण्डलका काम देता था। सनन्दन आदि पापरहित सिद्ध योगी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये मन-ही-मन भगवान्‌का ध्यान करते थे। बलराम और श्रीकृष्णको वहाँ पहचानकर अक्रूर बड़े आश्चर्यमें पड़े। वे सोचने लगे, 'दोनों भाई इतना शीघ्र यहाँ कैसे आ गये ?' अक्रूरने कुछ बोलना चाहा, किंतु श्रीकृष्णने उनकी वाणीको स्तम्भित कर दिया। तब वे जलसे निकलकर रथके पास आये, किंतु वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण पहलेकी ही भाँति बैठे दिखायी दिये। तब उन्होंने पुनः जलमें डुबकी लगायी। भीतर वही दृश्य दिखायी दिया। गन्धर्व,

मुनि, सिद्ध तथा बड़े-बड़े नाग श्रीकृष्ण और बलरामकी स्तुति करते थे। यह सब देखकर दानपति अक्रूरको वास्तविक रहस्यका पता लग

गया। वे पूर्ण विज्ञानमय भगवान् अच्युतकी स्तुति करने लगे—

'जिनका सत्तामात्र स्वरूप है, महिमा अचिन्त्य है, जो सर्वत्र व्यापक हैं, जो कारणरूपसे एक, किंतु कार्यरूपसे अनेक हैं, उन परमात्माको बारंबार नमस्कार है। अचिन्त्य परमेश्वर ! आप शब्द (वैदिक मन्त्र)-रूप और हवि:स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। प्रभो! आप प्रकृतिसे परे विज्ञानस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और परमात्मा हैं। इस प्रकार एक होते हुए भी आप पाँच प्रकारसे स्थित हैं। सर्वधर्मात्मन् महेश्वर! आप ही क्षर और अक्षर हैं। मुझपर प्रसन्न होइये। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि नामोंसे आपका ही वर्णन किया जाता है। भगवन् ! आपके स्वरूप, प्रयोजन और नाम आदि सभी अनिर्वचनीय हैं। आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है। नाथ ! जहाँ नाम और जाति आदि कल्पनाओंका अस्तित्व नहीं है, वह नित्य, अविकारी और अजन्मा परब्रह्म आप ही हैं। कल्पनाके बिना—कोई व्यावहारिक नाम रखे बिना किसी भी पदार्थका ज्ञान नहीं होता। इसीलिये कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामोंसे आपकी स्तुति की जाती है। सर्वात्मन्! आप अजन्मा परमेश्वर हैं। जगत्में जितनी कल्पनाएँ हैं, उन सबके द्वारा आपका ही बोध होता है। आप ही देवता हैं, सम्पूर्ण जगत् हैं तथा विश्वरूप हैं। विश्वात्मन् ! आप विकार और भेदसे सर्वथा रहित हैं, सम्पूर्ण विश्वमें आपके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। आप ही ब्रह्मा, महादेवजी, सूर्य, धाता, विधाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम हैं। एकमात्र आप ही भिन्न-भिन्न रूप धारण करके अपनी विभिन्न शक्तियोंसे जगत्की रक्षा करते हैं। आप ही विश्वकी सृष्टि करते हैं और आप ही प्रलयकालीन सूर्य होकर सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं। अज! यह गुणमय प्रपञ्च आपका ही स्वरूप है। सत्स्वरूप परमेश्वरका वाचक जो ॐकाररूप अक्षर है, वह आपका उत्कृष्ट स्वरूप है। वही सत्, असत् और ज्ञानात्मा है। आपके उस स्वरूपको मेरा प्रणाम है। भगवन् ! वासुदेवरूपमें आपको नमस्कार है। संकर्षण-संज्ञा धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। प्रद्युम्न कहलानेवाले आपको नमस्कार है और अनिरुद्ध नामसे पुकारे जानेवाले आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार जलके भीतर यदुवंशी अक्रूरने सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करके मानसिक धूप और पुष्पोंद्वारा उनका पूजन किया। अन्य विषयोंका चिन्तन छोड़कर मनको उन ब्रह्मभूत परमात्मामें लगा दीर्घकालतक ध्यान किया। तत्पश्चात् समाधिसे विरत हो अपनेको कृतार्थ मानते हुए यमुना-जलसे निकलकर वे पुन: रथके समीप आये। आनेपर उन्होंने बलराम और श्रीकृष्णको पूर्ववत् बैठे देखा। अक्रूरजीके नेत्रोंसे विस्मयका आभास मिलता था। यह देख श्रीकृष्णने उनसे कहा—'अक्रूरजी! आपने यमुनाके जलमें कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है, जो आपके नेत्र आश्चर्यचकित दिखायी देते हैं?'

अक्रूर बोले—अच्युत ! जलके भीतर मैंने जो आश्चर्य देखा है, उसे यहीं अपने सामने मूर्तिमान् बैठा देखता हूँ। यह परम आश्चर्यमय जगत् जिन महात्माका स्वरूप है, उन्हीं आश्चर्यस्वरूप आपके साथ मेरा समागम हुआ है। मधुसूदन! अब इस विषयमें अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। चलिये, मथुरा चलें। मैं कंससे डरता हूँ। जो दूसरोंके टुकड़ोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले हैं, उन मनुष्योंके जन्मको धिक्कार है।

यों कहकर अक्रूरने घोड़ोंको हाँक दिया और सायंकालके समय मथुरापुरीमें जा पहुँचे। मथुराको देखकर अक्रूरने बलराम और श्रीकृष्णसे कहा—'महापराक्रमी वीरो! अब आपलोग पैदल जाइये। रथसे मैं अकेला ही जाऊँगा। मथुरामें पहुँचकर

आप दोनों वसुदेवजीके घर न जायँ, क्योंकि आपके ही कारण वह बेचारा बूढ़ा कंसके द्वारा सदा अपमानित होता है।'

यों कहकर अक्रूर मथुरापुरीमें चले गये। राम और श्रीकृष्ण भी पुरीमें पहुँचकर राजमार्गपर आ गये। उस समय नगरके सभी स्त्री-पुरुष आनन्दपूर्ण नेत्रोंसे उन्हें निहारते थे। वे दोनों वीर तरुण हाथियोंकी भाँति लीलापूर्वक चल रहे थे। घूमते-घूमते उन दोनों भाइयोंने कपड़ा रँगनेवाले एक रजकको देखा। उससे अपने शरीरके अनुरूप सुन्दर वस्त्र माँगे। वह राजा कंसका रजक था। राजाकी कृपा पाकर उसका अहंकार बहुत बढ़ गया था। उसने बलराम और श्रीकृष्णके प्रति ललकारकर अनेक आक्षेपयुक्त कटुवचन कहे। उस दुरात्मा रजकका बर्ताव देख श्रीकृष्ण कुपित हो उठे। उन्होंने थप्पड़से मारकर उस रजकका मस्तक पृथ्वीपर गिरा दिया। उसे मारकर राम और कृष्णने उसके सारे वस्त्र छीन लिये और अपनी रुचिके अनुसार पीले एवं नीले वस्त्र धारण करके वे बड़ी प्रसन्नताके साथ मालीके घर गये। उन्हें देखते ही मालीके नेत्र आनन्दसे खिल उठे। वह अत्यन्त विस्मित होकर मन-ही-मन सोचने लगा, 'ये दोनों किसके पुत्र हैं? कहाँसे आये हैं? एकके अङ्गपर पीताम्बर शोभा पाता है तो दूसरेके शरीरपर नीलाम्बर। दोनों ही अत्यन्त मनोहर दिखायी देते हैं।' उन्हें देखकर मालीने समझा—दो देवता इस भूतलपर उतरे हैं। उन दोनों भाइयोंके मुखकमल प्रफुल्लित दिखायी देते थे। मालीने दोनों हाथ पृथ्वीपर फैलाकर सिरसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'नाथ! आप दोनों बड़ी कृपा करके मेरे घर पधारे हैं! मैं धन्य हो गया। अब पुष्पोंसे आप दोनोंकी पूजा करूँगा।' यों कहकर उसने रुचिके अनुसार फूल भेंट किये। 'ये सुन्दर हैं, ये मनोहर हैं,' यों कहते हुए उसने उनके मनमें फूलोंके प्रति आकर्षण पैदा किया और जो-जो उन्हें पसंद आया, वह सब दिया। प्रायः सभी फूल मनोहर, निर्मल और सुगन्धित थे। श्रीकृष्णने भी

प्रसन्न होकर मालीको वर दिया— 'भद्र! मेरे अधीन रहनेवाली लक्ष्मी तेरा कभी त्याग न करेगी। सौम्य! तेरे बल और धनकी कभी हानि न होगी। जबतक यह पृथ्वी और सूर्य रहेंगे, तबतक तेरी पुत्र-पौत्र आदि वंश-परम्परा कायम रहेगी। तू बहुत-से भोग भोगकर अन्तमें मेरी कृपासे मुझे स्मरण करते हुए दिव्य लोक प्राप्त करेगा। भद्र! तेरा मन हर समय धर्ममें लगा रहेगा।'

यों कहकर बलरामसहित श्रीकृष्ण मालीद्वारा पूजित हो उसके घरसे चले आये।

कुब्जापर कृपा, कुवलयापीड, चाणूर, मुष्टिक, तोशल और कंसका वध तथा वसुदेवद्वारा भगवान्‌का स्तवन

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीकृष्णने राजमार्गपर एक कुब्जा स्त्री देखी, जो अङ्गरागसे भरा हुआ पात्र लिये आ रही थी। उसे देखकर श्रीकृष्णने पूछा—'कमललोचने! तू यह अङ्गराग किसके पास लिये जाती है? सच-सच बता।' उनकी बात सुनकर वह श्रीहरिके प्रति अनुरक्त हो गयी और बोली—'प्रिय ! क्या आप नहीं जानते, कंसने मुझे अङ्गराग लगानेका कार्य सौंप रखा है? मैं अनेकवक्राके नामसे विख्यात हूँ। मेरे सिवा दूसरे किसीका घिसा हुआ चन्दन कंसको पसंद नहीं आता।'

श्रीकृष्ण बोले—सुमुखि ! यह सुन्दर सुगन्धयुक्त अनुलेपन तो राजाके ही योग्य है। हमारे शरीरके योग्य भी कोई अनुलोपन हो तो दो।

यह सुनकर कुब्जाने आदरपूर्वक कहा—'लीजिये न।' फिर उन दोनोंको उनके शरीरके अनुरूप चन्दन आदि अनुलेप प्रदान किया। कुब्जाने ही उनके कपोल आदि अङ्गोंमें पत्रभङ्गीरचनापूर्वक अङ्गराग लगाया। इससे वे दोनों पुरुषरत्न इन्द्रधनुषके साथ शोभा पानेवाले श्वेत-श्याम मेघोंके समान सुशोभित हुए। तत्पश्चात् उल्लापन-विधि (कुब्जत्व दूर करनेकी क्रिया)-के जाननेवाले श्रीकृष्णने उसकी ठोढ़ीमें अपने हाथकी दो उँगलियाँ लगा दीं और उसे उचकाकर ऊपरकी ओर खींचा। साथ ही उसके पैर अपने दोनों पैरोंसे दबा लिये। इस प्रकार केशवने उसके शरीरको सीधा कर दिया। फिर तो वह युवतियोंमें श्रेष्ठ परम सुन्दरी बन गयी और प्रेमसे शिथिल वाणीमें बोली—'प्यारे! आप मेरे घरमें पधारें।' 'अच्छा, तुम्हारे घर आऊँगा' यों कहकर श्रीकृष्णने कुब्जाको विदा किया और बलरामजीके मुँहकी ओर देखकर वे जोरसे हँसे। तदनन्तर पत्र-रचनापूर्वक अङ्गराग लगाये और पीताम्बर तथा नीलाम्बर धारण किये विचित्र पुष्पोंके हारसे सुशोभित वे दोनों भाई धनुषशालामें गये। वहाँ उन्होंने रक्षकोंसे धनुषके विषयमें पूछा और उनके बतलानेपर उसे उठाकर चढ़ाया। बलपूर्वक चढ़ाते ही वह धनुष टूट गया। उससे बड़े जोरका शब्द हुआ, जिससे सारी मथुरापुरी गूँज उठी। धनुष टूटनेपर रक्षकोंने उनपर आक्रमण किया। तब वे रक्षक-सेनाका संहार करके धनुषशालासे बाहर निकले। कंसको अक्रूरके लौटनेका हाल मालूम हो चुका था। फिर धनुष टूटनेका शब्द सुनकर उसने चाणूर और मुष्टिकसे कहा, 'दोनों गोपपुत्र यहाँ आ गये हैं। उन्हें मेरे सामने मल्लयुद्ध करके तुम दोनों अवश्य मार डालना, क्योंकि वे दोनों मेरे प्राण लेनेवाले हैं। यदि युद्धमें उन्हें मारकर तुमने मुझे संतुष्ट किया तो मैं तुम्हारी जो-जो इच्छा होगी, वह सब पूर्ण करूँगा। वे दोनों मेरे शत्रु हैं, अतः न्यायसे अथवा अन्यायसे उनको अवश्य मार डालो। उनके मारे जानेपर इस राज्यपर मेरा और तुम्हारा समान अधिकार होगा।'

इस प्रकार उन दोनों मल्लोंको आदेश दे कंसने हाथीवानको बुलाया और उच्च स्वरसे कहा—'महावत! तू कुवलयापीड हाथीको मतवाला करके रङ्गभूमिके द्वारपर खड़ा रखना। जब दोनों गोपपुत्र मल्लयुद्धके लिये आयें, तब उन्हें द्वारपर ही मरवा डालना।' महावतको यह आज्ञा दे कंसने देखा, रङ्गभूमिमें सब ओर यथायोग्य मञ्च लग गये हैं; तब वह सूर्योदय होनेकी प्रतीक्षा करने लगा। उसकी मृत्यु समीप आ गयी थी। सबेरा होनेपर सब मञ्चोंपर नागरिकगण आ विराजे। जो मञ्च केवल राजाओंके लिये बिछे थे, वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानोंके राजा अपने सेवकोंसहित आ बैठे। जो लोग मल्लोंकी जोड़का चुनाव करनेवाले

थे, उन्हें कंसने रङ्गभूमिके बीचमें अपने पास ही बिठाया। वह स्वयं भी बहुत ऊँचे मञ्चपर विराजमान था। रनिवासकी स्त्रियोंके लिये अलग मञ्च लगे थे और नगरकी स्त्रियोंके लिये अलग। नन्द आदि गोप दूसरे-दूसरे मञ्चोंपर बैठे थे। अक्रूर और वसुदेव मञ्चोंके किनारे खड़े थे। बेचारी देवकी नगरकी स्त्रियोंमें खड़ी थी। वह सोचती थी, अन्तकालमें भी तो एक बार पुत्रका मुँह देख लूँ।

इसी समय रङ्गभूमिमें तुरही आदि बाजे बज उठे। चाणूर उछलने और मुष्टिक ताल ठोंकने लगा। लोगोंमें हाहाकार मच गया। बलराम और श्रीकृष्ण रङ्गभूमिके द्वारपर आये और महावतसे प्रेरित कुवलयापीड नामक हाथीको मारकर भीतर घुस गये। उस समय उनके अङ्गोंमें हाथीका मद और रक्त लगे हुए थे। उसके बड़े-बड़े दाँतोंको ही उन्होंने अपना आयुध बना लिया था। वे दोनों भाई गर्वपूर्ण लीलामयी चितवनसे निहारते हुए उस महान् रङ्गोत्सवमें इस प्रकार प्रविष्ट हुए, मानो मृगोंके झुंडमें दो सिंह आ गये हों। उनके आते ही रङ्गभूमिमें चारों ओर महान् कोलाहल हुआ। सब लोग विस्मयके साथ कहने लगे, 'ये ही कृष्ण हैं, ये ही बलभद्र हैं। ये कृष्ण वे ही हैं, जिन्होंने भयंकर राक्षसी पूतनाका वध किया, छकड़े उलट दिये और दोनों अर्जुन वृक्षोंको उखाड़ डाला। जिन्होंने बालक होते हुए भी कालिय नागके मस्तकपर नृत्य किया, सात रातोंतक गोवर्धन पर्वतको हाथपर रखा और अरिष्ट, धेनुक तथा केशी आदि दुराचारियोंको खेल-खेलमें ही मार डाला, वे ही ये श्रीकृष्ण दिखायी देते हैं और ये जो दूसरे महाबाहु युवतियोंके मन और नयनोंको आनन्द देते हुए लीलापूर्वक आगे-आगे चल रहे हैं, वे श्रीकृष्णके बड़े भाई बलदेवजी हैं। पौराणिक रहस्यको जाननेवाले विद्वान् पुरुष इन्हीं गोपालके विषयमें यों कहते हैं कि ये शोकसागरमें डूबे हुए यदुवंशका उद्धार करेंगे। निश्चय ही ये सबको जन्म देनेवाले सर्वभूतस्वरूप भगवान् विष्णुके अंश हैं, जो पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं।'

इस प्रकार जब नगरके लोग बलराम और श्रीकृष्णका वर्णन कर रहे थे, उस समय देवकीके हृदयमें स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा। वसुदेवजी तो मानो समीप आयी हुई वृद्धावस्थाको छोड़कर युवा हो गये। उनकी दृष्टि अपने दोनों पुत्रोंपर ही लगी हुई थी, मानो वे ही उनके लिये महान् उत्सव हों। रनिवासकी स्त्रियाँ एकटक नेत्रोंसे श्रीकृष्ण और बलरामको निहारती थीं। नगरकी स्त्रियाँ तो उनकी ओरसे दृष्टि ही नहीं हटाती थीं।

स्त्रियाँ आपसमें कहने लगीं—'सखियो! श्रीकृष्णका मुख तो देखो, कैसी कमल-जैसी सुन्दर आँखें हैं। कुवलयापीड हाथीसे युद्ध करनेके कारण जो परिश्रम हुआ है, उससे इनके मुखपर पसीनेकी बूँदें निकल आयी हैं। इन स्वेदबिन्दुओंसे सुशोभित इनका प्रसन्न मुख ऐसा जान पड़ता है, मानो खिले हुए कमलपर ओसके कण शोभा पा रहे हों। इस मनोहर मुखकी झाँकी करके आज अपना जन्म सफल कर लो। अहा! भामिनी! इस बालकके वक्षःस्थलपर तो दृष्टिपात करो। श्रीवत्स-चिह्नसे इसकी कैसी शोभा हो रही है। यह सम्पूर्ण जगत्का आश्रय है और इसकी दोनों भुजाएँ शत्रुओंका दर्प दलन करनेमें समर्थ हैं। अरी सखी! उधर देखो, मुष्टिक और चाणूरको उछलते-कूदते देख बलभद्रजीके मुखपर मन्द हास्यकी कैसी छटा छा रही है। हाय, सखी! देखो तो सही, ये श्रीकृष्ण चाणूरके साथ युद्ध करने जा रहे हैं। क्या इस सभामें न्याययुक्त बर्ताव करनेवाले बड़े-बूढ़े नहीं हैं? कहाँ तो अभी युवावस्थामें प्रवेश करनेवाले श्रीहरिका सुकुमार शरीर और कहाँ वज्रके समान कठोर एवं विशाल शरीरवाला यह महान् असुर! ये दोनों भाई

रङ्गभूमिमें अभी तरुण दिखायी देते हैं। इनके सभी अङ्ग कोमल हैं और चाणूर आदि दैत्य मल्ल बड़े ही भयंकर हैं। युद्धके लिये जोड़का चुनाव करनेवाले लोगोंका यह बहुत बड़ा अन्याय है कि वे मध्यस्थ होकर भी बालक और बलवान्‌के युद्धकी उपेक्षा करते हैं।'

जब नगरकी स्त्रियाँ इस प्रकार वार्तालाप कर रही थीं, उसी समय भगवान् श्रीहरि अपने पदाघातसे पृथ्वीको कँपाते हुए सब लोगोंके हृदयमें हर्षातिरेककी वृष्टि करने लगे। बलभद्रजी भी ताल ठोंककर मनोहर गतिसे उछलते हुए चल रहे थे। उस समय यह पृथ्वी पग-पगपर उनके पदाघातसे विदीर्ण नहीं हुई—यही बड़े आश्चर्यकी बात थी। तदनन्तर अमितपराक्रमी श्रीकृष्ण चाणूरके साथ कुश्ती लड़ने लगे तथा मल्लयुद्धकी विद्यामें कुशल मुष्टिक दैत्य बलदेवजीके साथ भिड़ गया। श्रीकृष्ण चाणूरके साथ परस्पर भिड़कर, नीचे गिराकर, उछालकर, घूँसे और वज्रके समान कोहनीसे मारकर, पैरोंसे ठोंकरें देकर तथा एक-दूसरेके शरीरको रगड़कर लड़ने लगे। इस तरह उन दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस युद्धमें यद्यपि किसी अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग नहीं होता था तो भी वह अत्यन्त घोर एवं भयंकर था। अपने बल और प्राणशक्तिसे ही साध्य था। ज्यों-ज्यों चाणूर श्रीहरिके साथ युद्ध करता, त्यों-ही-त्यों उसकी प्राणशक्ति घटती जाती थी। जगन्मय श्रीकृष्ण भी उसके साथ लीलापूर्वक युद्ध करने लगे। वह परिश्रमसे थक गया था, अत: क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णके हाथपर हाथ मार रहा था। कंसने देखा, श्रीकृष्णका बल बढ़ रहा है और चाणूर थकता जा रहा है; कुपित होकर उसने बाजे बंद करा दिये। इसी समय आकाशमें देवताओंके अनेक प्रकारके बाजे बज उठे। अदृश्य भावसे खड़े हुए देवता हर्षमें भरकर भगवान्‌की स्तुति करते हुए बोले—'केशव ! चाणूर दानवको मार डालिये, गोविन्द! आपकी जय हो।'

श्रीकृष्ण देरतक चाणूरके साथ खिलवाड़ करते रहे, फिर उसे मार डालनेके लिये सचेष्ट हुए और दैत्यको उठाकर आकाशमें घुमाने लगे। घुमाते समय ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। भगवान्‌ने उसे सौ बार घुमाकर पृथ्वीपर पटक दिया। चाणूरके सौ-सौ टुकड़े हो गये। उसके रक्तकी धारासे अखाड़ेमें गहरी कीचड़ हो गयी। महाबली बलदेवजी भी उतनी देरतक मुष्टिकके साथ लड़ते रहे। अन्तमें उन्होंने भी उस दैत्यके मस्तकपर मुक्केका प्रहार किया और छातीमें घुटनेसे आघात करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर अपने शरीरसे रगड़कर उसका कचूमर निकाल दिया। उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने पुन: महाबली मल्लराज तोशलको बायें घूँसेकी चोटसे मार गिराया। चाणूर, मुष्टिक और तोशलके मारे जानेपर शेष पहलवान भाग खड़े हुए। उस समय श्रीकृष्ण और बलभद्र रंगभूमिमें समवयस्क ग्वालबालोंको साथ ले हर्षमें भरकर उछलने-कूदने लगे। यह देख कंसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने अपने सेवकोंको आज्ञा दी, 'इन दोनों ग्वालोंको बलपूर्वक रङ्गशालासे बाहर निकाल दो। पापी नन्दको भी पकड़कर तुरंत बेड़ियोंमें जकड़ दो। वसुदेवको भी उसकी वृद्धताका विचार न रखते हुए कठोर दण्ड देकर मार डालो। ये जो ग्वाल-बाल श्रीकृष्णके साथ उछल रहे हैं, इन सबकी गौएँ छीन लो और इनके घरमें जो कुछ भी धन-सम्पत्ति हो, उसे लूट लो।'

कंसको इस प्रकार आदेश देते देख भगवान् मधुसूदन हँस पड़े। वे उछलकर मञ्चपर जा चढ़े। राजाका मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़ा। श्रीकृष्णने उसके केश पकड़ लिये और उसे पृथ्वीपर गिराकर स्वयं भी उसीपर कूद पड़े। वे सम्पूर्ण जगत्‌का भार लेकर उसके ऊपर कूदे थे, इसलिये

उसके प्राण निकल गये। उग्रसेनकुमार राजा कंस संसारसे चल बसा। मरनेपर भी श्रीकृष्णने उसके मस्तकके बाल पकड़कर उसके शरीरको रङ्गभूमिमें घसीटा। कंसके पकड़े जानेपर उसका भाई सुनामा क्रोधमें भरकर आया, किन्तु बलभद्रजीने उसे

खेलमें ही मार गिराया। मथुराका महाराज कंस श्रीकृष्णके हाथसे अवहेलनापूर्वक मारा गया, यह देखकर रङ्गभूमिमें आये हुए सब लोग हाहाकार करने लगे। तदनन्तर श्रीकृष्णने शीघ्र जाकर वसुदेव और देवकीके चरण पकड़ लिये। बलदेवजीने भी उनका साथ दिया। वसुदेव और देवकीने श्रीकृष्णको उठाया; और जन्मकालमें उन्होंने जो बातें कही थीं, उन्हें याद करके स्वयं ही प्रणाम करने लगे।

वसुदेवजी बोले—देवदेवेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न होइये। प्रभो ! आप देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। केशव ! आपने हम दोनोंपर कृपा करके ही हम दोनोंका उद्धार किया है। हमारी आराधनासे भगवान्‌ने जो दुराचारी दैत्योंका वध करनेके लिये हमारे घरमें अवतार लिया, इससे हमारा कुल पवित्र हो गया। सर्वात्मन्! आप ही सम्पूर्ण भूतोंके अन्त हैं—आपमें ही सबका लय होता है। आप समस्त प्राणियोंके भीतर विराजमान हैं। आपसे ही भूत और भविष्यकी प्रवृत्ति हुई है। सर्वदेवमय अच्युत! अचिन्त्य परमेश्वर! यज्ञमें आपका ही यजन किया जाता है। परमेश्वर ! आप ही यज्ञ हैं और आप ही यज्ञोंके कर्त्ता-धर्त्ता हैं। आपके प्रति परमात्मभावको हटाकर जो मेरा और देवकीका मन पुत्रस्नेहके कारण आपकी ओर जाता है, यह हमारे लिये अत्यन्त विडम्बना है। कहाँ तो आप सम्पूर्ण भूतोंके कर्त्ता, अनादि और अनन्त परमेश्वर और कहाँ हमारी इस मानवीय जिह्वाका आपको 'पुत्र' कहकर पुकारना! जिनके भीतर समस्त चराचर जगत् प्रतिष्ठित है, वे किसी मनुष्यसे कैसे उत्पन्न हो सकते हैं, किसी नारीके गर्भमें कैसे शयन कर सकते हैं। जगन्नाथ! जिनसे यह सम्पूर्ण संसार उत्पन्न हुआ है, वे आप मायाके सिवा किस युक्तिसे मेरे पुत्र हो सकते हैं। परमेश्वर! आप प्रसन्न हों। इस विश्वकी रक्षा करें। आप मेरे पुत्र नहीं हैं। ईश! ब्रह्मासे लेकर वृक्षपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है। परमात्मन्! आप हमारे मनमें मोह क्यों उत्पन्न करते हैं। मेरी दृष्टि मायासे मोहित हो रही थी। आप मेरे पुत्र हैं, यह समझकर मैंने कंससे अत्यन्त भय किया था और शत्रुके भयसे व्याकुल होकर आपको गोकुल ले गया था। गोविन्द! वहाँ रहकर आप मेरे सौभाग्यसे इतने बड़े हुए हैं। रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और इन्द्रके द्वारा भी जो कार्य सिद्ध नहीं हो सकते, वे भी आपके द्वारा सिद्ध होते देखे गये हैं। ईश! आप साक्षात् श्रीविष्णु हैं। जगत्का कल्याण करनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं। हमारा सारा मोह अब दूर हो गया।

भगवान्‌की माता-पितासे भेंट, उग्रसेनका राज्याभिषेक, श्रीकृष्ण-बलरामका विद्याध्ययन, गुरुपुत्रको यमपुरसे लाना, जरासंधकी पराजय, कालयवनका संहार तथा मुचुकुन्दद्वारा भगवान्‌का स्तवन

व्यासजी कहते हैं—भगवान्‌के अलौकिक कर्म देखकर वसुदेव और देवकीको उनके भगवद्भावका ज्ञान हो गया, यह देख भगवान् श्रीहरिने यदुवंशियोंको मोहनेके लिये वैष्णवी माया फैलायी और कहा—'माता और पिताजी! मैं तथा भैया बलराम बहुत दिनोंसे आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थे, आज दीर्घ कालके बाद हमें आपका दर्शन मिला है। जिसका समय माता-पिताकी सेवा किये बिना ही बीतता है, उस पुत्रका जीवन व्यर्थ है; वह जननीको कष्ट देनेवाला माना गया है। साधु पुरुषोंमें उसकी निन्दा होती है। तात! जो गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिताका पूजन-सत्कार करते हैं, उन्हींका जन्म सफल होता है। पिताजी! हमलोग कंसके बल और प्रतापसे पराधीन हो गये थे; अतः हमारे द्वारा जो अपने कर्तव्यका उल्लङ्घन हुआ है, वह सब आप क्षमा करें।'

यों कहकर दोनों भाइयोंने माता-पिताको प्रणाम किया। फिर क्रमशः यदुकुलके सभी बड़े-बूढ़ोंका चरणस्पर्श किया। इस प्रकार अपने विनयपूर्ण बर्तावसे समस्त पुरवासियोंके मनमें अपने प्रति स्नेहका संचार कर दिया। कंसके मारे जानेपर उसकी पत्नियाँ और माताएँ शोक और दुःखमें डूब गयीं तथा उसको सब ओरसे घेरकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगीं। उन्हें घबरायी हुई और दुःखी देख श्रीकृष्णने स्वयं भी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उन सबको सान्त्वना दी, उग्रसेनको कैदसे छुड़ाया और अपने राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। राज्यासनपर बैठनेके बाद उग्रसेनने अपने पुत्रके तथा अन्य मरे हुए व्यक्तियोंके पारलौकिक कार्य किये। मृतकोंकी और्ध्वदैहिक क्रिया करनेके पश्चात् जब उग्रसेन पुनः सिंहासन-पर बैठे, तब श्रीकृष्णने उनसे कहा—'महाराज! जो भी आवश्यक कार्य हो, उसके लिये मुझे निःशङ्क होकर आज्ञा दें। जबतक मैं आपकी सेवामें मौजूद हूँ तबतक आप देवताओंको भी आज्ञा दे सकते हैं, फिर इस पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या है।'

उग्रसेनसे यों कहकर श्रीकृष्ण वायुदेवतासे बोले—"वायो! तुम इन्द्रके पास जाओ और उनसे मेरा यह संदेश कहो, 'इन्द्र! तुम अभिमान छोड़कर महाराज उग्रसेनको सुधर्मा सभा दे दो। श्रीकृष्ण कहते हैं, यह राजाके योग्य उत्तम रत्न

है; अतः सुधर्मा सभामें यदुवंशियोंका बैठना सर्वथा उचित है।' भगवान्‌के यों कहनेपर वायुदेवने शचीपति इन्द्रसे सब कुछ कहा। इन्द्रने वायुको सुधर्मा सभा दे दी। वह दिव्य सभा सब रत्नोंसे सम्पन्न थी। गोविन्दकी भुजाओंकी छत्र-छायामें रहनेवाले यादव वायुद्वारा लायी हुई उस सभाका उपभोग करने लगे। श्रीकृष्ण और बलभद्र सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञाता तथा पूर्ण ज्ञानस्वरूप थे, तथापि शिष्य और आचार्यकी परम्पराको सुरक्षित रखनेके लिये उन्होंने काश्यगोत्रमें उत्पन्न अवन्तीपुरनिवासी सांदीपनिजीके यहाँ विद्याध्ययनके लिये यात्रा की। बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई शिष्यता ग्रहण करके निरन्तर गुरु-सेवामें लगे रहते थे। उन्होंने अपने आचरणद्वारा सबको शिष्यके कर्तव्यका उपदेश दिया। चौंसठ दिनोंमें ही रहस्य और संग्रह (अस्त्रोंके उपसंहार)-सहित धनुर्वेदका उन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया। यह एक अद्भुत बात थी। उनके अलौकिक और अनहोने कर्मोंको देखकर गुरुने ऐसा समझा कि साक्षात् सूर्य और चन्द्रमा इन दोनोंके रूपमें मेरे यहाँ आये हैं। एक बार बतानेमात्रसे ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका उन्हें ज्ञान हो गया। पूरी विद्या पढ़कर उन्होंने गुरुसे कहा—'भगवन्! आपको क्या गुरुदक्षिणा दी जाय? बताइये।' परम बुद्धिमान् गुरुने भी उनसे अलौकिक कर्मका विचार करके अपने मरे हुए पुत्रको माँगा, जो प्रभासक्षेत्रमें समुद्रके भीतर डूब गया था। तब बलराम और श्रीकृष्ण हथियार लेकर समुद्रतटपर गये और समुद्रसे बोले—'मेरे गुरुके पुत्रको ले आओ।' समुद्रने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैंने सांदीपनिके पुत्रका अपहरण नहीं किया है। मेरे भीतर पञ्चजन नामका एक दैत्य रहता है, उसका आकार शङ्खका-सा है। उसीने उस बालकको पकड़ लिया था। वह दैत्य आज भी मेरे जलमें मौजूद है।' समुद्रके यों कहनेपर भगवान्‌ने जलमें प्रवेश करके पञ्चजनको मार डाला और उसकी हड्डियोंका उत्तम शङ्ख ग्रहण किया। उसका शब्द सुनकर दैत्योंका बल क्षीण होता, देवताओंकी शक्ति बढ़ती और अधर्मका नाश होता है। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और बलवान् बलरामजी यमपुरीमें गये; वहाँ उन्होंने शङ्ख-नाद किया और वैवस्वत यमको जीतकर गुरुके पुत्रको प्राप्त कर लिया। वह बेचारा वहाँ नरककी यातना भोग रहा था। उसे पहले-जैसा शरीर प्रदानकर दोनों भाइयोंने गुरुको अर्पित किया। तत्पश्चात् वे दोनों बन्धु उग्रसेनद्वारा पालित मथुरापुरीमें चले आये। उनके आगमनसे मथुराके सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो गये।

महाबली कंसने जरासंधकी पुत्री अस्ति और प्राप्तिसे विवाह किया था। जरासंध मगधदेशका बलवान् राजा था। वह बहुत बड़ी सेना साथ लेकर अपने दामादको मारनेवाले यदुवंशियोंसहित श्रीकृष्णका वध करनेके लिये क्रोधपूर्वक आया। मथुराके पास पहुँचकर उसने उस पुरीको चारों ओरसे घेर लिया। उसके साथ तेईस अक्षौहिणी सेना थी। बलराम और श्रीकृष्ण थोड़े-से सैनिकोंको साथ ले नगरसे बाहर निकले और उसके बलवान् योद्धाओंके साथ युद्ध करने लगे। उस समय उन्हें अपने पुरातन आयुधोंको ग्रहण करनेकी इच्छा हुई। उनके मनमें ऐसा संकल्प आते ही सुदर्शन चक्र, शार्ङ्गधनुष, बाणोंसे भरा हुआ अक्षय तूणीर और कौमोदकी गदा—ये सभी अस्त्र श्रीकृष्णके हाथमें आ गये। इसी प्रकार बलदेवजीके हाथमें भी उनके अभीष्ट अस्त्र हल और मुसल आ गये। उन दिव्य अस्त्रोंको पाकर श्रीकृष्ण और बलरामने महाराज जरासंधको सेनासहित युद्धमें परास्त कर दिया और फिर वे अपनी पुरीमें लौट आये। दुराचारी जरासंध परास्त होकर भी जीते-जी लौट गया था। अतः श्रीकृष्णने उसे हारा हुआ नहीं समझा। वह पुनः बहुत बड़ी सेनाके साथ मथुरापर चढ़ आया और बलराम तथा श्रीकृष्णसे परास्त होकर भाग खड़ा

हुआ। इस प्रकार अत्यन्त दुर्मद मगधराजने श्रीकृष्ण आदि यदुवंशियोंके साथ अठारह बार लोहा लिया। परंतु प्रत्येक युद्धमें उसे यदुवंशियोंद्वारा मुँहकी खानी पड़ी। यद्यपि उसके पास सेना अधिक थी तो भी थोड़ी-सी सेनावाले यादवोंने उसे मार भगाया। इन अनेक युद्धोंमें लड़नेपर भी जो यदुवंशियोंकी सेना सुरक्षित रह गयी, यह चक्रपाणि भगवान् विष्णुके अंशभूत श्रीकृष्णके सामीप्यकी महिमा थी। भगवान् श्रीकृष्ण शत्रुओंपर जो अनेक प्रकारके अस्त्र चलाते थे, यह मनुष्यधर्मका पालन करनेवाले जगदीश्वरकी लीला थी। जो मनसे ही संसारकी सृष्टि और संहार करते हैं, उन्हें शत्रुपक्षका विनाश करनेमें कितने उद्यमकी आवश्यकता है; तथापि मनुष्योंके धर्मका अनुसरण करते हुए बलवानोंसे संधि और हीन बलवालोंके साथ युद्ध करते थे। कहीं साम, दान और कहीं भेदकी नीति दिखाते हुए कहीं-कहींपर दण्डनीतिका भी प्रयोग करते थे और आवश्यकता होनेपर कहीं युद्धसे पलायन भी करते थे। इस प्रकार वे मानव-शरीरकी चेष्टाका अनुसरण करते थे। वास्तवमें यह जगदीश्वरकी लीला है, जो उनकी इच्छाके अनुसार होती है।

दक्षिणमें एक यवनोंका राजा रहता था, उसने अपने पुत्र कालयवनको अपने राज्यपर अभिषिक्त किया और स्वयं वनमें चला गया। कालयवन बलके मदसे उन्मत्त रहता था। एक बार उसने नारदजीसे पूछा—'पृथ्वीपर बलवान् राजा कौन-कौन-से हैं?' नारदजीने यादवोंको बतलाया। उसने हाथी, घोड़े और रथसहित खरबों म्लेच्छोंकी सेना साथ लेकर यादवोंपर आक्रमणकी तैयारी की। वह प्रतिदिन अविच्छिन्न गतिसे यात्रा करता हुआ मथुराको गया। यादवोंके प्रति उसके हृदयमें बड़ा अमर्ष था। उसके आक्रमणका समाचार जानकर श्रीकृष्णने सोचा, 'यदि कालयवनने आकर यादवोंकी सेनाका संहार कर दिया तो अवसर देखकर मगधराज जरासंध भी आक्रमण करेगा और यदि पहले जरासंधने ही आकर हमारी सेनाको क्षीण कर दिया तो बलवान् कालयवन बचे-खुचे सैनिकोंको मार डालेगा। अहो! यदुवंशियोंपर दोनों प्रकारसे संकट उपस्थित है; अतः इससे बचनेके लिये मैं यादवोंके निमित्त अत्यन्त दुर्जय दुर्गका निर्माण करूँगा, जहाँ रहकर स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकती हैं, फिर वृष्णियों और यादवोंकी तो बात ही क्या। यदि मैं सोया अथवा बाहर गया होऊँ तो भी उस दुर्गमें रहनेपर दुष्ट शत्रु यादवोंको अधिक कष्ट न दे सकें।' यह सोचकर गोविन्दने समुद्रसे बारह योजन भूमि माँगी और उसीमें द्वारकापुरीका निर्माण किया। उसमें बड़े-बड़े उद्यान शोभा पाते थे। उसकी चहारदीवारी बहुत ऊँची थी। सैकड़ों सरोवरोंसे वह पुरी सुशोभित हो रही थी। उसमें सैकड़ों परकोटे बने हुए थे। वह पुरी इन्द्रकी अमरावती-सी मनोहर जान पड़ती थी। भगवान् श्रीकृष्णने मथुराके निवासियोंको वहाँ पहुँचा दिया और जब कालयवन समीप आ गया, तब वे स्वयं मथुरा लौट आये। मथुराके बाहर कालयवनकी सेनाका पड़ाव था। श्रीकृष्ण अस्त्र-शस्त्र लिये बिना ही मथुरासे बाहर निकले। कालयवनने उन्हें देखा और यह जानकर कि ये ही वासुदेव हैं, बिना अस्त्र-शस्त्रके ही उनका पीछा किया। जिन्हें बड़े-बड़े योगी अपने मनके द्वारा भी नहीं प्राप्त कर सकते, उन्हीं भगवान्‌को पकड़नेके लिये कालयवन उनके पीछे-पीछे चला। उसके पीछा करनेपर श्रीकृष्ण भी एक बहुत बड़ी गुफामें प्रवेश कर गये, जहाँ महापराक्रमी मुचुकुन्द सोये हुए थे। कालयवनने भी उस गुफामें प्रवेश करके देखा, एक मनुष्य सो रहा है। उसे श्रीकृष्ण समझकर उसे खोटी बुद्धिवाले यवनने लात मारी। मुचुकुन्दकी आँख खुल गयी और वह यवन राजाकी दृष्टि पड़ते ही उनकी क्रोधाग्निसे जलकर भस्म हो गया।

पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्द देवासुर-संग्राममें युद्ध करनेके लिये गये थे। वहाँ उन्होंने बड़े-बड़े दैत्योंको परास्त किया। युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें नींद सताने लगी। तब उन्होंने देवताओंसे दीर्घकालतक निद्रामें पड़े रहनेका वरदान माँगा। देवताओंने कहा—'राजन्! जो तुम्हें सोतेसे उठा देगा, वह तुम्हारे शरीरसे उत्पन्न हुई अग्निसे तत्क्षण जलकर भस्म हो जायगा।' इस प्रकार पापी कालयवनको भस्म करके राजाने मधुसूदनसे पूछा—'आप कौन हैं?' वे बोले—'मैं चन्द्रवंशके भीतर यदुकुलमें उत्पन्न वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण हूँ।' यह सुनकर उन्होंने सर्वेश्वर श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'भगवन्! मैंने आपको पहचान लिया। आप श्रीहरिके अंशभूत साक्षात् परमेश्वर हैं। पूर्वकालमें गार्ग्यने कहा था—अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें यदुकुलमें श्रीहरिका अवतार होगा। वे अवतारधारी श्रीहरि आप ही हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। आप मर्त्यलोकके प्राणियोंका उपकार करनेवाले हैं। आपके इस महान् तेजको मैं नहीं सह सकता। आपकी वाणी महामेघकी गंभीर गर्जनाके समान है। देवासुर-संग्राममें दैत्यपक्षके महान् योद्धा भी आपके जिस महान् तेजको सहन न कर सके, वही तेज आज मेरे लिये भी असह्य है। संसार-सागरमें पड़े हुए जीवके लिये एकमात्र आप ही परमाश्रय हैं, शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले हैं। भगवन्! मुझपर प्रसन्न होइये और मेरे अमङ्गलको हर लीजिये। आप ही समुद्र, पर्वत, नदी, वन, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि तथा पुरुष हैं। पुरुषसे भी परे जो व्यापक, जन्म आदि विकारोंसे रहित, शब्द आदिसे शून्य, सदा नवीन तथा वृद्धि और क्षयसे रहित तत्त्व है, वह भी आप ही हैं। देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, अप्सरा, मनुष्य, पशु-पक्षी, सर्प, मृग तथा वृक्ष—सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। इस चराचर जगत्में जो कुछ भी भूत या भविष्य, मूर्त्त या अमूर्त्त अथवा स्थूल या सूक्ष्मतर वस्तु है, वह सब आपके सिवा कुछ भी नहीं है। भगवन्! इस संसारचक्रमें आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे पीड़ित हो सदा भटकते हुए मुझे कभी शान्ति नहीं मिली। नाथ! मैंने मृगतृष्णासे जलकी आशा करके दुःखोंको ही सुख समझकर ग्रहण किया, अतः वे सदा मेरे लिये संतापके ही कारण हुए। प्रभो! राज्य, पृथ्वी, सेना, कोष, मित्र, पुत्र, पत्नी, भृत्य और शब्द आदि विषय—यह सब कुछ मैंने सुख-बुद्धिसे ग्रहण किया; परंतु देवेश्वर! परिणाममें ये सब मेरे लिये संतापप्रद ही सिद्ध हुए हैं। नाथ! देवलोककी उत्तम गतिको प्राप्त देवताओंको भी जब मुझसे सहायता लेनेकी इच्छा हुई, तब वहाँ भी नित्य शान्ति कहाँ है। आप सम्पूर्ण जगत्के उद्गम-स्थान हैं। परमेश्वर! आपकी आराधना किये बिना सनातन शान्ति कौन पा सकता है। जिनका चित्त आपकी मायासे मोहित है, वे जन्म-मृत्यु और जरा आदि कष्टोंको भोगकर अन्तमें यमराजका दर्शन करते हैं। तदनन्तर सैकड़ों पाशोंमें आबद्ध हो नरकोंमें अत्यन्त दारुण दुःख भोगते हैं। यह विश्व आपका स्वरूप है। परमेश्वर! मैं अत्यन्त

विषयी हूँ और आपकी मायासे मोहित होकर ममताके अगाध गर्त्तमें भटक रहा हूँ। वही मैं आज अपार एवं स्तवन करने योग्य आप परमेश्वरकी शरणमें आया हूँ, जिससे भिन्न दूसरा कोई परम पद नहीं है। मेरा चित्त सांसारिक श्रमसे संतप्त है; अतः मैं निर्वाणस्वरूप आप परमधाम परमात्माकी अभिलाषा करता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दके इस प्रकार स्तुति करनेपर आदि-अन्तरहित, सर्वभूतेश्वर श्रीहरिने कहा—'नरेश्वर! तुम अपनी इच्छाके अनुसार दिव्य लोकोंमें जाओ और मेरे प्रसादसे उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होकर वहाँके दिव्य भोग भोगो। तत्पश्चात् इस पृथ्वीपर श्रेष्ठ कुलमें तुम्हारा जन्म होगा। उस समय तुम्हें अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी और मेरी कृपासे तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे।' यह सुनकर राजाने जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और गुफासे निकलकर देखा तो सब मनुष्य छोटे-छोटे दिखायी दिये। तब कलियुग आया जान वे तपस्या करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके आश्रममें चले गये। श्रीकृष्णने भी युक्तिसे शत्रुका वध कराकर मथुरामें आ हाथी, घोड़े और रथसे सुशोभित उनकी सारी सेना अपने अधिकारमें कर ली तथा द्वारकामें ले जाकर राजा उग्रसेनको समर्पित कर दी। अब सम्पूर्ण यादव शत्रुओंके आक्रमणकी आशङ्कासे निर्भय हो गये।

बलरामजीकी व्रजयात्रा, श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका हरण तथा प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुरका वध

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर बलदेवजी अपने बन्धु-बान्धवोंके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो नन्दगाँवमें आये। उस समय सम्पूर्ण गोप और गोपियाँ उनसे पूर्ववत् मिलीं। बलरामजीने सबको आदर देते हुए सबके साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया। किन्हींने उनको हृदयसे लगाया। कुछ लोगोंका उन्होंने गाढ़ आलिङ्गन किया तथा कुछ गोप-गोपियोंके साथ बैठकर उन्होंने हास्य-विनोद किया। वहाँ गोपोंने बलरामजीसे अनेकों प्रिय लगनेवाली बातें कहीं। कुछ गोपियाँ उन्हें देखकर प्रेमानन्दमें निमग्न हो गयीं तथा कुछ दूसरी गोपियोंने ईर्ष्यापूर्वक पूछा—'चञ्चल प्रेमरसके आस्वादनमें व्यग्र रहनेवाले नागरी स्त्रियोंके प्रियतम श्रीकृष्ण तो सुखसे हैं न? क्षणिक अनुराग दिखानेवाले श्यामसुन्दर क्या कभी हमारी चेष्टाओंका उपहास करते हुए नगरकी महिलाओंके सौभाग्यका मान नहीं बढ़ाते? क्या श्रीकृष्ण कभी हमारे गीतोंका अनुसरण करनेवाले मधुर स्वरका स्मरण करते हैं? क्या वे एक बार भी अपनी माताको देखनेके लिये यहाँ आयेंगे? अथवा उनकी बात करनेसे हमें क्या लाभ। कोई दूसरी बात करो। यदि हमारे बिना उनका काम चल सकता है तो उनके बिना हमारा भी चल जायगा। हमने उनके लिये पिता, माता, भ्राता, पति और बन्धु-बान्धव—किसको नहीं छोड़ दिया। फिर भी वे कृतज्ञ न हो सके तथापि बलरामजी! क्या श्रीकृष्ण कभी यहाँ आनेके विषयमें भी आपसे बात करते हैं? दामोदर श्रीकृष्णका मन तो नगरकी स्त्रियोंमें आसक्त हो गया है। हमपर अब उनका प्रेम नहीं रहा। अतः अब हमारे लिये उनका दर्शन दुर्लभ ही जान पड़ता है।'

भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंका चित्त आकृष्ट कर लिया था। वे बलभद्रजीको भी 'हे कृष्ण! हे दामोदर!' कहकर पुकारने और जोर-जोरसे हँसने

लगीं। तब बलरामजीने श्रीकृष्णके सौम्य, मधुर, प्रेमगर्भित, अभिमानशून्य और अत्यन्त मनोहर संदेश सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी। फिर गोपोंके साथ प्रेमपूर्वक हास-परिहासयुक्त मनोहर बातें कीं और पहलेकी ही भाँति वे उनके साथ व्रजभूमिमें विचरण करने लगे। दो महीने वहाँ रहकर वे पुनः द्वारकाको चले गये। उनका विवाह राजा रेवतकी कन्या रेवतीसे हुआ। उसके गर्भसे बलरामजीने निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये।

विदर्भ देशमें कुण्डिनपुर नामक एक नगर है, वहाँ राजा भीष्मक राज्य करते थे। उनके पुत्रका नाम रुक्मी और कन्याका नाम रुक्मिणी था। श्रीकृष्ण रुक्मिणीको प्राप्त करना चाहते थे और मनोहर मुसकानवाली रुक्मिणी भी श्रीकृष्णचन्द्रको पतिरूपमें पानेकी अभिलाषा रखती थी। उन्होंने कुण्डिननरेशसे रुक्मिणीके लिये प्रार्थना भी की, किंतु रुक्मीने द्वेषवश श्रीकृष्णकी प्रार्थना ठुकरा दी। जरासंधकी प्रेरणासे परम पराक्रमी राजा भीष्मकने रुक्मीके साथ मिलकर शिशुपालको अपनी कन्या देनेका निश्चय किया। शिशुपालका विवाह सम्पन्न करनेके लिये जरासंध आदि सभी प्रमुख राजा उसे साथ ले कुण्डिनपुरमें गये। श्रीकृष्ण भी बलभद्र आदि यादवोंके साथ चैद्यनरेशका विवाह देखनेके लिये वहाँ उपस्थित हुए।

विवाह होनेमें एक ही दिनकी देर थी, इसी समय श्रीहरिने बलभद्र आदि बन्धुजनोंपर शत्रुओंके रोकनेका भार रखकर राजकुमारी रुक्मिणीको हर लिया। इससे पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध और शाल्व आदि राजा बहुत कुपित हुए। उन्होंने श्रीकृष्णको मार डालनेकी भारी चेष्टा की, किंतु बलराम आदि यादव वीरोंने सामना करके उन सबको परास्त कर दिया। तब रुक्मीने यह प्रतिज्ञा करके कि 'मैं श्रीकृष्णको युद्धमें मारे बिना कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा,' श्रीकृष्णका पीछा किया; परंतु चक्रपाणि श्रीकृष्णने हाथी,

घोड़े, पैदल और रथोंसे युक्त रुक्मीकी चतुरङ्गिणी सेनाका वध करके उसे लीलापूर्वक जीत लिया और पृथ्वीपर गिरा दिया। इस प्रकार रुक्मीको जीतकर मधुसूदनने रुक्मिणीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। रुक्मिणीके गर्भसे बलवान् प्रद्युम्नका जन्म हुआ, जो कामदेवके अंश थे, जिन्हें जन्मके समय ही शम्बरासुरने हर लिया था और जिन्होंने बड़े होनेपर शम्बरासुरका वध किया था।

मुनियोंने पूछा—मुने! शम्बरासुरने वीरवर प्रद्युम्नका अपहरण कैसे किया और महापराक्रमी शम्बर प्रद्युम्नके हाथसे किस प्रकार मारा गया?

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! शम्बरासुर कालके समान विकराल था। उसे यह बात मालूम हो गयी थी कि श्रीकृष्णका पुत्र प्रद्युम्न मेरा वध करेगा; अतः उसने जन्मके छठे दिन ही प्रद्युम्नको सूतिकागृहसे हर लिया और उन्हें ले जाकर समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ उस बालकको एक मत्स्यने निगल लिया, किंतु उसकी जठराग्निसे तप्त होनेपर भी बालककी मृत्यु न हो सकी। तदनन्तर मछेरोंने अन्य मछलियोंके साथ उस मत्स्यको भी मारा और असुरोंमें श्रेष्ठ

शम्बरासुरको भेंट कर दिया। उसके घरमें मायावती नामकी एक युवती गृहस्वामिनी थी। वह सुन्दरी रसोइयोंका आधिपत्य करती थी। जब मछलीका पेट चीरा गया, तब उसमें मायावतीने एक अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, जो जले हुए कामरूपी वृक्षका प्रथम अङ्कुर था। 'यह कौन है? किस प्रकार मछलीके पेटमें आ गया?' इस प्रकार कौतूहलमें पड़ी हुई उस कृशाङ्गी तरुणीसे नारदजीने कहा—'यह सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र है। इसे शम्बरासुरने सौरीसे चुराकर समुद्रमें फेंक दिया और वहाँ मत्स्यने निगल लिया था। वही यह बालक है, जो आज तुम्हारे हाथ आ गया। सुन्दरी! यह मनुष्योंमें रत्न है। तुम पूर्ण विश्वासके साथ इसका पालन करो।'

देवर्षि नारदके यों कहनेपर मायावतीने उस बालकका पालन किया। उसका अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर वह मोहित थी और बचपनसे ही अत्यन्त अनुरागपूर्वक उसकी सेवा करने लगी। जिस समय वह बालक युवावस्थाकी संधिसे सुशोभित हुआ, उस समय वह गजगामिनी बाला प्रद्युम्नके प्रति कामनायुक्त भाव प्रकट करने लगी। मायावतीने महात्मा प्रद्युम्नको सारी माया सिखा दी। उसका मन उन्हींमें रमता था और उसके नेत्र सदा उन्हींको निहारते रहते थे। मायावतीको अपने प्रति आसक्त होते देख कमलनयन प्रद्युम्नने कहा—'तू मातृभावका परित्याग करके यह विपरीत भावना कैसे करती है?' मायावतीने कहा—'तुम मेरे नहीं, भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र हो। तुम्हें कालरूपी शम्बरने चुराकर समुद्रमें फेंक दिया था। तुम मुझे मछलीके पेटसे प्राप्त हुए हो। प्रिय! तुम्हारी पुत्रवत्सला माता आज भी तुम्हारे लिये रोती है।'

मायावतीके यों कहनेपर महाबली प्रद्युम्नका चित्त क्रोधसे व्याकुल हो उठा। उन्होंने शम्बरासुरको युद्धके लिये ललकारा और उसकी सारी दैत्यसेनाका संहार करके सातों मायाओंको जीतकर उसके ऊपर आठवीं मायाका प्रयोग किया। उस मायासे प्रद्युम्नने कालरूपी शम्बरको मार डाला और आकाशमार्गसे उड़कर वे मायावतीके साथ अपने पिताके नगरमें आये। अन्त:पुरमें उतरनेपर मायावतीसहित प्रद्युम्नको देखकर श्रीकृष्णकी रानियाँ प्रसन्न हो अनेक प्रकारके संकल्प करने लगीं। रुक्मिणीकी दृष्टि प्रद्युम्नकी ओरसे हटती ही नहीं थी। वे स्नेहमें भरकर कहने लगीं—'यह अवश्य ही किसी बड़भागिनीका पुत्र है। अभी इसकी युवावस्थाका आरम्भ हो रहा है। यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होता तो उसकी भी यही अवस्था होती। बेटा! तुमने अपने जन्मसे किस सौभाग्यशालिनी जननीकी शोभा बढ़ायी है? अथवा तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें जैसा स्नेह उमड़ रहा है, उसके अनुसार मैं यह स्पष्टरूपसे कह सकती हूँ कि तुम श्रीहरिके पुत्र हो।'

इसी समय श्रीकृष्णके साथ नारदजी वहाँ आये। उन्होंने अन्त:पुरमें रहनेवाली रुक्मिणी देवीसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'सुभ्रू! यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न है। इस समय शम्बरासुरको मारकर यहाँ आया है। कुछ वर्ष पहले शम्बरासुरने ही तुम्हारे पुत्रको सूतिकागृहसे हर लिया था। यह तुम्हारे पुत्रकी सती भार्या मायावती है। यह शम्बरासुरकी पत्नी नहीं है। इसका कारण सुनो। जब शंकरजीके कोपसे कामदेवका नाश हो गया, तब उनके पुनर्जन्मकी प्रतीक्षा करती हुई रतिने अपने मायामय रूपसे शम्बरासुरको मोहित किया। देवि! तुम्हारे पुत्ररूपमें ये कामदेव ही अवतीर्ण हुए हैं और यह उन्हींकी पत्नी रति है। कल्याणी! यह तुम्हारी पुत्रवधू है, इसमें किसी प्रकारकी विपरीत शङ्का न करना।'

यह सुनकर रुक्मिणी और श्रीकृष्णको बड़ा हर्ष हुआ। समस्त द्वारकापुरी 'धन्य! धन्य!' कहने लगी। चिरकालसे खोये हुए पुत्रके साथ माता रुक्मिणीका मिलन देख द्वारकापुरीके सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ।

श्रीकृष्णकी संतति, अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका वध, भौमासुरका वध, पारिजात-हरण तथा इन्द्रकी पराजय

व्यासजी कहते हैं—रुक्मिणीने प्रद्युम्नके अतिरिक्त चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और बलवानोंमें श्रेष्ठ चारु नामक पुत्र तथा चारुमती नामकी कन्याको जन्म दिया। रुक्मिणीके सिवा श्रीकृष्णकी सात पटरानियाँ और थीं। उनके नाम ये हैं—कालिन्दी, मित्रविन्दा, राजा नग्नजित्की पुत्री सत्या, जाम्बवान्की कन्या इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली रोहिणी देवी (जाम्बवती), अपने शीलसे विभूषित मद्रराजकुमारी भद्रा, सत्राजित्की पुत्री सत्यभामा तथा मनोहर मुसकानवाली लक्ष्मणा। इनके सिवा श्रीकृष्णके सोलह हजार स्त्रियाँ और थीं। महापराक्रमी प्रद्युम्नने रुक्मीकी सुन्दरी कन्याको और उस कन्याने भी श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नजीको स्वयंवरमें ग्रहण किया। उसके गर्भसे प्रद्युम्नजीके अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ, जो महाबली, महापराक्रमी, युद्धमें कभी रुद्ध (कुण्ठित) न होनेवाला, बलका समुद्र तथा शत्रुओंका दमन करनेवाला था। अनिरुद्धको भी रुक्मीकी पौत्रीने वरण किया। यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णके साथ लाग-डाँट रखता था तो भी उसने अपने दौहित्र अनिरुद्धके साथ पौत्रीका विवाह कर दिया। उस विवाहमें बलराम आदि यदुवंशी श्रीकृष्णके साथ रुक्मीके भोजकट नगरमें गये थे। विवाह हो जानेपर कलिङ्गराज आदिने रुक्मीसे कहा—'राजन्! बलराम जुआ खेलना नहीं जानते, तथापि उन्हें जुएका बड़ा भारी व्यसन है; अतः आज हमलोग उनको जुएसे ही परास्त करें।' 'बहुत अच्छा' कहकर रुक्मीने सभामें बलरामजीके साथ जुएका खेल प्रारम्भ किया। पहले ही दाँवमें बलभद्रजी एक हजार स्वर्णमुद्रा हार गये। उसके बाद भी कई बार उनकी हार हुई। यह देख मूर्ख कलिङ्गराज दाँत दिखाते हुए बलरामजीका उपहास करने लगा। मदोन्मत्त रुक्मीने भी कहा—'बलभद्रको तो द्यूत-विद्याका बिलकुल ज्ञान नहीं है। इसीलिये बार-बार हार खानी पड़ी है। ये व्यर्थ ही घमंडमें आकर अपनेको द्यूत-विद्याका पूर्ण ज्ञाता मानते थे।' तब बलरामजीने क्रोधमें भरकर एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दाँवपर लगा दीं। रुक्मीने पाँसा फेंका। अबकी बार बलभद्रकी जीत हुई। उन्होंने उच्चस्वरसे कहा—'मैंने जीत लिया।' रुक्मी बोला—'क्यों झूठ बोलते हो। जीत तो मेरी हुई है। तुमने इस दाँवके विषयमें चर्चा अवश्य की थी, परंतु मैंने उसका अनुमोदन तो नहीं किया था। ऐसी दशामें भी यदि तुम्हारी जीत हुई है तो मेरी जीत कैसे नहीं हुई।' इसी समय महात्मा बलरामजीके क्रोधको बढ़ाती हुई आकाशवाणी हुई—'जीत तो बलदेवजीकी ही हुई है। रुक्मी झूठ बोलता है। मुँहसे अनुमोदनसूचक वचन न करनेपर भी जो उसने दाँवको स्वीकार करके पासा फेंका है, इस कर्मसे उसका अनुमोदन सिद्ध हो जाता है।'

इतना सुनते ही बलरामजी क्रोधसे लाल आँखें करके उठ खड़े हुए। उन्होंने जूआ खेलनेके पासेसे ही रुक्मीको मौतके घाट उतार दिया। फिर काँपते हुए कलिङ्गराजको बलपूर्वक धर दबाया और जिन्हें दिखा-दिखाकर वह हँसता था, उन दाँतोंको कुपित होकर तोड़ डाला। फिर सभाभवनके सुवर्णमय विशाल स्तम्भको खींच लिया और क्रोधमें आकर रुक्मीके पक्षमें आये हुए समस्त राजाओंका संहार कर डाला। बलरामजीके कुपित होनेपर सम्पूर्ण राजालोग हाहाकार करते हुए भाग खड़े हुए। बलरामजीके द्वारा रुक्मीको मारा गया सुनकर श्रीकृष्ण चुप रहे। रुक्मिणी और बलराम दोनोंके संकोचसे वे कुछ बोल न सके। तदनन्तर विवाहके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्धसहित यादवोंको साथ ले द्वारका चले आये।

एक दिन त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र मतवाले ऐरावतकी पीठपर बैठकर द्वारकामें श्रीकृष्णके पास आये और इस प्रकार बोले—'मधुसूदन! यद्यपि आप इस समय मनुष्यरूपमें स्थित हैं, तथापि आपने रक्षक बनकर देवताओंके सम्पूर्ण दु:ख दूर कर दिये हैं। तपस्वीजनोंकी रक्षाके लिये अरिष्ट, धेनुक, प्रलम्ब तथा केशी आदि सब दैत्योंका नाश किया और कंस, कुवलयापीड, बालघातिनी पूतना तथा जितने इस जगत्के उपद्रव थे, उन सबको आपने शान्त कर दिया है। आपके भुजदण्डसे तीनों लोक सुरक्षित होनेके कारण देवता यज्ञोंमें हविष्य ग्रहण करके तृप्त हो रहे हैं। जनार्दन! इस समय मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, उसे सुनकर उसके प्रतिकारका उपाय करें। भूमिका पुत्र नरक, जो इस समय प्राग्ज्योतिषपुरका स्वामी है, सम्पूर्ण भूतोंका विनाश कर रहा है। जनार्दन! उसने देवताओं, सिद्धों और राजाओंकी कन्याओंका अपहरण करके अपने महलमें कैद कर रखा है। वरुणका छत्र, जिससे जलकी बूँदें चूती रहती हैं, अपने अधिकारमें कर लिया है। मन्दराचलके शिखर मणिपर्वतको भी हरण कर लिया है; इतना ही नहीं, नरकासुरने मेरी माता अदितिके दोनों दिव्य कुण्डल भी, जिनसे अमृत झरता रहता है, हर लिये हैं। अब वह मुझसे ऐरावत हाथी लेना चाहता है। गोविन्द! उसका यह दुराचार मैंने आपसे निवेदन कर दिया। इसके बदलेमें उसके साथ जो कुछ करना चहिये, वह आप स्वयं ही विचारें।'

यह सुनकर भगवान् देवकीनन्दन मुसकराये और इन्द्रका हाथ पकड़कर अपने सिंहासनसे उठे। उन्होंने गरुड़का आवाहन किया। चिन्तन करते ही गरुड़ आ पहुँचे। भगवान् सत्यभामाको बिठाकर स्वयं भी गरुड़पर सवार हुए और प्राग्ज्योतिषपुरकी ओर चल दिये। इन्द्र भी द्वारकावासियोंके देखते-देखते ऐरावत हाथीपर सवार हुए और प्रसन्नचित्त हो देवलोकको चले गये। प्राग्ज्योतिषपुरके चारों ओर सौ योजनोंतक भयंकर पाशों (लोहेके कँटीले तारों)-का घेरा बना था। शत्रुओंकी सेनाको रोकनेके लिये वे पाश लगाये गये थे। श्रीहरिने सुदर्शन चक्र चलाकर उन सब पाशोंको काट डाला। तब मुर नामक दैत्यने खड़े होकर भगवान्का सामना किया, किंतु भगवान्ने उसे मार डाला। मुरके सात हजार पुत्र थे, श्रीहरिने चक्रकी धाररूप अग्निसे उन सबको पतंगोंकी भाँति भस्म कर दिया। मुरको मारकर उन्होंने हयग्रीव और पञ्चजनको भी यमलोक पठाया तथा बड़ी उतावलीके साथ प्राग्ज्योतिषपुरपर धावा किया। नरक बहुत बड़ी सेनाके साथ सामने आया। उसके साथ श्रीकृष्णका घोर युद्ध हुआ। उसमें श्रीगोविन्दने सहस्रों दैत्योंका संहार किया। भूमिपुत्र नरक अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि कर रहा था। दैत्य-मण्डलका विनाश करनेवाले श्रीहरिने चक्र चलाकर उस असुरके दो टुकड़े कर दिये। नरकके मारे जानेपर भूमि अदितिके दोनों कुण्डल लेकर उपस्थित हुई और जगदीश्वर श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोलीं—'नाथ! आपने वाराहरूप धारण करके जिस समय मुझे उठाया था, उस समय आपका स्पर्श होनेपर मेरे गर्भसे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था, अत: इसे आपने ही दिया और आपने ही मार गिराया। ये दोनों कुण्डल लीजिये और नरकासुरकी संतानकी रक्षा कीजिये। प्रभो! मेरा ही भार उतारनेके लिये आप अंशसहित अवतार धारण करके इस लोकमें आये हैं। आप ही कर्ता, विकर्ता (बिगाड़नेवाले) और संहर्ता (नाश करनेवाले) हैं। आप ही अविनाशी कारण हैं और आप ही जगत्स्वरूप हैं। अच्युत! मैं आपकी क्या स्तुति कर सकती हूँ। आप परमात्मा, जीवात्मा और अविनाशी भूतात्मा हैं। अत: आपकी स्तुति हो ही नहीं सकती। फिर किसलिये असम्भव चेष्टा की जाय। सर्वभूतात्मन्! मुझपर प्रसन्न होइये। नरकासुरने जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये। वह आपका पुत्र था, अत: उसे दोषरहित करनेके लिये ही आपने मारा है।'

भूतभावन भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीकी प्रार्थना सुनकर 'तथास्तु' कहा। नरकासुरके महलमें जो रत्न थे, उन्हें अपने अधिकारमें कर लिया। अन्त:पुरमें जाकर उन्होंने सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखीं। चार दाँतवाले छ: हजार हाथी और काम्बोज देशके इक्कीस लाख घोड़े भी देखे। श्रीगोविन्दने उन कन्याओं, हाथियों और घोड़ोंको द्वारकापुरी भेज दिया। वरुणके छत्र और मणिपर्वतपर भी दृष्टि पड़ी। उन्हें भगवान्‌ने पक्षिराज गरुड़पर रख लिया। फिर सत्यभामाके साथ स्वयं भी गरुड़पर सवार हो अदितिको कुण्डल देनेके लिये स्वर्गलोकमें गये।

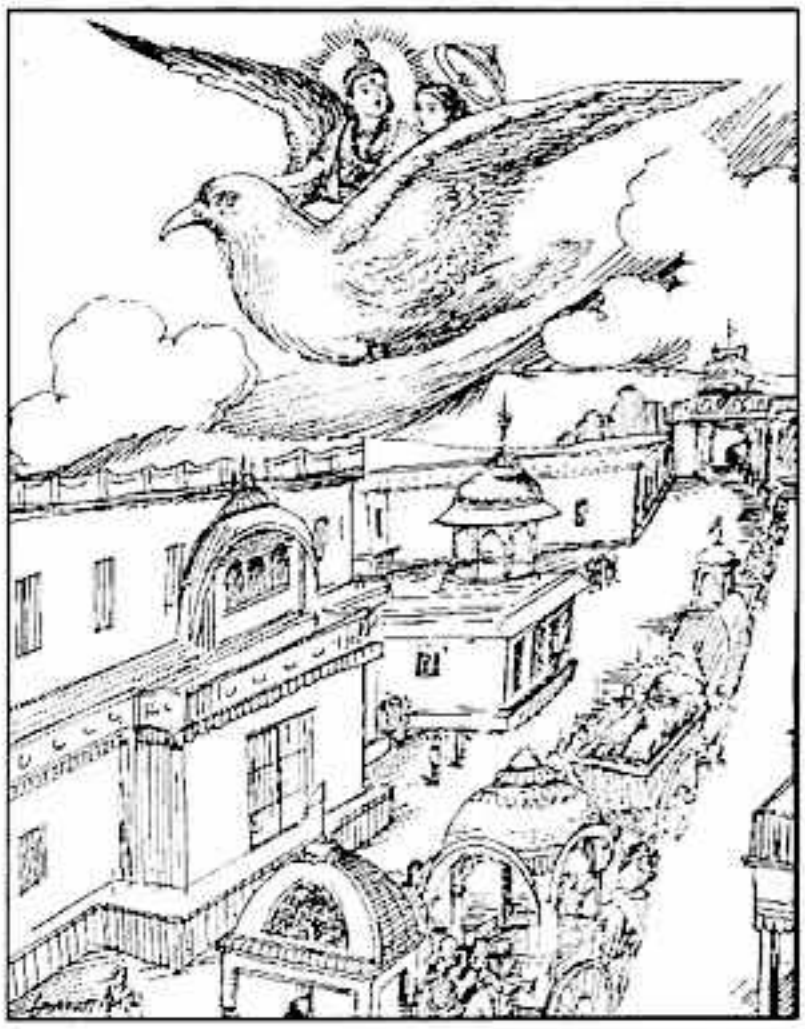

वरुणके छत्र, मणिपर्वत और पत्नीसहित श्रीकृष्णको पीठपर लिये गरुड़जी मौजसे चले जा रहे थे। स्वर्गके द्वारपर पहुँचकर श्रीकृष्णने शङ्ख बजाया। शङ्खकी आवाज सुनकर सम्पूर्ण देवता अर्घ्यपात्र लिये भगवान्‌की सेवामें उपस्थित हुए। उनके द्वारा पूजित हो भगवान् श्रीकृष्ण देवमाता अदितिके महलमें गये। वह भव्य भवन श्वेत बादलोंके समान धवल और पर्वत-शिखरके सदृश ऊँचा था। उसमें प्रवेश करके भगवान्‌ने अदितिको देखा और इन्द्रसहित उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर दोनों दिव्य कुण्डल उन्हें अर्पित किये और नरकासुरके मारे जानेका समाचार भी कह सुनाया। इससे जगन्माता अदितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने भगवान्‌में मन लगाकर जगदाधार श्रीहरिका इस प्रकार स्तवन किया।

अदिति बोलीं—भक्तोंको अभय देनेवाले कमलनयन परमेश्वर! आपको नमस्कार है। आप सनातन आत्मा, भूतात्मा, सर्वात्मा और भूतभावन हैं। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके प्रेरक हैं। गुणस्वरूप! आप श्वेत, दीर्घ आदि सम्पूर्ण कल्पनाओंसे रहित हैं, जन्म आदि विकारोंसे पृथक् हैं तथा स्वप्न आदि तीनों अवस्थाओंसे परे हैं; आपको नमस्कार है। अच्युत! सन्ध्या, रात्रि, दिन, भूमि, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और अहंकार—सब आप ही हैं। ईश्वर! आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक अपनी मूर्तियोंसे जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले हैं। आप कर्ताओंके भी अधिपति हैं। यह चराचर जगत् आपकी मायाओंसे व्याप्त है। जनार्दन! अनात्म वस्तुमें जो आत्मबुद्धि होती है, वह आपकी माया है। उसीके द्वारा अहंता और ममताका भाव उत्पन्न होता है। नाथ! इस संसारमें जो कुछ होता है, वह सब आपकी मायाकी ही चेष्टा है। भगवन्! जो मनुष्य अपने धर्ममें तत्पर हो आपकी निरन्तर आराधना करते हैं, वे अपनी मुक्तिके लिये इस सारी मायाको तर जाते हैं। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता, मनुष्य और पशु—ये सभी श्रीविष्णुमायाके महान् भँवरमें पड़े हुए मोहान्धकारसे आवृत हैं। भगवन्! जो आपकी आराधना करके भोगोंको प्राप्त करना चाहते हैं, वे आपकी मायाद्वारा बँधे हुए हैं। मैंने भी पुत्रकी कामनासे और शत्रुपक्षका नाश करनेके लिये आपकी आराधना की है, मोक्षके लिये नहीं। यह आपकी मायाका ही विलास है। पुण्यरहित मनुष्य यदि कल्पवृक्षसे भी कौपीनमात्र ही लेनेकी इच्छा करे तो यह अपराध उसके अपने ही पापकर्मोंका है। अपनी

मायासे सम्पूर्ण जगत्‌को मोहित करनेवाले अविनाशी परमेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये। ज्ञानस्वरूप सम्पूर्ण भूतेश्वर! मेरे अज्ञानका नाश कीजिये। आपके हाथोंमें चक्र, शार्ङ्गधनुष, गदा और शङ्ख शोभा पाते हैं। विष्णो! आपको बारंबार नमस्कार है। परमेश्वर! शङ्ख-चक्र आदि स्थूल चिह्नोंसे सुशोभित आपके इस रूपका मैं दर्शन करती हूँ। आपका जो परम सूक्ष्म स्वरूप है, उसको मैं नहीं जानती। आप मुझपर प्रसन्न होइये।'

देवमाता अदितिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण हँसकर बोले—'देवि! आप हम सब लोगोंकी माता हैं, अतः आप ही प्रसन्न होकर हमें वरदान दें।'

अदिति बोलीं—एवमस्तु। नरश्रेष्ठ! जैसी आपकी इच्छा है, मैं वही करूँगी। आप मर्त्यलोकमें सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंसे अजेय होंगे।

तदनन्तर सत्यभामाने इन्द्राणीसहित अदितिको प्रणाम किया और कहा—'देवि! आप मुझपर भी प्रसन्न हों।' अदितिने कहा—'सुभ्रू! मेरी कृपासे तुम्हें वृद्धावस्था और कुरूपता नहीं स्पर्श कर सकती। तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होंगी।' तत्पश्चात् अदितिकी आज्ञासे देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णका आदरपूर्वक पूजन किया। श्रीकृष्ण भी सत्यभामाके साथ देवताओंके नन्दनवन आदि सम्पूर्ण उद्यानोंमें घूमने-फिरने लगे। एक स्थानपर भगवान् श्रीकृष्णने पारिजातका वृक्ष देखा, जो परम सुगन्धित मञ्जरियोंसे सुशोभित, शीतलता और आह्लाद प्रदान करनेवाला, ताम्रवर्णके पल्लवोंसे अलंकृत और सुवर्णके समान कान्तिमान् था। अमृतके लिये समुद्रका मन्थन होते समय वह प्रकट हुआ था। उसे देखकर सत्यभामाने श्रीगोविन्दसे कहा—'नाथ! इस वृक्षको आप द्वारका क्यों नहीं ले चलते। आप कहते हैं, सत्यभामा मुझे बड़ी प्रिय है। यदि आपकी यह बात सत्य हो तो मेरे घरके आँगनकी शोभा बढ़ानेके लिये इस वृक्षको ले चलिये।'

सत्यभामाके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने परिजातको गरुड़पर रख लिया। यह देख उस वनके रक्षकोंने कहा—'गोविन्द! देवराजकी महारानी जो शची हैं, उनका इस पारिजातपर अधिकार है। आप उनके इस प्रिय वृक्षको न ले जाइये। देवताओंने अमृतमन्थनके समय महारानी शचीको

विभूषित करनेके लिये ही इस वृक्षको प्रकट किया था। आप इसे लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकते। आप अज्ञानवश ही इसे ले जानेकी अभिलाषा करते हैं। भला, इस पारिजातको लेकर कौन कुशलसे जा सकता है। देवराज इन्द्र इसका बदला लेनेके लिये अवश्य आयेंगे। जब वे हाथमें वज्र लेकर आगे बढ़ेंगे, तब सम्पूर्ण देवता भी उनका साथ देंगे; अतः सम्पूर्ण देवताओंके साथ आपको विवाद करनेसे क्या लाभ। अच्युत! जिस कार्यका परिणाम कटु हो, उसकी विद्वान् पुरुष प्रशंसा नहीं करते।'

वनरक्षकोंके यों कहनेपर सत्यभामा देवी अत्यन्त कुपित होकर बोलीं—'शची अथवा देवराज इन्द्र इस पारिजातको लेनेवाले कौन होते हैं। यदि यह अमृतमन्थनके समय समुद्रसे निकला है, तब तो इसपर सम्पूर्ण लोकोंका समान अधिकार है। इसे इन्द्र

अकेले कैसे ले सकते हैं। यदि अपने पतिकी भुजाओंके बलका अधिक घमंड होनेके कारण शची इस वृक्षको रोकती है तो तुमलोग शीघ्र शचीके पास जाकर मेरी यह बात कहो—'सत्यभामा अपने पतिपर गर्व करके धृष्टतापूर्वक कहती है कि यदि तुम अपने पतिको अत्यन्त प्रिय हो तो पारिजात वृक्षको लेकर जाते हुए मेरे पतिको उनके द्वारा रोको।'

यह सुनकर रक्षकोंने शचीके पास जा सत्यभामाकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। शचीने भी अपने स्वामी देवराज इन्द्रको युद्धके लिये उत्साहित किया। तब इन्द्र पारिजातके लिये सम्पूर्ण देवसेनाको साथ ले श्रीहरिसे युद्ध करनेको उद्यत हुए। जब इन्द्र हाथमें वज्र लेकर युद्ध करनेके लिये खड़े हुए, तब समस्त देवता भी परिघ, खड्ग, गदा और शूल आदि आयुधोंके साथ तैयार हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने देखा इन्द्र ऐरावतपर सवार हो देवपरिवारको साथ ले युद्धके लिये उपस्थित हैं; तब उन्होंने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उसकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। साथ ही उन्होंने सहस्रों और लाखों बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उन बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ और आकाश आच्छादित हो गये। यह देख सम्पूर्ण देवता भी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् मधुसूदनने देवताओंके छोड़े हुए एक-एक अस्त्र-शस्त्रके खेल-खेलमें ही हजारों टुकड़े कर डाले। पक्षिराज गरुड़ने वरुणके पाशको खींच लिया और छोटे-छोटे साँपोंके शरीरकी भाँति उसके खण्ड-खण्ड कर डाले। भगवान् देवकीनन्दनने यमराजके चलाये हुए दण्डको गदाकी मारसे टूक-टूक करके पृथ्वीपर गिरा दिया। कुबेरकी शिबिकाको चक्रसे तिल-तिल करके काट डाला। सूर्य और चन्द्रमा उनकी दृष्टि पड़ते ही अपना तेज और प्रभाव खो बैठे। अग्निदेवके सैकड़ों टुकड़े हो गये। आठों वसुओंने भगवान्के बाणोंकी चोट खाकर आठों दिशाओंकी शरण ली। ग्यारह रुद्र भी धराशायी हो गये। उनके त्रिशूलोंके अग्रभाग चक्रकी धारसे छिन्न-भिन्न हो गये। साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण और गन्धर्व शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णके बाणोंसे आहत हो सेमरकी रूईके समान आकाशमें उड़ने लगे। गरुड़ तो सदा आकाशमें ही चलनेवाले ठहरे। उन्होंने चोंचसे, पंखोंसे और पंजोंसे भी देवताओं और दानवोंको घायल कर डाला।

तदनन्तर देवराज इन्द्र और भगवान् मधुसूदन एक-दूसरेपर हजार-हजार बाणोंकी वृष्टि करने लगे, मानो दो मेघ परस्पर जलकी धाराएँ बरसाते हों। ऐरावत और गरुडमें घमासान युद्ध होने लगा। जब सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र कटकर गिर गये, तब इन्द्रने वज्र और श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्र हाथमें लिया। उन दोनोंको वज्र और चक्र हाथमें लिये देख चराचर जीवोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया। अन्ततोगत्वा इन्द्रने वज्रको चला ही दिया, किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे हाथमें पकड़ लिया। उन्होंने अपना चक्र नहीं छोड़ा। केवल इतना ही कहा, 'खड़ा रह, खड़ा रह।' देवराजका

वज्र व्यर्थ हो गया और उनके वाहनको गरुड़ने क्षत-विक्षत कर डाला; अतः वे रणभूमिसे भागने लगे। उस समय सत्यभामाने कहा—'त्रिलोकीनाथ! आप तो महारानी शचीके पति हैं। आपका युद्ध-भूमिसे भागना उचित नहीं। पारिजात-पुष्पोंके हारसे सुशोभित एवं प्रेमपूर्वक आयी हुई शचीको यदि आप पहलेकी भाँति विजयी होकर नहीं देखेंगे तो आपके लिये यह देवराजका पद कैसा प्रतीत होगा। इन्द्र! अब अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं। आप लज्जाका अनुभव न करें। आप यह पारिजात ले जाइये, जिससे देवताओंकी पीड़ा दूर हो। मैं आपके घर गयी थी, किंतु शचीने पतिके गर्वसे उन्मत्त होकर मुझे आदरके साथ नहीं देखा। मैं भी स्त्री ही ठहरी और मुझे भी अपने पतिपर गर्व है, तथा स्त्री होनेके कारण मेरा चित्त भी अधिक गम्भीर नहीं है; इसलिये मैंने आपके साथ युद्ध ठान दिया। यह पारिजात दूसरेका धन है। इसका अपहरण करनेसे मुझे कोई लाभ नहीं।'

सत्यभामाके यों कहनेपर देवराज इन्द्र लौट आये और बोले—'मानिनी! खेदको अधिक बढ़ानेसे क्या लाभ। जो सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन विश्वरूपधारी परमेश्वरसे युद्धमें हार जानेपर भी मुझे लज्जा नहीं हो सकती। देवि! जिनका आदि, अन्त और मध्य नहीं है, जिनमें सम्पूर्ण जगत्की स्थिति है, जिनसे इसकी उत्पत्ति हुई है और जिन सर्वभूतमय परमेश्वरसे ही इसका संहार होगा, उन सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत परमात्मासे परास्त होनेपर मुझे लज्जा क्यों होने लगी। जिनकी अत्यन्त अल्प और सूक्ष्म मूर्तिको, जो सम्पूर्ण जगत्की जननी है, सब वेदोंके ज्ञाता होनेपर भी दूसरे मनुष्य नहीं जान पाते, जो स्वेच्छासे ही सदा जगत्का उपकार करते हैं, उन अजन्मा, अकर्ता तथा सबके आदिभूत इन सनातन परमेश्वरको जीतनेमें कौन समर्थ हो सकता है।'

व्यासजी कहते हैं—देवराज इन्द्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने गम्भीर भावसे हँसकर कहा—'जगत्पते! आप देवराज इन्द्र हैं और हम मनुष्य हैं। आपको मेरे द्वारा किया हुआ यह अपराध क्षमा करना चाहिये। यह रहा आपका पारिजात वृक्ष। इसे इसके योग्य स्थानपर ले जाइये। इन्द्र! मैंने तो केवल सत्यभामाकी बात रखनेके लिये ही इसको ले लिया था। आपने मेरे ऊपर जो वज्र चलाया था, उसे भी लीजिये। यह शत्रुसंहारक अस्त्र आपका ही है।'

इन्द्र बोले—प्रभो! मैं मनुष्य हूँ—यों कहकर आप मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं। भगवन्! हम तो आपके इस सगुण-स्वरूपको ही जानते हैं। आपके सूक्ष्म स्वरूपका ज्ञान हमें नहीं है। जगन्नाथ! आप जो कोई भी हों, इस समय जगत्की रक्षामें तत्पर हैं। असुरसूदन! आप संसारका कण्टक दूर कर रहे हैं। श्रीकृष्ण! यह पारिजात आप द्वारकापुरीको ले जायँ। जब आप मर्त्यलोक छोड़ देंगे, तब यह पृथ्वीपर नहीं रहेगा।

'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् श्रीहरि भूलोकमें चले आये। उस समय सिद्ध, गन्धर्व तथा ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे। उत्तम पारिजात वृक्ष लेकर श्रीकृष्ण सहसा द्वारकापुरीके ऊपर जा पहुँचे। उन्होंने शङ्ख बजाकर द्वारकावासियोंके हृदयमें हर्ष भर दिया। फिर सत्यभामाके साथ गरुडसे उतरकर पारिजातको उनके आँगनमें लगाया। उसके नीचे जानेपर सब लोगोंको अपने पूर्वजन्मकी बातें याद आ जाती थीं। उसके फूलोंकी सुगन्धसे बारह कोसतककी पृथ्वी सुवासित रहती थी। सम्पूर्ण यादवोंने उस वृक्षके पास जाकर जब अपना मुख देखा, तब उन्होंने अपनेको अमानव—देवतातुल्य पाया।

भगवान् श्रीकृष्णका सोलह हजार स्त्रियोंसे विवाह और उनकी संतति तथा उषाका अनिरुद्धके साथ विवाह

व्यासजी कहते हैं—नरकासुरके सेवकोंने जो हाथी, घोड़े, धन, रत्न तथा स्त्रियोंको द्वारकामें पहुँचाया था, वह सब श्रीकृष्णने ले लिया। शुभ मुहूर्त आनेपर जनार्दनने नरकासुरके महलसे लायी हुई समस्त कन्याओंके साथ विवाह किया। एक ही समय श्रीगोविन्दने अनेक रूप धारण करके उन सबका स्वधर्मके अनुसार विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं, अतः भगवान् मधुसूदनने भी उतने ही रूप धारण किये थे। प्रत्येक कन्या यह समझती थी कि भगवान् श्रीकृष्णने केवल मेरा पाणिग्रहण किया है। जगत्की सृष्टि करनेवाले विश्वरूपधारी श्रीहरि रात्रिके समय उन सभी स्त्रियोंके महलोंमें निवास करते थे।

श्रीहरिके रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए प्रद्युम्न आदि पुत्रोंकी चर्चा पहले की जा चुकी है। सत्यभामाने भानु आदि पुत्रोंको जन्म दिया। जाम्बवतीसे साम्ब आदिका जन्म हुआ। नाग्नजिती (सत्या)-से भद्रविन्द आदि और शैब्या (मित्रविन्दा)-से संग्रामजित् आदि पुत्र उत्पन्न हुए। माद्रीके गर्भसे वृक आदिका जन्म हुआ। लक्ष्मणाने गात्रवान् आदि पुत्र प्राप्त किये। कालिन्दीसे श्रुत आदिकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार भगवान्की अन्य पत्नियोंके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उन सबकी संख्या अट्ठासी हजार आठ सौके लगभग थी। रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न श्रीकृष्णके समस्त पुत्रोंमें श्रेष्ठ थे। प्रद्युम्नसे अनिरुद्ध और अनिरुद्धसे वज्रका जन्म हुआ। अनिरुद्ध संग्राममें कभी रुकते नहीं थे। वे बड़े बलवान् थे। उन्होंने बलिकी पौत्री और बाणासुरकी पुत्री उषाके साथ विवाह किया था। उस विवाहमें भगवान् श्रीकृष्ण तथा शंकरमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था। उस समय श्रीकृष्णने चक्रसे बाणासुरकी सहस्र भुजाएँ काट डालीं।

मुनियोंने पूछा—ब्रह्मन्! उषाके लिये महादेवजी तथा श्रीकृष्णमें युद्ध क्यों हुआ तथा श्रीहरिने बाणासुरकी भुजाओंका उच्छेद क्यों किया? महाभाग! आप यह सम्पूर्ण वृत्तान्त हमें बताइये। इस सुन्दर कथाको सुननेके लिये हमें बड़ा कौतूहल हो रहा है।

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो! बाणासुरकी पुत्री उषाको स्वप्नमें किसी पुरुषने आलिङ्गन किया। उषाका भी उसके प्रति अनुराग हो गया। इतनेमें ही उसकी नींद खुल गयी। जागनेपर उस पुरुषको न देखनेके कारण उषा उत्कण्ठित होकर बोल उठी—'प्यारे! तुम कहाँ चले गये?' उस समय उसे लज्जाका ध्यान न रहा। बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डके एक कन्या थी, जिसका नाम चित्रलेखा था। वह उषाकी सखी थी। उसने पूछा—'राजकुमारी! तुम किसे पुकारती हो?' यह सुनकर वह लाजसे गड़-सी गयी। मुँहसे एक शब्द भी बोल न सकी। तब चित्रलेखाने उसे बहुत विश्वास दिलाया और सब बातें उसके मुखसे निकलवा लीं। चित्रलेखाको जब यथार्थ बात मालूम हो गयी, तब उषाने उससे कहा— 'पार्वतीदेवीने मुझे इसी प्रकार पतिकी प्राप्ति होनेका वरदान दिया है; अतः तुम उस पुरुषको प्राप्त करनेके लिये जो उपाय हो सके, उसे करो।'

तब चित्रलेखाने एक पटपर प्रधान-प्रधान देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और मनुष्योंका चित्र लिखकर उषाको दिखाया। उषाने गन्धर्वों, नागों, देवताओं और दैत्योंको छोड़कर मनुष्योंकी ओर दृष्टि दी। उनमें भी अन्धक और वृष्णिवंशोंके लोगोंपर विशेष ध्यान दिया। श्रीकृष्ण और बलरामके चित्रोंको देखकर वह सुन्दरी कुछ लज्जित हो गयी। प्रद्युम्नको देखनेपर उसने लज्जासे आँखें फेर लीं, परंतु अनिरुद्धपर दृष्टि पड़ते ही न जाने उसकी लज्जा कहाँ चली गयी। वह सहसा बोल

उठी—'ये ही हैं, ये ही मेरे प्रियतम हैं।' उषाके यों कहनेपर योगगामिनी चित्रलेखा उसे सान्त्वना दे द्वारकापुरीको गयी।

एक बार बाणासुरने भगवान् शंकरको प्रणाम करके कहा था—'देव! युद्धके बिना इन हजार भुजाओंसे मुझे बड़ा खेद हो रहा है; क्या कभी ऐसे युद्धका अवसर आयेगा, जब कि ये मेरी भुजाएँ सफल होंगी?' यदि युद्ध न हो तो इन भुजाओंसे क्या लाभ। फिर तो ये मेरे लिये भाररूप ही सिद्ध होंगी। यह सुनकर महादेवजीने कहा—'जिस समय तुम्हारी मयूर-चिह्नवाली ध्वजा टूट जायगी, उस समय तुम्हें वैसा युद्ध प्राप्त होगा।' इससे बाणासुरको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह भगवान् शिवको प्रणाम करके घर चला आया। कुछ कालके बाद उसकी मयूर-ध्वजा टूटकर गिर गयी। यह देखकर उसके हर्षकी सीमा न रही। इसी समय चित्रलेखा अपनी योगविद्याके बलसे अनिरुद्धको बाणासुरके भवनमें ले आयी। अनिरुद्ध कन्याके अन्त:पुरमें उषाके साथ विहार करने लगे। यह बात अन्त:पुरके रक्षकोंको मालूम हो गयी। उन्होंने दैत्यराजसे सब हाल कह सुनाया। बाणासुरने अपने सेवकोंको अनिरुद्धसे युद्ध करनेकी आज्ञा दी, किंतु शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले अनिरुद्धने लोहेका परिघ लेकर उन सबको मार डाला। सेवकोंके मारे जानेपर बाणासुर स्वयं ही रथपर आरुढ़ हो अनिरुद्धका वध करनेके लिये उद्यत हुआ। अपनी शक्तिभर युद्ध करनेपर भी जब उसे वीरवर अनिरुद्धजीने परास्त कर दिया, तब वह मन्त्रीकी प्रेरणासे मायाद्वारा युद्ध करने लगा। इस प्रकार उसने यदुनन्दन अनिरुद्धको नागपाशसे बाँध लिया।

उधर द्वारकामें अनिरुद्धकी खोज हो रही थी। समस्त यदुवंशी आपसमें कह रहे थे कि 'अनिरुद्ध सहसा कहाँ चले गये?' उसी समय देवर्षि नारदजी द्वारकामें पहुँचे और उन्होंने बताया कि 'अनिरुद्धको बाणासुरने शोणितपुरमें बाँध रखा है। उन्हें योगविद्यामें चतुर युवती चित्रलेखा अपने साथ ले गयी थी।' यदुवंशियोंको इस बातपर विश्वास हो गया। फिर तो भगवान् श्रीकृष्णने गरुड़का आवाहन किया। वे स्मरण करते ही आ पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्ण बलराम और प्रद्युम्नके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो बाणासुरके नगरमें गये। पुरीमें प्रवेश करते समय महाबली प्रमथोंके साथ उनका युद्ध हुआ। श्रीहरि उन सबका संहार करके बाणासुरके भवनके निकट गये। तत्पश्चात् तीन पैर और तीन मस्तकवाले माहेश्वर ज्वरने बाणासुरकी रक्षाके लिये शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णके साथ युद्ध किया। उसके फेंके हुए भस्मके स्पर्शसे श्रीकृष्णका शरीर संतप्त हो उठा और उससे छू जानेपर बलदेवजीने भी शिथिल होकर अपने नेत्र मूँद लिये। इस प्रकार श्रीकृष्णके साथ युद्ध करते हुए माहेश्वर ज्वरपर शीघ्र ही वैष्णव ज्वरने आक्रमण किया और उसको भगवान्‌के शरीरसे बाहर निकाल दिया। उस समय भगवान् नारायणकी भुजाओंके आघातसे माहेश्वर ज्वरको बड़ी पीड़ा हुई। वह व्याकुल हो उठा। यह देख पितामह ब्रह्माजीने आकर कहा—'भगवन्! इसे क्षमा कीजिये।' भगवान् बोले—'अच्छा, मैंने क्षमा कर दिया।' यों कहकर उन्होंने वैष्णव ज्वरको अपनेमें ही लीन कर लिया। तब माहेश्वर ज्वरने कहा—'भगवन्! जो मनुष्य आपके साथ मेरे युद्धका स्मरण करेंगे, वे ज्वरहीन हो जायँगे।' यों कहकर वह चला गया।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने पाँच अग्नियोंको जीतकर उन्हें नष्ट कर डाला और दानवोंकी सेनाका खेल-खेलमें ही विध्वंस कर दिया, यह देख बलिकुमार बाणासुर सम्पूर्ण दैत्योंकी सेना साथ ले भगवान्‌से युद्ध करने लगा। भगवान् शिव तथा कार्तिकेयजीने भी उसका साथ दिया। श्रीहरि तथा शंकरजीमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उनके चलाये हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी मारसे पीड़ित हो समस्त लोक क्षुब्ध हो उठे। उस

महायुद्धको होते देख देवताओंने समझा 'निश्चय ही समस्त संसारके लिये प्रलयकाल आ गया।' तब भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रके द्वारा शंकरजीको स्तब्ध कर दिया। वे युद्ध छोड़कर जँभाई लेने लगे। यह देख दैत्य और प्रमथगण चारों दिशाओंमें भाग गये। भगवान् शंकर जृम्भासे विवश हो रथके पिछले भागमें बैठ गये। उस समय वे अनायास ही सब कुछ करनेवाले श्रीकृष्णके साथ युद्ध न कर सके। गरुडने कार्तिकेयकी भुजाओंको क्षत-विक्षत कर दिया। प्रद्युम्नने भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे उन्हें पीड़ित किया तथा श्रीकृष्णके हुंकारसे उनकी शक्ति नष्ट हो गयी; अतः वे युद्धसे भाग गये।

इस प्रकार जब महादेवजी जँभाई लेने लगे, दैत्यसेना नष्ट हो गयी, कार्तिकेयजी परास्त हो गये और प्रमथों (रुद्रके गणों)-का संहार हो गया, तब श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और बलरामजीके साथ युद्ध करनेके लिये एक विशाल रथपर आरूढ़ हो बाणासुर वहाँ आया। साक्षात् नन्दीश्वर सारथि बनकर उसके घोड़ोंकी बागडोर सँभाले हुए थे। महापराक्रमी बलभद्र और प्रद्युम्नने अनेकों बाणोंसे बाणासुरकी सेनाको बींध डाला। वह सेना वीरधर्मसे भ्रष्ट होकर रणभूमिसे भागने लगी। बाणासुरने देखा उसकी सेनाको बलरामजी हलसे खींचकर मूसलसे मारते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण भी उसे अपने बाणोंका निशाना बनाते हैं। तब उसका श्रीकृष्णके साथ घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनों एक-दूसरेपर कवचको भी छेद डालनेवाले तेजस्वी बाण छोड़ने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने बाणासुरके चलाये हुए बाणोंको अपने सायकोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला। फिर बाणासुरने श्रीकृष्णको और श्रीकृष्णने बाणासुरको घायल किया। दोनों एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे परस्पर अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार कर रहे थे। जब सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये तब भगवान् श्रीकृष्णने बाणासुरको मारनेका निश्चय किया। उन्होंने सैकड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सुदर्शन चक्र हाथमें लिया और बाणासुरको लक्ष्य करके चला दिया। वे शत्रुकी भुजाओंको काट डालना चाहते थे। श्रीकृष्णके द्वारा प्रेरित चक्रने क्रमशः उस असुरकी भुजाओंका उच्छेद कर डाला। जब बाणासुरकी भुजाओंका जङ्गल कट गया तब भगवान् श्रीकृष्णने उसका नाश करनेके लिये चक्र हाथमें लिया। वे उसे छोड़ना ही चाहते थे कि भगवान् शंकरको उनका मनोभाव ज्ञात हो गया। तब वे तुरंत कूदकर भगवान्‌के सामने आ गये। उन्होंने देखा भुजाओंके कट जानेसे बाणासुरके शरीरसे रक्तकी धारा गिर रही है। तब शान्तिपूर्वक भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहा—'कृष्ण! कृष्ण!! जगन्नाथ!!! मैं आपको जानता हूँ। आप पुरुषोत्तम, परमेश्वर, परमात्मा और आदि-अन्तसे रहित परब्रह्म हैं। आप जो देवता, पशु-पक्षी तथा मनुष्योंकी योनिमें शरीर धारण करते हैं, यह आपकी लीलामात्र है। आपकी चेष्टा दैत्योंका वध करनेके लिये होती है। प्रभो! प्रसन्न होइये। मैंने बाणासुरको अभय दे

रखा है। आपको भी मेरी बात असत्य नहीं करनी चाहिये। मेरा आश्रय पानेसे यह दैत्य बहुत बढ़ गया है। वास्तवमें यह आपका अपराधी नहीं है। मैंने ही इसे वरदान दिया था, अतः मैं ही इसके लिये आपसे क्षमा चाहता हूँ।'

भगवान् शंकरके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णका मुख प्रसन्न हो गया। बाणासुरके प्रति उनके मनमें कोई अमर्ष नहीं रह गया। उन्होंने शिवजीसे कहा—'शंकर! यदि आपने इसे वर दे रखा है तो यह बाणासुर जीवित रहे। आपके वचनोंका गौरव रखनेके लिये हमने अपना चक्र लौटा लिया है। शंकर! आपने जो अभयदान दिया है, वह मैंने भी दिया। आप अपनेको मुझसे पृथक् न देखें। जो मैं हूँ, वही आप हैं और वही यह देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् भी है। जिनका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे ही पुरुष भेददृष्टि रखनेवाले होते हैं।'*

यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्धके पास गये। उनके जाते ही अनिरुद्धको बाँधनेवाले नाग भाग खड़े हुए। गरुड़के पंखोंकी हवा लगनेसे वे सूख गये थे। तदनन्तर पत्नीसहित अनिरुद्धको गरुड़पर चढ़ाकर भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न द्वारकापुरीमें आये।

पौण्ड्रकका वध और बलरामजीके द्वारा हस्तिनापुरका आकर्षण

मुनियोंने कहा—भगवान् श्रीकृष्णने मानव-शरीर धारण करके बहुत बड़ा पराक्रम किया, जो उन्होंने लीलापूर्वक ही इन्द्र, महादेवजी तथा सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया। मुनिश्रेष्ठ! देवताओंकी चेष्टाका विघात करनेवाले भगवान्‌ने और भी जो कर्म किये थे, वे सब हमसे कहिये। हमें उन्हें सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! बतलाता हूँ; मनुष्यावतारमें श्रीहरिने जो लीलाएँ की थीं, उन्हें आदरपूर्वक सुनो। पुण्ड्रकवंशी वासुदेव नामक एक राजा था। वह 'भगवान् वासुदेव' बन बैठा था। कुछ अज्ञानमोहित मनुष्योंने उससे यह कहा था कि 'आप ही इस पृथ्वीपर वासुदेवके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।' उनकी बातोंमें आकर वह स्वयं भी अपनेको अवतार मानने लगा था। वासुदेव बननेकी धुनमें वह अपने वास्तविक स्वरूपको भूल गया और भगवान् विष्णुके जितने चिह्न हैं, उन सबको धारण करने लगा। इतना ही नहीं, उसने भगवान् श्रीकृष्णके पास अपना दूत भी भेजा और उसके मुखसे कहलाया—'ओ मूढ़! तूने जो चक्र आदि मेरे चिह्न और मेरा वासुदेव नाम धारण किया है, वह सब शीघ्र ही त्याग दे और अपने जीवनकी रक्षाके लिये मेरी शरणमें आ जा।' यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण हँस पड़े और दूतसे बोले—'तुम जाकर राजा पौण्ड्रकसे मेरी यह बात कहना, 'राजन्! मैंने तुम्हारे वचनोंका तात्पर्य भलीभाँति समझ लिया है। अब तुम्हें जो कुछ करना हो, वह करो। मैं अपने चिह्नको साथ लेकर ही तुम्हारे नगरमें आऊँगा और उस चिह्नस्वरूप चक्रको तुम्हारे ऊपर ही छोड़ूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुमने जो आज्ञापूर्वक आनेका संदेश दिया है, उसका मैं अविलम्ब पालन करूँगा। कल सबेरे ही तुम्हारी पुरीमें पहुँच जाऊँगा। तुम्हारे वहाँ आकर मैं वह कार्य करूँगा, जिससे फिर तुमसे कोई भय नहीं रह जायगा।'

---

* त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमभयं मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर॥
योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः॥
(२०६। ४७-४८)

श्रीकृष्णके यों कहनेपर दूत चला गया, तब भगवान्‌ने गरुड़का स्मरण किया। गरुड़ तुरंत आ पहुँचे। भगवान् उनकी पीठपर सवार हुए और पौण्ड्रकके नगरमें गये। श्रीकृष्णके आक्रमणकी बात सुनकर काशिराज अपनी समस्त सेनाओंके साथ पौण्ड्रककी सहायतामें आ गया। तब अपनी और काशिराजकी विशाल सेना लेकर पौण्ड्रक वासुदेव श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये गया। भगवान्‌ने दूरसे ही देखा पौण्ड्रक एक विशाल रथपर बैठा है। उसने अपने हाथोंमें कृत्रिम शङ्ख, चक्र और गदा ले रखे हैं। एक हाथमें कमल भी है। गलेमें वनमालाके स्थानपर एक बहुत बड़ा हार लटक रहा है। शार्ङ्गधनुषकी तरहका एक धनुष भी है। रथपर गरुड़चिह्नसे अङ्कित एक ध्वजा फहरा रही है और उसकी छातीमें श्रीवत्सका कृत्रिम चिह्न भी बना हुआ है। उसने मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल और शरीरपर पीताम्बर धारण कर रखा है। उसे देखकर भगवान् श्रीकृष्ण गम्भीरभावसे हँसे और उसकी सेनाके साथ युद्ध करने लगे। शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए बाणोंसे, गदासे और चक्रकी मारसे उन्होंने काशिराजकी सेनाका संहार कर डाला और अपने समान चिह्न धारण करनेवाले अज्ञानी पौण्ड्रकसे कहा—'पौण्ड्रक! तुमने जो दूतके मुखसे मुझे कहला भेजा था कि तुम अपने चिह्न छोड़ दो, सो अब मैं तुम्हारे आदेशका पालन करता हूँ। लो, यह चक्र छोड़ा; यह गदा छोड़ दी और इस गरुडको भी छोड़ा। यह तुम्हारी भुजापर आरूढ़ हो जाय।' यों कहकर भगवान्‌ने अपने छोड़े हुए चक्रसे पौण्ड्रकको विदीर्ण कर डाला। गदाके आघातसे उसे पृथ्वीपर गिरा दिया और गरुडने उसके कृत्रिम गरुडको भी तोड़-फोड़ डाला। पौण्ड्रकके मारे जानेपर वहाँ लोगोंमें हाहाकार मच गया। तब काशिराज अपने मित्रका बदला चुकानेके लिये श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णने शार्ङ्गधनुषद्वारा छोड़े हुए बाणोंसे काशिराजका मस्तक काटकर उसे काशीपुरीमें फेंक दिया। यह लोगोंके लिये बड़े विस्मयका कार्य था। इस प्रकार पौण्ड्रक और काशिराजको सेवकोंसहित मारकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकामें चले आये और वहाँ स्वर्गलोकमें स्थित देवताकी भाँति विहार करने लगे।

मुनियोंने कहा—मुने! अब हम परम बुद्धिमान् बलरामजीके शौर्य और पराक्रमका वृत्तान्त सुनना चाहते हैं। आप उसीका वर्णन कीजिये।

व्यासजी बोले—मुनियो! बलरामजी इस पृथ्वीको धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् शेष हैं। उनकी महिमा अनन्त है। वे अप्रमेय हैं। उन्होंने जो कार्य किया, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। दुर्योधनकी पुत्री कुमारी लक्ष्मणा स्वयंवरमें जा रही थी। उस समय जाम्बवतीके पुत्र वीरवर साम्बने उसे बलपूर्वक हर लिया। यह देख महापराक्रमी कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदि बहुत कुपित हुए। उन्होंने साम्बको युद्धमें जीतकर कैद कर लिया। यह सुनकर सम्पूर्ण यादवोंने दुर्योधन आदिपर बड़ा

क्रोध किया और उनका विनाश कर डालनेके लिये भारी तैयारी की। तब बलरामजीने यादवोंको रोककर कहा—'मैं अकेला ही कौरवोंके यहाँ जाता हूँ। वे मेरे कहनेसे साम्बको छोड़ देंगे।' तदनन्तर बलरामजी हस्तिनापुरमें जाकर बाहरके उद्यानमें ठहर गये, नगरमें नहीं गये। बलरामजीको आया जान दुर्योधन आदि कौरवोंने उन्हे गौ, अर्घ्य और जल भेंट किये। वह सब विधिपूर्वक स्वीकार करके बलरामजीने कौरवोंसे कहा—'राजा उग्रसेनकी आज्ञा है कि तुम सब लोग साम्बको शीघ्र छोड़ दो।'

बलदेवजीकी यह बात सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदिके क्रोधकी सीमा न रही। राजा बाह्लीक आदि भी कुपित हो उठे। उन्होंने यदुकुलको राज्यके अधिकारसे वञ्चित जान बलरामजीसे कहा—'बलदेव! तुमने यह कैसी बात कह डाली। कौन ऐसा यदुवंशी है, जो कौरवोंको आज्ञा देगा। यदि उग्रसेन भी कौरवोंको आज्ञा दें, तब तो हमें राजाओंके योग्य श्वेत-छत्र धारण करनेसे क्या लाभ होगा। अत: तुम लौट जाओ। साम्बने अन्यायपूर्ण कार्य किया है, अत: तुम्हारे या उग्रसेनके कहनेसे हम उसे छोड़ नहीं सकते। हमलोग यदुवंशियोंके माननीय हैं। कुकुर और अन्धक-वंशोंके लोग सदा हमको प्रणाम किया करते थे। अब वे ऐसा नहीं करते तो न सही; किंतु स्वामीको सेवककी ओरसे यह आज्ञा देनेकी बात कैसी। हमने तुमलोगोंको अपने समान आसन और भोजन देकर जो सम्मानित किया, उससे तुम्हारा अहंकार बहुत बढ़ गया है। इसमें तुम्हारा क्या दोष है। हमने ही प्रेमवश नीति नहीं देखी। बलराम! हमने तुम्हारे लिये जो यह अर्घ्य निवेदित किया है, इसमें केवल प्रेम ही कारण है। हमारे कुलकी ओरसे तुम्हारे कुलको अर्घ्य देना कदापि उचित नहीं है।'

यों कहकर कौरव चुप हो गये। उन्होंने श्रीकृष्णके पुत्रको बन्धनसे मुक्त नहीं किया। इस विषयमें उन सबने एक राय कर ली थी। वे सब-के-सब बलरामजीको वहीं छोड़ हस्तिनापुरमें चले गये। कौरवोंद्वारा किये हुए आक्षेपसे बलरामजीको बड़ा क्रोध हुआ। वे घूरते हुए उठकर खड़े हो गये और पैरकी एड़ीसे उन्होंने पृथ्वीपर प्रहार किया। महात्मा बलरामकी एड़ीके आघातसे पृथ्वी विदीर्ण हो गयी। वे अपनी गर्जनासे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाकर कम्पित करने लगे। वे आँखें लाल-लाल और भौंहें टेढ़ी करके बोले—'अहो! इन सारहीन दुरात्मा कौरवोंको अपने राजा होनेका इतना मद, इतना अभिमान है! क्या कौरव ही सम्राट्-पदके अधिकारी हैं? हमलोगोंका प्रभुत्व कुछ ही कालके लिये है? क्या बात है, जो ये महाराज उग्रसेनकी अलङ्घनीय आज्ञाको भी नहीं मानते। देवताओं और धर्मके साथ शचीपति इन्द्र भी उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हैं। इन्द्रकी सुधर्मा सभामें इस समय सदा महाराज उग्रसेन ही विराजमान होते हैं। इन कौरवोंका राजसिंहासन तो सैकड़ों मनुष्योंकी जूठन है; उसीपर इनको संतोष है! धिक्कार है इन्हें! आजसे उग्रसेन ही समस्त राजाओंके भी राजा बनकर रहें। अब मैं इस पृथ्वीको कौरवोंसे हीन करके ही द्वारकापुरीको लौटूँगा। कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, बाह्लीक, दु:शासन, भूरि, भूरिश्रवा, सोमदत्त, शल तथा अन्यान्य कौरवोंको उनके हाथी, घोड़े और रथोंके सहित मार डालूँगा और वीरवर साम्बको उनकी पत्नीके साथ द्वारकापुरीमें ले जाकर उग्रसेन आदि बन्धु-बान्धवोंका दर्शन करूँगा। अथवा देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे हमें शीघ्र ही पृथ्वीका भार उतारना है, इसलिये समस्त कौरवोंके साथ उनके हस्तिनापुर नगरको अभी गङ्गामें डाले देता हूँ।'

यों कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये बलभद्रजीने अपने हलका मुख नीचेकी ओर किया और चहारदीवारीकी जड़में धँसाकर खींचा। इससे सम्पूर्ण हस्तिनापुर सहसा डगमगाता-सा जान

पड़ा। यह देख समस्त कौरव व्याकुलचित्त होकर हाहाकार करने लगे और बलरामजीके पास आकर बोले—'महाबाहु राम! बलराम!! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये; मुसलायुध! अपना क्रोध शान्त कीजिये और हमपर प्रसन्न होइये। बलराम! ये पत्नीसहित साम्ब आपकी सेवामें समर्पित हैं। हम आपका प्रभाव नहीं जानते; इसीसे हमलोगोंके द्वारा आपका अपराध हुआ है। अब कृपया उसे क्षमा करें।' यों कहकर कौरवोंने पत्नीसहित साम्बको बलभद्रजीके सामने उपस्थित कर दिया। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि बलरामजीको प्रणाम करके प्रिय वचन कहने लगे। तब बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामने कहा—'अच्छा, मैंने क्षमा कर दिया।' इस समय भी हस्तिनापुर गङ्गाकी ओर कुछ झुका-सा दिखायी देता है। यह बलवान् और शूरवीर बलरामका ही प्रभाव है। तदनन्तर कौरवोंने बलरामजीके सहित साम्बका पूजन करके बहुत-से दहेज और नववधूके साथ उन्हें द्वारकापुरी भेज दिया।

द्विविदका वध, यदुकुलका संहार, अर्जुनका पराभव और पाण्डवोंका महाप्रस्थान

व्यासजी कहते हैं—मुनियो! बलशाली भगवान् बलरामजीने जो और पराक्रम किया था, वह भी सुनो। द्विविद नामसे प्रसिद्ध एक महापराक्रमी वानर था, जो देवद्रोही दैत्यपति नरकासुरका मित्र था। उसने देवताओंसे वैर बाँध लिया था। वह कहता था, 'श्रीकृष्णने देवताओंके कहनेसे ही बलवान् नरकासुरका वध किया है, अतः मैं समस्त देवताओंसे इसका बदला लूँगा।' इस निश्चयके अनुसार वह यज्ञोंका विध्वंस और मर्त्यलोकका विनाश करने लगा। अज्ञानसे मोहित होनेके कारण उसने साधु पुरुषोंकी मर्यादा तोड़ डाली और देहधारी जीवोंका संहार आरम्भ कर दिया। वह चञ्चल वानर देश, नगर और गाँवोंमें आग लगाने लगा। कहीं-कहीं पर्वत गिराकर गाँवों आदिको कुचल डालता था। पर्वतोंको उखाड़कर समुद्रके जलमें डाल देता था और स्वयं भी समुद्रके भीतर घुसकर उसका मन्थन आरम्भ कर देता था। इससे क्षुब्ध होकर समुद्र अपनी सीमा लाँघकर आगे बढ़ जाता और तटपर बसे हुए गाँवों तथा नगरोंको डुबो देता था। वानर द्विविद इच्छानुसार विशाल रूप धारण करके खेतोंमें लोटता, घूमता और खेतीको कुचलकर नष्ट कर डालता था। उस दुरात्माने सम्पूर्ण जगत्के विरुद्ध कार्य आरम्भ कर दिया था। कहीं कोई स्वाध्याय और वषट्कारका नाम लेनेवाला नहीं था। सब संसार अत्यन्त दुःखित हो गया था।

एक दिन रैवत पर्वतके उद्यानमें बलभद्रजी तथा महाभागा रेवती विहार कर रहे थे। उनके साथ और भी सुन्दर स्त्रियाँ थीं। बलभद्रजी रमणियोंके बीचमें विराजमान थे और वे उनके सुयशका गान कर रही थीं। इसी समय द्विविद भी वहाँ आया और उनके सम्मुख खड़ा हो उन्हींकी नकल करने लगा। वह दुष्ट वानर उन युवतियोंकी ओर देख-देखकर जोर-जोरसे हँसने लगा। यह देखकर बलभद्रजीने कुपित होकर उसे डाँटा, किंतु उनके डाँटनेकी परवा न करके वह किलकारी मारने लगा। तब बलरामजीने उठकर बड़े रोषके साथ मूसल हाथमें लिया। उधर वानरने भी एक भयंकर शिलाखण्ड उठा लिया और उसे बलभद्रजीपर चलाया; किंतु उन्होंने मूसलसे मारकर उस शिलाके सहस्रों टुकड़े कर दिये। द्विविदने बलरामजीके मूसलका वार बचाकर उनकी छातीमें बड़े वेग और रोषके साथ घूसा मारा। यह देख बलरामजीने भी क्रोधमें भरकर मुक्केसे उसके मस्तकपर प्रहार किया। इससे वह रक्त वमन करता हुआ निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते समय उसके शरीरके आघातसे उस पर्वत-शिखरके सैकड़ों टुकड़े हो गये, मानो उसपर वज्र गिरा हो। उस समय देवता बलरामजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा तथा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे और बोले—'वीर! आपने यह बड़ा अच्छा कार्य किया, यह दुष्ट वानर दैत्य-पक्षका सहायक था। इसने सम्पूर्ण जगत्‌को संकटमें डाल रखा था। सौभाग्यकी बात है कि आज यह मारा गया।'

इस प्रकार इस पृथ्वीको धारण करनेवाले परम बुद्धिमान् बलरामजीके अनेक अद्भुत पराक्रम हैं, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती।

इस तरह इस जगत्‌का उपकार करनेके लिये बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने दैत्यों और दुष्ट राजाओंका वध किया। फिर अर्जुनके साथ मिलकर भगवान्‌ने अनेक अक्षौहिणी सेनाओंका वध कराकर इस पृथ्वीका भार उतारा। इस प्रकार सम्पूर्ण दुष्ट राजाओंका संहार करके भूभार उतारनेके पश्चात् उन्होंने ब्राह्मणोंके शापको निमित्त बनाकर अपने कुलका भी संहार कर डाला। अन्तमें स्वयम्भू श्रीकृष्ण द्वारकापुरी छोड़कर अपने अंशभूत बलराम आदिके साथ पुनः अपने आश्रयभूत परम धामको चले गये।

मुनियोंने पूछा—ब्रह्मन्! भगवान्‌ने ब्राह्मणोंके शापको निमित्त बनाकर किस प्रकार अपने कुलका संहार किया?

व्यासजी बोले—एक समयकी बात है—पिण्डारक नामके महातीर्थमें विश्वामित्र, कण्व तथा महामुनि नारद पधारे थे। वहाँ यदुकुलके कुमारोंने उनका दर्शन किया। वे सभी कुमार यौवनके मदसे उन्मत्त थे, अतः भावीकी प्रेरणासे उन्होंने जाम्बवतीकुमार साम्बको स्त्रीके वेषमें विभूषित किया और मुनियोंको प्रणाम करके विनीत भावसे पूछा—'महर्षियो! यह स्त्री पुत्रकी अभिलाषा रखती है। बताइये, यह अपने पेटसे क्या जनेगी?' वे महर्षि दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न थे,

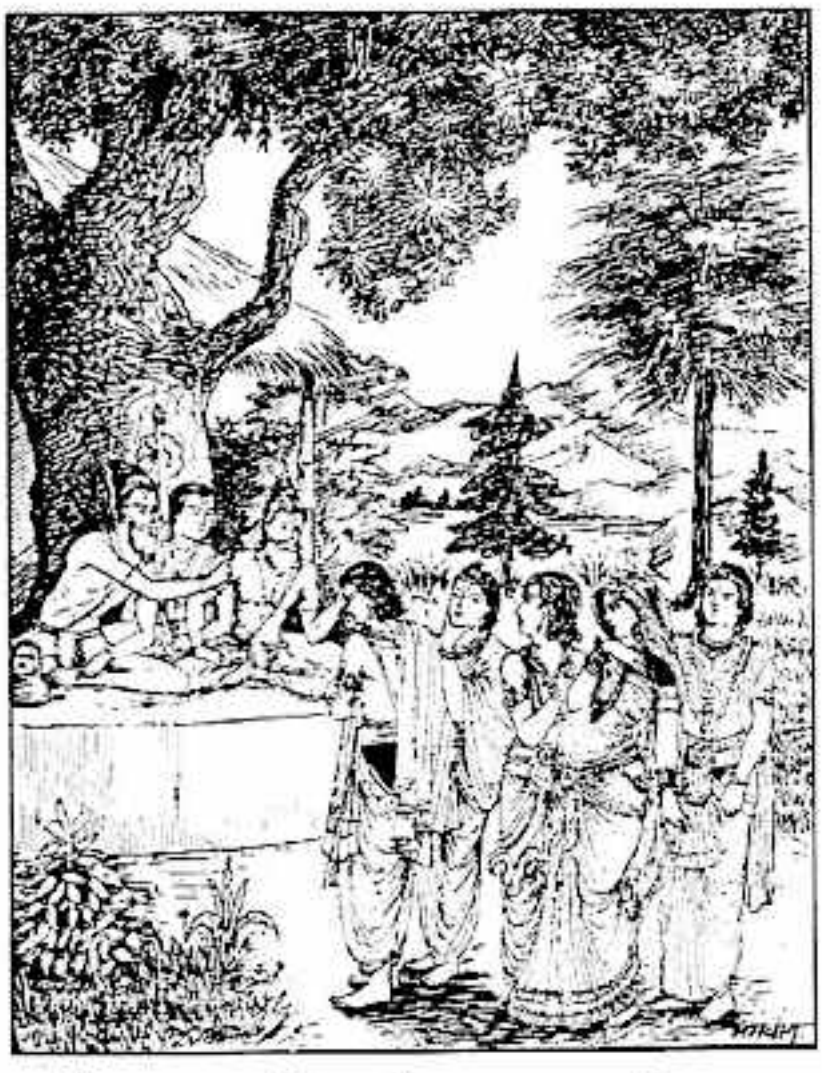

तथापि यदुकुमारोंने उनके साथ छल किया। यह देख उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महर्षियोंने यादवोंके नाशके लिये शाप देते हुए कहा—'यह

स्त्री एक मुसल पैदा करेगी, जिससे सम्पूर्ण यदुकुलका संहार हो जायगा।' उनके यों कहनेपर यदुकुमारोंने पुरीमें आकर राजा उग्रसेनको सब हाल कह सुनाया। साम्बके पेटसे मुसल पैदा हुआ। उग्रसेनने उस मुसलके लोहेको कुटवाकर चूर्ण बना दिया और उसे समुद्रमें फेंक दिया। वह चूर्ण एरका नामकी घासके रूपमें उत्पन्न हो गया। मुसलका जो लोहा था, उसे चूर्ण कर देनेपर भी उसका एक टुकड़ा बचा रह गया। उसे यादवगण किसी प्रकार भी चूर्ण न कर सके। उसकी आकृति तोमरके समान थी। वह टुकड़ा भी समुद्रमें फेंक दिया गया, किंतु उसे एक मत्स्यने निगल लिया। उस मत्स्यको मछेरोंने जाल बिछाकर पकड़ लिया। जब उसका पेट चीरा गया, तब वह लोहा निकला और उसे जरा नामक व्याधने ले लिया। भगवान् श्रीकृष्ण इन सभी बातोंको अच्छी तरह जानते थे तो भी उन्होंने विधाताके विधानको बदलना नहीं चाहा। इसी बीचमें देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णके पास अपना दूत भेजा। उसने एकान्तमें भगवान्‌को प्रणाम करके कहा—'भगवन्! वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, आदित्य, रुद्र तथा साध्य आदि देवताओंके साथ इन्द्रने मुझे दूत बनाकर भेजा है। प्रभो! देवगण आपसे जो निवेदन करना चाहते हैं, वह इस प्रकार है; सुनिये। देवताओंके प्रार्थना करनेपर आपने जो इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार लिया था, उसे आज सौ वर्षसे अधिक हो गये। दुराचारी दैत्य मारे गये। पृथ्वीका भार उतर गया। अब देवता आपसे सनाथ होकर स्वर्गमें निवास करें। जगन्नाथ! यदि आपको स्वीकार हो तो अब अपने परमधामको पधारें।'

श्रीभगवान् बोले—'दूत! तुम जो कुछ कहते हो, वह सब मैं जानता हूँ। इसीलिये मैंने यादवोंके संहारका कार्य आरम्भ कर दिया है। यदि यदुवंशियोंका संहार न हो तो यह पृथ्वीपर बहुत बड़ा भार रह जायगा; अतः मैं सात रातके भीतर जल्दी ही इस भारको भी उतार डालूँगा। जिस प्रकार मैंने द्वारकापुरी बसानेके लिये समुद्रसे भूमि माँगी थी, उसी प्रकार उसे वह भूमि लौटा भी दूँगा और यादवोंका संहार करके अपने परमधामको जाऊँगा। देवराज इन्द्र तथा देवताओंको यों मानना चाहिये कि मैं बलरामजीके साथ अब अपने धाममें आ ही गया। इस पृथ्वीके भाररूप जो जरासंध आदि राजा थे, वे मारे गये; तथापि इन यदुवंशियोंका भार उनसे भी बढ़कर है, अतः पृथ्वीके इस महाभारको उतारकर ही मैं देवलोककी रक्षाके लिये अपने धाममें जाऊँगा।'

भगवान् वासुदेवके यों कहनेपर देवदूत उन्हें प्रणाम करके दिव्य गतिसे देवराजके समीप चला गया। इधर द्वारकापुरीमें दिन-रात विनाशके सूचक दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्षसम्बन्धी उत्पात होने लगे। उन्हें देखकर भगवान्‌ने यादवोंसे कहा—'देखो, ये अत्यन्त भयंकर महान् उत्पात हो रहे हैं। इनकी शान्तिके लिये हम सब लोग शीघ्र ही प्रभासक्षेत्रमें चलें।' उस समय महान् भगवद्भक्त उद्धवजीने श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'भगवन्! अब मुझे क्या करना चाहिये? इसके लिये आज्ञा दें। मैं समझता हूँ आप इस समस्त यादवकुलका संहार करना चाहते हैं; क्योंकि मुझे ऐसे निमित्त दिखायी देते हैं, जो इस कुलके विनाशकी सूचना देनेवाले हैं।'

श्रीभगवान् बोले—उद्धव! तुम मेरी कृपासे प्राप्त हुई दिव्य गतिके द्वारा गन्धमादन पर्वतपर परम पवित्र बदरिकाश्रमतीर्थमें चले जाओ। वह श्रीनर-नारायणका स्थान है। वहाँकी भूमि बड़ी पवित्र है। उस तीर्थमें मेरा चिन्तन करते हुए निवास करो, फिर मेरी कृपासे तुम्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी। मैं इस कुलका संहार करके अपने धामको जाऊँगा। मेरे त्याग देनेपर समुद्र इस द्वारकापुरीको डुबो देगा।

भगवान्‌के यों कहनेपर उद्धवजी उन्हें प्रणाम करके नर-नारायणके आश्रममें चले गये। तदनन्तर सम्पूर्ण यादव शीघ्रगामी रथपर आरूढ़ हो बलराम और श्रीकृष्ण आदिके साथ प्रभासक्षेत्रमें गये। वहाँ पहुँचकर कुकुर और अन्धकवंशके सब लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक मदिरा-पान किया। पीते समय उनमें परस्पर संघर्ष हो गया, जिससे विनाश करनेवाली कलहाग्नि प्रज्वलित हो उठी। दैवके अधीन होकर उन्होंने एक-दूसरेको शस्त्रोंसे मारना आरम्भ किया। जब शस्त्र समाप्त हो गये, तब पास ही जमी हुई एरका नामकी घास सबने उखाड़ ली। उनके हाथोंमें आनेपर वह एरका वज्रकी भाँति दिखायी देने लगी। उसके द्वारा वे एक-दूसरेपर भयंकर प्रहार करने लगे। प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, सुचारु तथा अक्रूर आदि सभी यदुवंशी एरकारूप वज्रसे एक-दूसरेको मारने लगे। श्रीहरिने यादवोंको ऐसा करनेसे रोका; किंतु वे उन्हें अपने विपक्षीका सहायक मानने लगे और उनकी अवहेलना करके परस्पर प्रहार करते ही रहे। इससे भगवान् श्रीकृष्णको भी क्रोध हो आया। अतः उन्होंने भी उनका वध करनेके लिये मुट्ठीभर एरका उखाड़ ली। हाथमें आते ही वह एरका लोहेका मुसल बन गयी। उस मुसलसे भगवान्‌ने सहसा समस्त यादवोंका संहार कर डाला तथा अन्य यादव आपसमें ही लड़कर नष्ट हो गये। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णका जैत्र नामक रथ दारुकके देखते-देखते समुद्रके मध्यवर्ती मार्गद्वारा शीघ्र ही चला गया। उसमें जुते हुए घोड़े उस रथको लेकर उड़ गये। फिर शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, दोनों अक्षय तूणीर और खड्ग—ये सभी अस्त्र-शस्त्र भगवान्‌की परिक्रमा करके सूर्यके मार्गसे चले गये। क्षणभरमें वहाँ सम्पूर्ण यदुवंशियोंका संहार हो गया। केवल महाबाहु श्रीकृष्ण और दारुक रह गये। उन दोनोंने घूमते हुए आगे जाकर देखा, बलरामजी एक वृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठे हैं और उनके मुँहसे एक विशाल नाग निकल रहा है। वह महाकाय सर्प उनके मुखसे निकलकर सिद्धों और नागोंसे पूजित हो समुद्रकी ओर चला गया। समुद्रने सामने आकर उसे अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ नागोंसे पूजित हो समुद्रके जलमें प्रवेश कर गया।

इस प्रकार बलरामजीका प्रयाण देखकर श्रीकृष्णने दारुकसे कहा—"तुम द्वारकामें जाकर यह सब वृत्तान्त वसुदेवजी तथा राजा उग्रसेनसे कहो—

'बलरामजी चले गये। यदुवंशियोंका संहार

हो गया और मैं भी योगस्थ होकर परमधामको चला जाऊँगा।' ये सब बातें बताकर द्वारकावासी मनुष्यों और उग्रसेनसे यह भी कहना कि 'अब इस सम्पूर्ण द्वारकापुरीको समुद्र डुबो देगा, अतः आपलोग यहाँसे जानेके लिये रथोंको सुसज्जित करके अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा करें। जब अर्जुन द्वारकासे निकलें तब कोई भी वहाँ न रहे। सब लोग अर्जुनके साथ ही चले जायँ।' दारुक! तुम कुन्तीनन्दन अर्जुनसे भी जाकर मेरी ये बातें कहो—'द्वारकामें जो मेरी स्त्रियाँ हैं, उनकी वे यथाशक्ति रक्षा करेंगे।' यह कहकर अर्जुनको साथ ले तुम द्वारकामें आना और सबको बाहर निकाल ले जाना। अब यदुकुलमें अनिरुद्धकुमार वज्रनाभ राजा होंगे।''

यह सुनकर दारुकने भगवान् श्रीकृष्णको बारंबार प्रणाम किया और अनेक बार उनकी परिक्रमा करके वह उनके कथनानुसार वहाँसे चला गया। उसने जाकर भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार सब कार्य किया। वह अर्जुनको द्वारकामें बुला ले आया और महाबुद्धिमान् वज्रको यदुवंशियोंका राजा बनाया। उधर भगवान् श्रीकृष्णने वासुदेवस्वरूप परब्रह्मको अपने आत्मामें आरोपित करके सम्पूर्ण भूतोंमें उनके व्याप्त होनेकी धारणा की और योगयुक्त होकर अपने एक पैरको दूसरे पैरके घुटनेपर रखकर बैठे। वे ब्राह्मण दुर्वासाके वचनका मान रखना चाहते थे।* उसी समय जरा नामका व्याध उस ओर आ निकला। उसने मुसलके बचे हुए लोहखण्डका बाण बनाकर उसे धारण कर रखा था। भगवान्‌का चरण उसे मृगके आकारका दिखायी दिया। उसे देखकर वह खड़ा हो गया और उसी तोमरसे उसने भगवान्‌के पैरको बींध डाला। जब वह उनके समीप गया तब वे उसे चार भुजाधारी मनुष्यके रूपमें दृष्टिगोचर हुए। भगवान्‌को देखते ही वह उनके चरणोंमें पड़ गया और बारंबार कहने लगा—'प्रभो! प्रसन्न होइये। मैंने अनजानमें हरिणके धोखेसे यह अपराध किया है, अतः क्षमा कीजिये।'

तब भगवान्‌ने उससे कहा—'व्याध! तुझे तनिक भी भय नहीं है। तू मेरे प्रसादसे इन्द्रलोकमें चला जा।' भगवान्‌के इतना कहते ही वहाँ विमान आ पहुँचा और वह व्याध उसपर बैठकर भगवान्‌की कृपासे स्वर्गलोकको चला गया। उसके चले जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने त्रिविध गतिको पार करके अपने आत्माको अव्यय, अचिन्त्य, अमल, अजन्मा, अजर, अविनाशी, अप्रमेय, अखिलात्मा एवं ब्रह्मभूत अपने ही वासुदेवस्वरूपमें लीन कर लिया।

तत्पश्चात् अर्जुनने सम्पूर्ण यादवोंका विधिपूर्वक प्रेतकर्म (और्ध्वदैहिक संस्कार) किया। फिर वज्र आदि सब लोगोंको साथ ले वे द्वारकासे बाहर निकले। श्रीकृष्णकी हजारों पत्नियाँ भी साथ ही

* महाभारतमें प्रसङ्ग आया है कि एक बार महर्षि दुर्वासा भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ पधारे। भगवान्‌ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। दुर्वासाने कहा—'आप मेरी जूठन अपने सारे शरीरमें लगाइये।' भगवान्‌ने ऐसा ही किया। किंतु उसे पैरके नीचे नहीं लगाया, इसलिये कि ब्राह्मणकी जूठनका अपमान न हो जाय। दुर्वासाने कहा, 'जहाँ-जहाँ जूठन लगी है, वह सारा अङ्ग दुर्भेद्य होगा और जहाँ नहीं लगी है, वह किसी शस्त्रसे बिंध जायगा।'

थीं। उन सबकी रक्षा करते हुए कुन्तीनन्दन अर्जुन धीरे-धीरे चले। भगवान् श्रीकृष्णने मर्त्यलोकमें जो सुधर्मा सभा मँगवायी थी, वह और पारिजात वृक्ष दोनों ही पुन: स्वर्गको चले गये। श्रीहरि जिस दिन इस पृथ्वीको छोड़कर अपने धामको पधारे, उसी दिन यह मलिनकाय कलियुग भूतलपर प्रकट हुआ। समुद्रने मनुष्योंसे सूनी द्वारकाको डुबो दिया। केवल भगवान् श्रीकृष्णका मन्दिर वह अब भी नहीं डुबाता। वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण नित्य विराजमान रहते हैं। वह परम पवित्र भगवद्धाम सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला है। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंसे युक्त उस पवित्र स्थानका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

अर्जुन द्वारकावासियोंको साथ ले प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न पञ्चनद (पंजाब) देशमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सब लोगोंके साथ एक स्थानपर पड़ाव डाला। वहाँ बहुत-से लुटेरे रहते थे। उन्होंने देखा एकमात्र धनुर्धर अर्जुन ही बहुत-सी अनाथ स्त्रियोंको साथ लिये जाता है। तब उनके मनमें लोभ उत्पन्न हुआ। लोभसे उनकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी, अत: वे अत्यन्त दुर्मद पापाचारी आभीर एकत्रित होकर आपसमें सलाह करने लगे—'भाइयो! यह अर्जुन अकेला हम सब लोगोंकी अवहेलना करके इन अनाथ स्त्रियोंको लिये जाता है। इसके हाथमें केवल धनुष है। इसीके बलपर यह हमें कुछ नहीं समझता। यह हमारे लिये धिक्कारकी बात है। तुम सब लोग बल लगाओ।'

ऐसा निश्चय करके लाठी और ढेले चलानेवाले डाकू हजारोंकी संख्यामें उन स्त्रियोंपर टूट पड़े। यह देख कुन्तीनन्दन अर्जुनने उनका उपहास-सा करते हुए कहा—'ओ पापियो! यदि तुम्हारी मरनेकी इच्छा न हो तो लौट जाओ।' आभीरोंपर उनकी धमकीका कुछ भी असर न हुआ। उन्होंने अर्जुनके वचनोंकी अवहेलना करके सारा धन लूट लिया। तब अर्जुनने अपने दिव्य गाण्डीव धनुषको चढ़ाना आरम्भ किया; किंतु बलवान् होनेपर भी वे उसे चढ़ा न सके। बड़ी कठिनाईसे किसी तरह उन्होंने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी भी तो वह पुन: ढीली हो गयी तथा उनके बहुत स्मरण करनेपर भी उन्हें किसी अस्त्र-शस्त्रकी याद न आयी। उन्होंने डाकुओंपर बाण चलाये, किंतु वे बाण उन्हें घायल न कर सके। अग्निदेवके दिये हुए अक्षय बाण उन ग्वालोंके साथ युद्ध करनेमें नष्ट हो गये। अर्जुनकी शक्ति भी क्षीण हो गयी। उस समय अर्जुनके मनमें यह निश्चय हुआ कि 'मैंने अपने बाण-समूहोंसे जो बड़े-बड़े बलवान् राजाओंको परास्त किया है, वह श्रीकृष्णका ही बल था।' बाणोंके नष्ट हो जानेपर अर्जुनने धनुषकी नोकसे डाकुओंको मारना आरम्भ किया, किंतु वे उनके इस प्रहारकी हँसी उड़ाने लगे। वे म्लेच्छ लुटेरे अर्जुनके देखते-देखते वृष्णि और अन्धकवंशकी सुन्दरी स्त्रियोंको लेकर चारों ओर चम्पत हो गये। तब अर्जुनने दु:खी होकर कहा—'हाय! यह बड़े कष्टकी बात हुई। अहो! भगवान् श्रीकृष्णने मुझे अकेला छोड़ दिया।' यों कहकर वे फूट-फूटकर रोने लगे और रोते-रोते ही बोले—'हाय! यह वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ और वे ही घोड़े हैं; किंतु आज सब एक साथ ही नष्ट हो गये। अहो! दैव बड़ा प्रबल है। महात्मा श्रीकृष्णके बिना मुझे सामर्थ्य रहते हुए नीच पुरुषोंसे अपमानित होना पड़ा। वे ही मेरी भुजाएँ, वही मुष्टि और वही मैं अर्जुन; किंतु उन पुण्यपुरुष श्रीकृष्णके बिना आज सब कुछ नि:सार हो गया। मेरा अर्जुनत्व और भीमसेनका भीमत्व भगवान्‌के ही कारण था, तभी तो आज उनके न रहनेपर मुझे आभीरोंने जीत लिया। अन्यथा यह कैसे सम्भव था।' इस प्रकार कहते हुए अर्जुन अपने श्रेष्ठ नगर इन्द्रप्रस्थमें गये। वहाँ उन्होंने यादवकुमार वज्रको यदुवंशियोंका राजा बनाया। तदनन्तर वे वनमें आकर मुझसे मिले और मुझे विनयपूर्वक प्रणाम किया। अर्जुनको अपने चरणोंकी वन्दना करते देख मैंने पूछा—'पार्थ!

तुम इस प्रकार अत्यन्त उदास क्यों हो रहे हो? तुमसे किसी ब्राह्मणकी हत्या तो नहीं हो गयी है? अथवा विजयकी आशा भङ्ग होनेसे तुम्हें दु:ख हो रहा है? इस समय तुम सर्वथा श्रीहीन हो गये हो। तुमने किसी अगम्या स्त्रीसे रमण तो नहीं किया, जिससे तुम्हारी कान्ति फीकी पड़ गयी है? या कहीं निम्न श्रेणीके मनुष्योंने तुम्हें युद्धमें परास्त कर दिया है?'

मेरे ऐसा प्रश्न करनेपर अर्जुनने लंबी साँस छोड़ते हुए कहा—'भगवन्! सुनिये—जो हमारे तेज, बल, वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति थे, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंको छोड़कर चले गये। मुने! जो महान् होकर भी साधारण मनुष्योंकी भाँति हमसे हँस-हँसकर बातें किया करते थे, उन्हींके बिना आज हम तिनकोंके पुतलेकी भाँति सारहीन हो गये हैं। मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्य बाणों और गाण्डीव धनुषके जो मूर्तिमान् सार थे, वे भगवान् पुरुषोत्तम हमें छोड़कर चले गये। जिनकी कृपादृष्टिसे लक्ष्मी, विजय, सम्पत्ति और उन्नतिने कभी हमारा साथ नहीं छोड़ा, वे भगवान् गोविन्द हमें छोड़कर चले गये। जिनके प्रभावरूपी अग्निसे भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि वीर जलकर भस्म हो गये, उन भगवान् श्रीकृष्णने इस भूमण्डलको त्याग दिया। तात! चक्रपाणि गोविन्दके विरहमें केवल मैं ही नहीं, यह सारी पृथ्वी ही यौवन, श्री और कान्तिसे हीन प्रतीत होती है। जिनकी कृपासे भीष्म आदि वीर आगमें पतङ्गोंकी भाँति मेरे पास आकर भस्म हो गये, आज उन्हीं श्रीकृष्णके बिना मुझे ग्वालोंने हरा दिया। जिनके प्रभावसे मेरा गाण्डीव धनुष तीनों लोकोंमें विख्यात हो चुका था, उन्हीं श्रीहरिके बिना उसे आभीरोंने डंडोंसे तिरस्कृत कर दिया। महामुने! मेरे साथ कई हजार अनाथ स्त्रियाँ थीं और मैं उनकी रक्षाके लिये पूर्ण यत्न कर रहा था तो भी डाकुओंने केवल लाठीके बलपर उन्हें छीन लिया। पितामह! ऐसी अवस्थामें मेरा श्रीहीन होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि मैं नीच पुरुषोंद्वारा अपमानके पङ्कमें साना जाकर भी निर्लज्जतापूर्वक जीवन धारण कर रहा हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो! पाण्डुनन्दन महात्मा अर्जुन अत्यन्त दु:खी और दीन हो रहे थे। उनकी बात सुनकर मैंने कहा—'पार्थ! तुम लज्जा न करो। शोकमें भी न पड़ो। सोचो और समझो; सम्पूर्ण भूतोंमें कालकी ऐसी ही गति है। पाण्डुनन्दन! प्राणियोंकी उन्नति और अवनतिका कारण काल ही है। यह जो कुछ होता है और हुआ है, सब कालमूलक ही है—यह जानकर तुम धैर्य धारण करो। नदी, समुद्र, पर्वत, सम्पूर्ण पृथ्वी, देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष और साँप, बिच्छू आदि सब भूतोंको कालने ही उत्पन्न किया है और कालके द्वारा ही पुन: उनका संहार होगा। यह सारा प्रपञ्च कालस्वरूप ही है—यह जानकर शान्त हो जाओ। धनंजय! तुमने श्रीकृष्णकी जैसी महिमा बतलायी है, वह वैसी ही है। उन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही यहाँ अवतार लिया था। जब पृथ्वीपर भार अधिक हो गया और वह दबने लगी, तब वह देवताओंके पास गयी थी। उसीके लिये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले श्रीहरिने अवतार ग्रहण किया था। वह कार्य पूरा हो गया। सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे गये तथा वृष्णि और अन्धकवंशका भी संहार हो गया। अब इस भूतलपर भगवान्‌के करनेयोग्य कोई कार्य शेष नहीं रह गया था, अत: अवतार-कार्य पूरा करके वे इच्छानुसार अपने धामको चले गये हैं। देवदेव भगवान् श्रीकृष्ण ही सृष्टिके समय संसारकी सृष्टि और पालनके समय पालन करते हैं तथा वे ही संहारकालमें सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करनेमें समर्थ होते हैं, जैसा कि इस समय भी उन्होंने दुष्ट राक्षसोंका संहार किया था। अत: पार्थ! तुम्हें अपनी पराजयसे दु:ख नहीं मानना चाहिये;

क्योंकि अभ्युदयका समय आनेपर ही पुरुषोंद्वारा बड़े-बड़े पराक्रम होते हैं। जिस समय तुमने अकेले ही भीष्म-जैसे वीरोंका वध किया था, उस समय उनका भी क्या अपनेसे न्यून पुरुषके द्वारा पराभव नहीं हुआ था? किंतु यह पराजय कालकी ही देन थी। भगवान् विष्णुके प्रभावसे जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा उनकी पराजय हुई, उसी प्रकार लुटेरोंके हाथसे तुम्हें भी पराजित होना पड़ा। वे जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण भिन्न-भिन्न शरीरोंमें प्रवेश करके संसारका पालन करते हैं और अन्तमें सब जीवोंका संहार कर डालते हैं। जब तुम्हारे अभ्युदयका समय था, तब भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे सहायक हो गये थे और जब वह समय बीत गया, तब तुम्हारे विपक्षियोंपर भगवान्‌की कृपादृष्टि हुई है। तुम गङ्गानन्दन भीष्मके साथ सम्पूर्ण कौरवोंका संहार कर डालोगे—इस बातपर पहले कौन विश्वास कर सकता था और फिर तुम्हें आभीरोंसे परास्त होना पड़ेगा—यह बात कौन मान सकता था। परंतु दोनों ही बातें सम्भव हुईं। पार्थ! यह सम्पूर्ण भूतोंमें श्रीहरिकी लीलाका ही विलास है। अतः तुम्हें तनिक भी शोक नहीं करना चाहिये। सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णने ही सम्पूर्ण यादवोंका संहार किया है। तुमलोगोंका संहार-काल भी समीप ही है; इसीलिये भगवान्‌ने तुम्हारे बल, तेज, पराक्रम और माहात्म्यका पहले ही संहार कर दिया है। जो जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु निश्चित है। जो ऊँचे चढ़ चुका है, उसका नीचे गिरना भी अवश्यंभावी है। संयोगका अवसान वियोगमें ही होता है और संग्रह हो जानेके बाद उसका क्षय होना भी निश्चित बात है। यह समझकर विद्वान् पुरुष हर्ष और शोकके वशीभूत नहीं होते और इतर मनुष्य भी उन्हींके आचरणसे शिक्षा लेकर वैसे ही बनते हैं।* नरश्रेष्ठ! यह समझकर तुम्हें भाइयोंके साथ सारा राज्य छोड़कर तपस्याके लिये वनमें जाना चाहिये। अब जाओ, धर्मराज युधिष्ठिरसे मेरी ये सारी बातें कहो। वीर! परसोंतक अपने भाइयोंके साथ जैसे भी हो सके घरसे प्रस्थान कर दो।'

यह सुनकर अर्जुनने धर्मराजके पास जा अपनी देखी और अनुभव की हुई सारी बातें कह सुनायीं। अर्जुनके मुखसे मेरा संदेश सुनकर समस्त पाण्डव परीक्षित्‌को राज्यपर अभिषिक्त करके वनमें चले गये। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे यदुकुलमें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

श्रीहरिके अनेक अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन

मुनियोंने कहा—मुनिश्रेष्ठ! आपने श्रीकृष्ण और बलरामका कैसा अद्भुत माहात्म्य बतलाया! उनकी महिमा अलौकिक है। इस पृथ्वीपर भगवान्‌के माहात्म्यकी चर्चा अत्यन्त दुर्लभ है। महाभाग! आपके मुखसे भगवत्कथा सुनते-सुनते हमें तृप्ति नहीं होती, अतः उनकी लीलाओंका पुनः वर्णन कीजिये। हमने साधु पुरुषोंके मुखसे सुना है कि पुराणोंमें अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके वाराह अवतारका वर्णन है। ब्रह्मन्! भगवान् नारायणने किस प्रकार वाराहरूप धारण किया? और किस प्रकार अपनी दंष्ट्रासे एकार्णवमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया? सबको अपनी

---

* जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतः। विप्रयोगावसानस्तु संयोगः संचयः क्षयः॥
विज्ञाय न बुधाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये। तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः॥
(२१२। ८९-९०)

ओर आकृष्ट करनेवाले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीहरिकी समस्त लीलाओंका हम विस्तारपूर्वक श्रवण करना चाहते हैं।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! तुमलोगोंने मुझपर यह बहुत बड़े प्रश्नका भार रख दिया। मैं यथाशक्ति तुम्हारें प्रश्नोंका उत्तर दूँगा। भगवान् विष्णुकी लीला-कथाका श्रवण करो। भगवान् विष्णुके प्रभावको सुननेमें जो तुम्हारा मन लगा है, यह बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है। अतः श्रीविष्णुकी जो-जो लीलाएँ हैं, उन सबका वर्णन सुनो। वेदवेत्ता ब्राह्मण जिन्हें सहस्रमुख, सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, सहस्रशिरा, सहस्रकर, अविनाशी देव, सहस्रजिह्व, भास्वान्, सहस्रमुकुट, प्रभु, सहस्रदाता, सहस्रादि, सहस्रबाहु, हवन, सवन, होता, हव्य, यज्ञपात्र, पवित्रक, वेदी, दीक्षा, समिधा, स्रुवा, स्रुक्, सोम, सूप, मूसल, प्रोक्षणी, दक्षिणायन, अध्वर्यु, सामग ब्राह्मण, सदस्य, सदन, सभा, यूप, चक्र, ध्रुवा, दर्वी, चरु, उलूखल, प्राग्वंश, यज्ञभूमि, छोटे-बड़े चराचर जीव, प्रायश्चित्त, अर्घ्य, स्थण्डिल, कुश, मन्त्र, यज्ञको वहन करनेवाले अग्निदेव, यज्ञभाग, भागवाहक, अग्राशनभोजी, सोमभोक्ता, हुतार्चि, उदायुध तथा यज्ञमें सनातन प्रभु कहते हैं, उन श्रीवत्सचिह्नविभूषित देवेश्वर भगवान् विष्णुके सहस्रों अवतार हो चुके है और समय-समयपर होते रहते हैं। उनका जो वाराह अवतार है, वह वेदप्रधान यज्ञस्वरूप है। चारों वेद उनके चरण और यूप उनकी दाढ़ें हैं। यज्ञ दाँत और चितियाँ मुख हैं। साक्षात् अग्नि ही उनकी जिह्वा, कुश रोमावलि और ब्रह्म मस्तक है। उनका तप महान् है। दिन और रात्रि उनके नेत्र हैं। वे दिव्यस्वरूप हैं। वेद उनका अङ्ग और श्रुतियाँ आभूषण हैं। हविष्य नासिका, स्रुवा थूथुन और सामवेदका गम्भीर घोष ही उनका स्वर है। वे सत्य धर्मस्वरूप, श्रीसम्पन्न तथा क्रम (गति) और विक्रम (पराक्रम)-के द्वारा सम्मानित हैं। प्रायश्चित्त उनके नख, पशु उनके घुटने तथा यज्ञ उनका स्वरूप है। उद्गाता अन्त्र (आँत), होम लिङ्ग, ओषधि एवं महान् फल बीज हैं। वादी अन्तरात्मा, मन्त्र नितम्ब और सोमरस उनका रक्त है। वेदी कंधा, हविष्य गन्ध तथा हव्य और गव्य उनका प्रचण्ड वेग है। प्राग्वंश (यजमान-गृह) उनका शरीर है। वे परम कान्तिमान् और नाना प्रकारकी दीक्षाओंसे सम्पन्न हैं। दक्षिणा उनका हृदय है। वे महान् योगी और महायज्ञमय हैं। उपाकर्म (वेदोंका स्वाध्याय) उनका हार और प्रवर्ग (एक प्रकारकी होमाग्नि) उनका आभूषण है। नाना प्रकारके छन्द उनके चलनेके मार्ग हैं। गूढ उपनिषद् उनके बैठनेके लिये आसन हैं। पृथ्वीकी छायारूप पत्नी सदा उनके साथ रहती हैं, वे मणिमय शिखरकी भाँति पानीके ऊपर प्रकट हुए। समुद्र, पर्वत, वन और काननोंसहित समस्त पृथ्वी एकार्णवके जलमें डूबी थी। सम्पूर्ण जगत्के आदि कारण और सहस्रों मस्तकोंवाले भगवान्ने वाराहरूपमें प्रकट होकर एकार्णवमें प्रवेश किया तथा सब लोकोंका हित करनेकी इच्छासे पृथ्वीको अपनी दाढ़पर उठा लिया। इस प्रकार समस्त जीवोंके हितैषी भगवान् यज्ञवाराहने समुद्र-जलको धारण करनेवाली समूची पृथ्वीका उद्धार किया।

द्विजवरो! यह वाराह-अवतारका वर्णन हुआ। उसके बाद भगवान्का नरसिंह अवतार हुआ। उस अवतारमें भगवान्ने नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु नामक दैत्यका वध किया था। प्राचीन कालके सत्ययुगकी बात है, दैत्योंके आदिपुरुष देवशत्रु बलाभिमानी हिरण्यकशिपुने बड़ी भारी तपस्या की। वह साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक शम-दम तथा ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ मौनव्रत लेकर जप और उपवासमें संलग्न रहा। उसकी तपस्या और नियम-पालनसे स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने हंससे जुड़े हुए सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा स्वयं

आकर दैत्यको वरदान दिया। उनके साथ आदित्य, वसु, मरुद्गण, देवता, रुद्रगण और विश्वेदेव भी थे। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ चराचरगुरु ब्रह्माजीने उस दैत्यसे कहा—'सुव्रत! तुम मेरे भक्त हो। मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम कोई वर माँगो और उसके द्वारा अभीष्ट वस्तु प्राप्त करो।'

हिरण्यकशिपु बोला—लोकपितामह! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस मुझे मार न सकें। तपस्वी ऋषि भी क्रोधमें आकर मुझे शाप न दें। किसी अस्त्र या शस्त्रसे, वृक्ष या पर्वतसे, अथवा सूखी या गीली वस्तुसे, ऊपर या नीचे—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। जो मेरे सेवक, सेना और वाहनोंसहित मुझे एक ही थप्पड़से मार डालनेमें समर्थ हो, उसीके हाथसे मेरी मृत्यु हो।

ब्रह्माजीने कहा—तात! ये दिव्य और अद्भुत वर मैंने तुम्हें दिये। इन सम्पूर्ण अभीष्टोंको तुम निःसन्देह प्राप्त करोगे।

यों कहकर पितामह ब्रह्माजी ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित वैराजपद—ब्रह्मधामको चले गये। तदनन्तर उस वरदानकी बात सुनकर देवता, नाग, गन्धर्व और मनुष्य ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले—'भगवन्! इस वरदानसे तो वह असुर हमलोगोंको सदा ही कष्ट पहुँचाता रहेगा, अतः हमारे ऊपर प्रसन्न हो उसके वधका भी उपाय सोचिये।'

ब्रह्माजीने कहा—देवताओ! उसे अपनी तपस्याका फल अवश्य प्राप्त होगा। उसका भोग समाप्त होनेपर वह साक्षात् भगवान् विष्णुके हाथसे मारा जायगा।

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर सब देवता प्रसन्न हो अपने-अपने दिव्य स्थानोंको चले गये। वर पाते ही दैत्यराज हिरण्यकशिपु अभिमानमें आकर समस्त प्रजाको कष्ट देने लगा। आश्रममें रहनेवाले सत्यधर्मपरायण, जितेन्द्रिय एवं उत्तम व्रतधारी महाभाग मुनियोंको भी उसने सताना आरम्भ कर दिया। स्वर्गके देवताओंको हराकर तीनों लोकोंको अपने अधीन करके वह महाबली असुर स्वयं ही स्वर्गमें रहने लगा। वरदानके मदसे उन्मत्त होकर पृथ्वीपर विचरते हुए उस दानवने दैत्योंको तो यज्ञका भागी बनाया और देवताओंको उससे वञ्चित कर दिया। तब आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव और मरुद्गण शरणागतरक्षक सनातन प्रभु महाबली भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और इस प्रकार बोले—'देवेश्वर! आप हिरण्यकशिपुके भयसे हमारी रक्षा करें। आप ही हमारे परम देवता, परम गुरु और परम विधाता हैं। सुरश्रेष्ठ! आप ब्रह्मा आदि देवताओंके भी पालक हैं। आपके नेत्र विकसित कमलदलके समान शोभा पाते हैं। आप शत्रुपक्षका नाश करनेवाले हैं। भगवन्! हमें शरण दीजिये और दैत्योंका संहार कीजिये।'

भगवान् वासुदेवने कहा—देवताओ! भय छोड़ो। मैं तुम्हें अभय देता हूँ। तुम शीघ्र ही पहलेकी भाँति स्वर्गलोकको प्राप्त करोगे। मैं वरदानसे उन्मत्त दानवराज हिरण्यकशिपुको, जो देवेश्वरोंके लिये अवध्य हो रहा है, उसके सेवकगणोंसहित मार डालूँगा।

यों कहकर भगवान् उन देवेश्वरोंको विदा करके स्वयं हिरण्यकशिपुके स्थानपर आये। उस समय उन्होंने आधा शरीर मनुष्यका और आधा सिंहका बना रखा था। इस प्रकार नृसिंहदेह धारण किये हाथ-में-हाथ मिलाये हुए आये। उनके शरीरका वर्ण मेघके समान श्याम था। शब्द भी मेघकी गर्जनाके समान ही गम्भीर था। ओज और वेगमें भी वे मेघके ही सदृश थे। मतवाले सिंहके समान उनकी चाल थी। यद्यपि हिरण्यकशिपु बलाभिमानी दैत्योंसे सुरक्षित और अत्यन्त बलशाली था तो भी भगवान्ने उसे एक ही थप्पड़से मारकर यमलोक पहुँचा दिया।

यह नृसिंह अवतारकी कथा कही गयी। अब वामन-अवतारका वर्णन सुनो। भगवान्‌का वामनरूप दैत्योंका विनाश करनेवाला था। उस रूपको धारणकर श्रीहरि बलवान् बलिके यज्ञमें गये और वहाँ उन्होंने अपने तीन ही पगोंसे त्रिलोकीको नापकर सम्पूर्ण दैत्योंको क्षुब्ध कर डाला। बलिके हाथसे समूची पृथ्वी लेकर भगवान्‌ने इन्द्रको दे दी। यही महात्मा श्रीविष्णुका वामन अवतार है। वेदवेत्ता ब्राह्मण भगवान् वामनके यशका सदा गान करते हैं।

तदनन्तर भगवान् विष्णुने दत्तात्रेय नामक अवतार धारण किया। दत्तात्रेयजीमें क्षमाकी पराकाष्ठा थी। उस समय वेद, वेदोंकी प्रक्रिया और यज्ञ—सभी नष्टप्राय हो गये थे। चारों वर्णोंमें संकरता आ गयी थी। धर्म शिथिल हो चला था। अधर्म बड़े जोरोंके साथ बढ़ रहा था। सत्य मिटता जाता था और सब ओर असत्यका बोलबाला था। प्रजा क्षीण हो रही थी और धर्म पाखण्डमिश्रित हो गया था। ऐसे समयमें भगवान् दत्तात्रेयने यज्ञों तथा क्रियाओंसहित वेदोंका पुनरुद्धार किया और चारों वर्णोंको पृथक्-पृथक् करके उन्हें व्यवस्थितरूप दिया। दत्तात्रेयजी परम बुद्धिमान् और वरदायक थे; उन्होंने हैहयराज कार्तवीर्यको यह वर दिया था कि 'राजन्! तुम्हारी ये दो भुजाएँ मेरी कृपासे एक हजार हो जायँगी। वसुधापते! तुम सम्पूर्ण वसुधाका पालन करोगे। जिस समय तुम युद्धमें खड़े होगे, तुम्हारे शत्रु तुम्हें आँख उठाकर देख भी नहीं सकेंगे—तुम उनके लिये अजेय हो जाओगे।'

यह श्रीविष्णुके दत्तात्रेयावतारकी चर्चा की गयी। इसके बाद भगवान्‌ने परशुरामावतार ग्रहण किया। राजा कार्तवीर्य अर्जुन अपनी सहस्र भुजाओंके कारण युद्धमें शत्रुओंके लिये दुर्जय था तो भी परशुरामजीने उसे सेनाके बीचमें मार

डाला। राजा अर्जुन रथपर बैठा था, किंतु परशुरामजीने उसे धरतीपर गिरा दिया और छातीपर चढ़कर तीखे फरसेके द्वारा उसकी हजारों भुजाएँ काट डालीं। उस समय कार्तवीर्य बड़े जोर-जोरसे चीखता, चिल्लाता रहा। उन्होंने मेरुगिरिसे विभूषित समस्त पृथ्वीपर करोड़ों क्षत्रियोंकी लाशें बिछा दीं, इक्कीस बार भूतलको क्षत्रियोंसे शून्य कर

दिया और अपने समस्त पापोंका नाश करनेके लिये उन्होंने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें भृगुनन्दन परशुरामने कश्यपजीको सारी पृथ्वी दक्षिणारूपमें दे दी। साथ ही बहुत-से हाथी, घोड़े, सुन्दर रथ और गौएँ भी दान कीं। आज भी वे विश्वका कल्याण करनेके लिये घोर तपस्या करते हुए महेन्द्र पर्वतपर निवास करते हैं।

यह सनातन परमात्मा श्रीहरिके परशुरामावतारका परिचय दिया गया। चौबीसवें त्रेतायुगमें भगवान्‌ने दशरथनन्दन कमलनयन श्रीरामके रूपमें अवतार लिया। भगवान् विष्णु उस समय चार रूपोंमें प्रकट हुए थे। उनका तेज सूर्यके समान था। वे लोकमें श्रीरामके नामसे विख्यात हुए और विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये उनके पीछे-पीछे गये। महायशस्वी श्रीराम सब लोगोंको प्रसन्न रखने, राक्षसोंको मारने और धर्मकी वृद्धि करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। कहते हैं, राजा श्रीराम सदा सब भूतोंका हित करनेके लिये तत्पर रहते थे। वे सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता थे। उन्होंने लक्ष्मणको साथ ले चौदह वर्षोंतक वनमें निवास किया था। उनके साथ उनकी पत्नी सीता भी गयी थीं, जो मूर्तिमती लक्ष्मी थीं। जनस्थानमें निवास करते हुए श्रीरामने देवताओंके अनेक कार्य सिद्ध किये। उन्होंने रावणके द्वारा अपहृत सीताका पता लगाकर उन्हें प्राप्त किया और रावणका वध किया। पुलस्त्यवंशी राक्षसराज रावण देवता, असुर, यक्ष, राक्षस और नागोंके लिये भी अवध्य था। युद्धमें उसको जीतना बहुत ही कठिन था। उसका शरीर कज्जलराशिके समान काला था। उसे कोटि-कोटि राक्षस सदा घेरे रहते थे। वह तीनों लोकोंको मार भगानेवाला, क्रूर, दुर्जय, दुर्धर, गर्वयुक्त, सिंहके समान पराक्रमी और वरदानसे उन्मत्त था। देवताओंके लिये तो उसकी ओर देखना भी कठिन था। ऐसे रावणको भगवान् श्रीरामने सेना और सचिवोंसहित संग्राममें मार डाला। इसके पहले उन्होंने और भी कई अलौकिक कर्म किये थे। अपने मित्र सुग्रीवके लिये उन्होंने महाबली वानरराज वालीको मारा और सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यपर अभिषिक्त किया। मधुका पुत्र लवण नामका दानव मधुवनमें रहता था। वह वीर तो था ही, वर पाकर मतवाला हो उठा था। उसे भगवान्‌ने शत्रुघ्नके रूपमें जाकर मारा। मारीच और सुबाहु नामक दो बलवान् राक्षस थे, जो शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंके यज्ञोंमें विघ्न डाला करते थे। उनको और उनके साथी अन्य राक्षसोंको भी युद्धकुशल महात्मा श्रीरामने मार गिराया। विराध और कबन्ध दो बड़े भयंकर राक्षस थे। वे पूर्वजन्ममें गन्धर्व थे, किन्तु शापसे मोहित होकर राक्षसभावको प्राप्त हुए थे। उन्हें भी नरश्रेष्ठ श्रीरामने मारकर शापमुक्त कर दिया। श्रीरामके बाण अग्नि, सूर्यकिरण और विद्युत्‌के समान तेजस्वी, तपाये हुए स्वर्णसे युक्त विचित्र पंखोंसे सुशोभित तथा महेन्द्र-वज्रके सदृश सारयुक्त थे। उन्हींके द्वारा उन्होंने युद्धमें शत्रुओंका नाश किया। परम बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रने देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष दैत्योंका वध करनेके लिये श्रीरघुनाथजीको अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये थे। पूर्वकालमें, जब कि महात्मा राजा जनकके यहाँ यज्ञ हो रहा था, श्रीरामने खेलमें ही महेश्वरके धनुषको तोड़ डाला था। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरघुनाथजीने ये सब अलौकिक कर्म करके दस अश्वमेध-यज्ञ भी किये थे, जो बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हुए थे। श्रीरामचन्द्रजीके राज्य करते समय कभी अमङ्गलकी बात नहीं सुनी गयी। हवा तेज नहीं चलती थी। कोई किसीका धन नहीं चुराता था। न कभी विधवाओंके विलाप सुने जाते और न अनर्थकी ही प्राप्ति होती थी। उस समय सब कुछ शुभ-ही-शुभ होता था। प्राणियोंको जल, अग्नि अथवा आँधीसे कभी भय नहीं होता था। बूढ़ोंको बालकोंकी प्रेतक्रिया नहीं

करनी पड़ती थी। क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी परिचर्या करते थे। वैश्य क्षत्रियोंके प्रति श्रद्धा रखते थे और शूद्र अहंकार छोड़कर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे। श्रीरामके राज्यमें स्त्रियाँ अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें आसक्त नहीं होती थीं और पुरुष भी अपनी पत्नीको छोड़ किसी दूसरी स्त्रीपर कुदृष्टि नहीं डालते थे। उस समय सारा जगत् जितेन्द्रिय था। पृथ्वीपर डाकुओंका कहीं नाम भी नहीं था। एकमात्र श्रीराम ही सबके स्वामी और संरक्षक थे। उनके शासनकालमें मनुष्य हजारों वर्ष जीवित रहते और वे सहस्रों पुत्रोंके पिता होते थे। किसी भी प्राणीको रोग नहीं सताता था। रामराज्यमें इस भूतलपर देवता, ऋषि और मनुष्य एक साथ एकत्रित होते थे। पुराणवेत्ता पुरुष इस विषयमें एक गाथा कहा करते हैं—"श्रीरघुनाथजीका वर्ण श्याम और अवस्था युवा है, उनके नेत्र कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए हैं, मुखसे तेज बरसता रहता है, वे बहुत कम बोलते हैं। उनकी लंबी भुजाएँ घुटनोंतक पहुँचती हैं। उनका मुख बड़ा सुन्दर है। कंधे सिंहके सदृश हैं। महाबाहु श्रीरामने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके राज्यमें सदा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदका घोष सुनायी देता था। धनुषकी टंकार भी सर्वदा कानोंमें आती रहती थी। 'दान करो और स्वयं भी भोगो' का उपदेश कभी बंद नहीं होता था। दशरथनन्दन श्रीराम सत्त्ववान् और गुणवान् होनेके साथ ही सदा अपने तेजसे देदीप्यमान रहते थे। उनकी सूर्य और चन्द्रमासे भी अधिक शोभा होती थी।"*

यह श्रीरामावतारका वर्णन हुआ। इसके बाद श्रीहरिका अवतार मथुरामें हुआ था। वह श्रीकृष्णके नामसे विख्यात हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त संसारका हित करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे।

उन्होंने मानव-शरीर धारण करके शाल्व, शिशुपाल, कंस, द्विविद, अरिष्ट, वृषभ, केशी, दैत्यकन्या पूतना, कुवलयापीड़ हाथी तथा चाणूर और मुष्टिक नामके मल्लोंका वध किया। अद्भुत कर्म करनेवाले बाणासुरकी हजार भुजाएँ काट डालीं। युद्धमें नरकासुरका संहार किया और महाबली कालयवनको भी भस्म करा दिया। भगवान्‌ने अपने तेजसे दुष्ट दुराचारी राजाओंके समस्त रत्न हर लिये और उन्हें मौतके घाट उतार दिया। यह अवतार सम्पूर्ण लोकोंका हित-साधन करनेके लिये हुआ था।

इसके बाद विष्णुयशा नामसे प्रसिद्ध कल्कि-अवतार होनेवाला है। भगवान् कल्कि शम्भल

---

* ..... । श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः॥
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः। दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत्॥
ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः। अव्युच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति॥
सत्त्ववान् गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा। अति चन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ॥
(२१३। १५३—१५६)

नामक गाँवमें अवतीर्ण होंगे। उनके अवतारका उद्देश्य भी सब लोकोंका हित करना ही है। ये तथा और भी अनेक दिव्य अवतार हैं, जो पुराणोंमें ब्रह्मवादी पुरुषोंद्वारा वर्णित हैं। भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन करनेमें देवता भी मोहित हो जाते हैं। पुराण वेदोंकी श्रुतियोंद्वारा समर्थित हैं। इस प्रकार यह अवतार-कथा संक्षेपसे कही गयी। जो सम्पूर्ण लोकोंके गुरु और सदा कीर्तन करनेयोग्य हैं, उन भगवान् विष्णुके अवतारोंका वर्णन किया गया। इसके कीर्तनसे पितरोंको प्रसन्नता होती है। जो हाथ जोड़कर अमितपराक्रमी श्रीविष्णुके अवतारकी कथा सुनता है, उसके पितर भी अत्यन्त तृप्त होते हैं। योगेश्वर भगवान् श्रीहरिकी योगमायाका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और भगवान्‌की कृपासे शीघ्र ही उसे ऋद्धि, समृद्धि तथा प्रचुर भोगोंकी प्राप्ति होती है। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने अमिततेजस्वी श्रीहरिके सर्वपापहारी पवित्र अवतारोंका वर्णन किया।

यमलोकके मार्ग और चारों द्वारोंका वर्णन

मुनि बोले—ब्रह्मन्! आपके मुखसे निकले हुए पुण्यधर्ममय वचनामृतोंसे हमें तृप्ति नहीं होती, अपितु अधिकाधिक सुननेकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। मुने! आप परम बुद्धिमान् हैं और प्राणियोंकी उत्पत्ति, लय और कर्मगतिको जानते हैं; इसलिये हम आपसे और भी प्रश्न करते हैं। सुननेमें आता है कि यमलोकका मार्ग बड़ा दुर्गम है। वह सदा दुःख और क्लेश देनेवाला है तथा समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर है। उस मार्गकी लंबाई कितनी है तथा मनुष्य उस मार्गसे यमलोककी यात्रा किस प्रकार करते हैं? मुने! कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे नरकके दुःखोंकी प्राप्ति न हो?

व्यासजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिवरो! सुनो। यह संसारचक्र प्रवाहरूपसे निरन्तर चलता रहता है। अब मैं प्राणियोंकी मृत्युसे लेकर आगे जो अवस्था होती है, उसका वर्णन करूँगा। इसी प्रसङ्गमें यमलोकके मार्गका भी निर्णय किया जायगा। यमलोक और मनुष्यलोकमें छियासी हजार योजनोंका अन्तर है। उसका मार्ग तपाये हुए ताँबेकी भाँति पूर्ण तप्त रहता है। प्रत्येक जीवको यमलोकके मार्गसे जाना पड़ता है। पुण्यात्मा पुरुष पुण्यलोकोंमें और नीच पापाचारी मानव पापमय लोकोंमें जाते हैं। यमलोकमें बाईस नरक हैं, जिनके भीतर पापी मनुष्योंको पृथक्-पृथक् यातनाएँ दी जाती हैं। उन नरकोंके नाम ये हैं—नरक, रौरव,रौद्र, शूकर,ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमोहन, कीटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, पीब बहानेवाली नदी, रक्त बहानेवाली नदी, जल बहानेवाली नदी, अग्निज्वाल, महारौद्र, संदंश, शुनभोजन, घोर वैतरणी और असिपत्रवन। यमलोकके मार्गमें न तो कहीं वृक्षकी छाया है न तालाब और पोखरे हैं, न बावड़ी न पुष्करिणी है, न कूप हैं न पौंसले हैं, न धर्मशाला है न मण्डप है, न घर है न नदी एवं पर्वत हैं और न ठहरनेके योग्य कोई स्थान ही है, जहाँ अत्यन्त कष्टमें पड़ा हुआ थका-माँदा जीव विश्राम कर सके। उस महान् पथपर सब पापियोंको निश्चय ही जाना पड़ता है। जीवकी यहाँ जितनी आयु नियत है, उसका भोग पूरा हो जानेपर इच्छा न रहते हुए भी उसे प्राणोंका त्याग करना पड़ता है। जल, अग्नि, विष, क्षुधा, रोग अथवा पर्वतसे गिरने आदि किसी भी निमित्तको लेकर देहधारी जीवकी मृत्यु होती है। पाँच भूतोंसे बने हुए इस विशाल शरीरको छोड़कर जीव अपने कर्मानुसार यातना भोगनेके योग्य दूसरा शरीर धारण करता है। उसे सुख और दुःख भोगनेके लिये सुदृढ़

शरीरकी प्राप्ति होती है। पापाचारी मनुष्य उसी देहसे अत्यन्त कष्ट भोगता है और धर्मात्मा मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक सुखका भागी होता है।

शरीरमें जो गर्मी या पित्त है, वह तीव्र वायुसे प्रेरित होकर जब अत्यन्त कुपित हो जाता है, उस समय बिना ईंधनके ही उद्दीप्त हुई अग्निकी भाँति बढ़कर मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर देता है। तत्पश्चात् उदान नामक वायु ऊपरकी ओर उठता है और खाये-पीये हुए अन्न-जलको नीचेकी ओर जानेसे रोक देता है। उस आपत्तिकी अवस्थामें भी उसीको प्रसन्नता रहती है, जिसने पहले जल, अन्न एवं रसका दान किया है। जिस पुरुषने श्रद्धासे पवित्र किये हुए अन्तःकरणके द्वारा पहले अन्न-दान किया है, वह उस रुग्णावस्थामें अन्नके बिना भी तृप्तिलाभ करता है। जिसने कभी मिथ्याभाषण नहीं किया, दो प्रेमियोंके पारस्परिक प्रेममें बाधा नहीं डाली तथा जो आस्तिक और श्रद्धालु है, वह सुखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है। जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहते, किसीकी निन्दा नहीं करते तथा सात्त्विक, उदार और लज्जाशील होते हैं, ऐसे मनुष्योंको मृत्युके समय कष्ट नहीं होता। जो कामनासे, क्रोधसे अथवा द्वेषके कारण धर्मका त्याग नहीं करता, शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाला तथा सौम्य होता है, उसकी मृत्यु भी सुखसे होती है। जिन्होंने कभी जलका दान नहीं किया है, उन मनुष्योंको मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अधिक जलन होती है तथा अन्नदान न करनेवालोंको उस समय भूखका भारी कष्ट भोगना पड़ता है। जो लोग जाड़ेके दिनोंमें लकड़ी दान करते हैं, वे शीतके कष्टको जीत लेते हैं। जो चन्दन दान करते हैं, वे तापपर विजय पाते हैं तथा जो किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाते, वे मृत्युकालमें प्राणघातिनी क्लेशमय वेदनाका अनुभव नहीं करते। ज्ञानदाता पुरुष मोहपर और दीपदान करनेवाले अन्धकारपर विजय पाते हैं। जो झूठी गवाही देते, झूठ बोलते, अधर्मका उपदेश देते और वेदोंकी निन्दा करते हैं, वे सब लोग मूर्च्छाग्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त होते हैं।

ऐसे लोगोंकी मृत्युके समय यमराजके दुष्ट दूत हाथोंमें हथौड़ी एवं मुद्गर लिये आते हैं; वे बड़े भयंकर होते हैं और उनकी देहसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन यमदूतोंपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्य काँप उठता है और भ्राता, माता तथा पुत्रोंका नाम लेकर बारंबार चिल्लाने लगता है। उस समय उसकी वाणी स्पष्ट समझमें नहीं आती। एक ही शब्द, एक ही आवाज-सी जान पड़ती है। भयके मारे रोगीकी आँखे झूमने लगती हैं और उसका मुख सूख जाता है। उसकी साँस ऊपरको उठने लगती है। दृष्टिकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है। फिर वह अत्यन्त वेदनासे पीड़ित होकर उस शरीरको छोड़ देता है और वायुके सहारे चलता हुआ वैसे ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है जो रूप, रंग और अवस्थामें पहले शरीरके समान ही होता है। वह शरीर माता-पिताके गर्भसे उत्पन्न नहीं, कर्मजनित होता है और यातना भोगनेके लिये ही मिलता है; उसीसे यातना भोगनी पड़ती है। तदनन्तर यमराजके दूत शीघ्र ही उसे दारुण पाशोंसे बाँध लेते हैं। मृत्युकाल आनेपर जीवको बड़ी वेदना होती है, जिससे वह अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। उस समय सब भूतोंसे उसके शरीरका सम्बन्ध टूट जाता है। प्राणवायु कण्ठतक आ जाती है और जीव शरीरसे निकलते समय जोर-जोरसे रोता है। माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, मित्र और गुरु—सबसे नाता छूट जाता है। सभी सगे-सम्बन्धी नेत्रोंमें आँसू भरे दुःखी होकर उसे देखते रह जाते हैं और वह अपने शरीरको त्यागकर यमलोकके मार्गपर वायुरूप होकर चला जाता है।

वह मार्ग अन्धकारपूर्ण, अपार, अत्यन्त भयंकर तथा पापियोंके लिये अत्यन्त दुर्गम होता है।

यमदूत पाशोंमें बाँधकर उसे खींचते और मुद्गरोंसे पीटते हुए उस विशाल पथपर ले जाते हैं। यमदूतोंके अनेक रूप होते हैं। वे देखनेमें बड़े डरावने और समस्त प्राणियोंको भय पहुँचानेवाले होते हैं। उनके मुख विकराल, नासिका टेढ़ी, आँखे तीन,

ठोड़ी, कपोल और मुख फैले हुए तथा ओठ लंबे होते हैं। वे अपने हाथोंमें विकराल एवं भयंकर आयुध लिये रहते हैं। उन आयुधोंसे आगकी लपटें निकलती रहती हैं। पाश, साँकल और डंडेसे भय पहुँचानेवाले, महाबली, महाभयंकर यमकिंकर यमराजकी आज्ञासे प्राणियोंकी आयु समाप्त होनेपर उन्हें लेनेके लिये आते हैं। जीव यातना भोगनेके लिये अपने कर्मके अनुसार जो भी शरीर ग्रहण करता है, उसे ही यमराजके दूत यमलोकमें ले जाते हैं। वे उसे कालपाशमें बाँधकर पैरोंमें बेड़ी डाल देते हैं। बेड़ीकी साँकल वज्रके समान कठोर होती है। यमकिंकर क्रोधमें भरकर उस बँधे हुए जीवको भलीभाँति पीटते हुए ले जाते हैं। वह लड़खड़ाकर गिरता है, रोता है और 'हाय बाप! हाय मैया! हाय पुत्र!' कहकर बारंबार चीखता-चिल्लाता है; तो भी दूषित कर्मवाले उस पापीको वे तीखे शूलों, मुद्गरों, खड्ग और शक्तिके प्रहारों और वज्रमय भयंकर डंडोंसे घायल करके जोर-जोरसे डाँटते हैं। कभी-कभी तो एक-एक पापीको अनेक यमदूत चारों ओरसे घेरकर पीटते हैं। बेचारा जीव दुःखसे पीड़ित हो मूर्च्छित होकर इधर-उधर गिर पड़ता है; तथापि वे दूत उसे घसीटकर ले जाते हैं। कहीं भयभीत होते, कहीं त्रास पाते, कहीं लड़खड़ाते और कहीं दुःखसे करुण क्रन्दन करते हुए जीवोंको उस मार्गसे जाना पड़ता है। यमदूतोंकी फटकार पड़नेसे वे उद्विग्न हो उठते हैं और भयसे विह्वल हो काँपते हुए शरीरसे दौड़ने लगते हैं। मार्गपर कहीं काँटे बिछे होते हैं और कुछ दूरतक तपी हुई बालू मिलती है।

जिन मनुष्योंने दान नहीं किया है, वे उस मार्गपर जलते हुए पैरोंसे चलते हैं। जीवहिंसक मनुष्यके सब ओर मरे हुए बकरोंकी लाशें पड़ी होती हैं, जिनकी जली और फटी हुई चमड़ीसे मेदे और रक्तकी दुर्गन्ध आती रहती है। वे वेदनासे पीड़ित हो जोर-जोरसे चीखते-चिल्लाते हुए यममार्गकी यात्रा करते हैं। शक्ति, भिन्दिपाल, खड्ग, तोमर, बाण और तीखी नोकवाले शूलोंसे उनका अङ्ग-अङ्ग विदीर्ण कर दिया जाता है। कुत्ते, बाघ, भेड़िये और कौए उनके शरीरका मांस नोच-नोचकर खाते रहते हैं। मांस खानेवाले लोग उस मार्गपर चलते समय आरेसे चीरे जाते हैं, सूअर अपनी दाढ़ोंसे उनके शरीरको विदीर्ण कर देते हैं।

जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले स्वामी, मित्र अथवा स्त्रीकी हत्या कराते हैं, वे शस्त्रोंद्वारा छिन्न-भिन्न और व्याकुल होकर यमलोकके मार्गपर जाते हैं। जो निरपराध जीवोंको मारते और मरवाते हैं, वे राक्षसोंके ग्रास बनकर उस पथसे यात्रा करते हैं। जो परायी स्त्रियोंके वस्त्र उतारते हैं, वे मरनेपर नंगे करके दौड़ते हुए यमलोकमें

लाये जाते हैं। जो दुरात्मा पापाचारी अन्न, वस्त्र, सोने, घर और खेतका अपहरण करते हैं, उन्हें यमलोकके मार्गपर पत्थरों, लाठियों और डंडोंसे मारकर जर्जर कर दिया जाता है और वे अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गसे प्रचुर रक्त बहाते हुए यमलोकमें जाते हैं। जो नराधम नरककी परवा न करके इस लोकमें ब्राह्मणका धन हड़प लेते, उन्हें मारते और गालियाँ सुनाते हैं, उन्हें सूखे काठमें बाँधकर उनकी आँखें फोड़ दी जाती और नाक-कान काट लिये जाते हैं। फिर उनके शरीरमें पीब और रक्त पोत दिये जाते हैं तथा कालके समान गीध और गीदड़ उन्हें नोच-नोचकर खाने लगते हैं। इस दशामें भी क्रोधमें भरे हुए भयानक यमदूत उन्हें पीटते हैं और वे चिल्लाते हुए यमलोकके पथपर अग्रसर होते हैं।

इस प्रकार वह मार्ग बड़ा ही दुर्गम और अग्निके समान प्रज्वलित है। उसे रौरव (जीवोंको रुलानेवाला) कहा गया है। वह नीची-ऊँची भूमिसे युक्त होनेके कारण मानवमात्रके लिये अगम्य है। तपाये हुए ताँबेकी भाँति उसका वर्ण है। वहाँ आगकी चिनगारियाँ और लपटें दिखायी देती हैं। वह मार्ग कण्टकोंसे भरा है। शक्ति और वज्र आदि आयुधोंसे व्याप्त है। ऐसे कष्टप्रद मार्गपर निर्दयी यमदूत जीवको घसीटते हुए ले जाते हैं और उन्हें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे मारते रहते हैं। इस तरह पापासक्त अन्यायी मनुष्य विवश होकर मार खाते हुए दुर्धर्ष यमदूतोंके द्वारा यमलोकमें ले जाये जाते हैं। यमराजके सेवक सभी पापियोंको उस दुर्गम मार्गमें अवहेलनापूर्वक ले जाते हैं। वह अत्यन्त भयंकर मार्ग जब समाप्त हो जाता है, तब यमदूत पापी जीवको ताँबे और लोहेकी बनी हुई भयंकर यमपुरीमें प्रवेश कराते हैं।

वह पुरी बहुत विशाल है, उसका विस्तार लाख योजनका है। वह चौकोर बतायी जाती है। उसके चार सुन्दर दरवाजे हैं। उसकी चहारदीवारी सोनेकी बनी है, जो दस हजार योजन ऊँची है। यमपुरीका पूर्वद्वार बहुत ही सुन्दर है। वहाँ फहराती हुई सैकड़ों पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। हीरे, नीलम, पुखराज और मोतियोंसे वह द्वार सजाया जाता है। वहाँ गन्धर्वों और अप्सराओंके गीत और नृत्य होते रहते हैं। उस द्वारसे देवताओं, ऋषियों, योगियों, गन्धर्वों, सिद्धों, यक्षों और विद्याधरोंका प्रवेश होता है। उस नगरका उत्तरद्वार घण्टा, छत्र, चँवर तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत है। वहाँ वीणा और वेणुकी मनोहर ध्वनि गूँजती रहती है। गीत, मङ्गल-गान तथा ऋग्वेद आदिके सुमधुर शब्द होते रहते हैं। वहाँ महर्षियोंका समुदाय शोभा पाता है। उस द्वारसे उन्हीं पुण्यात्माओंका प्रवेश होता है, जो धर्मज्ञ और सत्यवादी हैं। जिन्होंने गर्मीमें दूसरोंको जल पिलाया और सर्दीमें अग्निका सेवन कराया है, जो थके-माँदे मनुष्योंकी सेवा करते और सदा प्रिय वचन बोलते हैं, जो दाता, शूर और माता-पिताके भक्त हैं तथा जिन्होंने ब्राह्मणोंकी सेवा और अतिथियोंका पूजन किया है, वे भी उत्तरद्वारसे ही पुरीमें प्रवेश करते हैं।

यमपुरीका पश्चिम महाद्वार भाँति-भाँतिके रत्नोंसे विभूषित है। विचित्र-विचित्र मणियोंकी वहाँ सीढ़ियाँ बनी हैं। देवता उस द्वारकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। वहाँ भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनि हुआ करती है। सिद्धोंके समुदाय सदा हर्षमें भरकर उस द्वारपर मङ्गल-गान करते हैं। जो मनुष्य भगवान् शिवकी भक्तिमें संलग्न रहते हैं, जो सब तीर्थोंमें गोते लगा चुके हैं, जिन्होंने पञ्चाग्निका सेवन किया है, जो किसी उत्तम तीर्थस्थानमें अथवा कालिञ्जर पर्वतपर प्राण-त्याग करते हैं और जो स्वामी, मित्र अथवा जगत्का कल्याण करनेके लिये एवं गौओंकी रक्षाके लिये मारे गये हैं, वे शूरवीर और तपस्वी

पुरुष पश्चिमद्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं। उस पुरीका दक्षिणद्वार अत्यन्त भयानक है। वह सम्पूर्ण जीवोंके मनमें भय उपजानेवाला है। वहाँ निरन्तर हाहाकार मचा रहता है। सदा अँधेरा छाया रहता है। उस द्वारपर तीखे सींग, काँटे, बिच्छू, साँप, वज्रमुख कीट, भेड़िये, व्याघ्र, रीछ, सिंह, गीदड़, कुत्ते, बिलाव और गीध उपस्थित रहते हैं। उनके मुखोंसे आगकी लपटें निकला करती हैं। जो सदा सबका अपकार करनेवाले पापात्मा हैं, उन्हींका उस मार्गसे पुरीमें प्रवेश होता है। जो ब्राह्मण, गौ, बालक, वृद्ध, रोगी, शरणागत, विश्वासी, स्त्री, मित्र और निहत्थे मनुष्यकी हत्या कराते हैं, अगम्या स्त्रीके साथ सम्भोग करते हैं, दूसरोंके धनका अपहरण करते हैं, धरोहर हड़प लेते हैं, दूसरोंको जहर देते और उनके घरोंमें आग लगाते हैं, परायी भूमि, गृह, शय्या, वस्त्र और आभूषणकी चोरी करते हैं, दूसरोंके छिद्र देखकर उनके प्रति क्रूरताका बर्ताव करते हैं, सदा झूठ बोलते हैं, ग्राम, नगर तथा राष्ट्रको महान् दुःख देते हैं, झूठी गवाही देते, कन्या बेचते, अभक्ष्य भक्षण करते, पुत्री और पुत्रवधूके साथ समागम करते, माता-पिताको कटुवचन सुनाते तथा अन्यान्य प्रकारके महापातकोंमें संलग्न रहते हैं, वे सब दक्षिण द्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं।*

यमलोकके दक्षिणद्वार तथा नरकोंका वर्णन

मुनियोंने पूछा—तपोधन! पापी मनुष्य दक्षिण-मार्गसे यमपुरीमें किस प्रकार प्रवेश करते हैं? यह हम सुनना चाहते हैं। आप विस्तारपूर्वक बतलाइये।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! दक्षिणद्वार अत्यन्त घोर और महाभयंकर है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। वहाँ सदा नाना प्रकारके हिंस्र जन्तुओं और गीदड़ियोंके शब्द होते रहते हैं। वहाँ दूसरोंका पहुँचना असम्भव है। उसे देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच और राक्षसोंसे यह द्वार सदा ही घिरा रहता है। पापी जीव दूरसे ही उस द्वारको देखकर त्राससे मूर्च्छित हो जाते हैं और विलाप-प्रलाप करने लगते हैं। तब यमदूत उन्हें साँकलोंसे बाँधकर घसीटते और निर्भय होकर डंडोंसे पीटते हैं। साथ ही डाँटते-फटकारते भी रहते हैं। होशमें आनेपर वे खूनसे लथपथ हो पग-पगपर लड़खड़ाते हुए दक्षिणद्वारको जाते हैं। मार्गमें कहीं तीखे काँटे होते हैं और कहीं छूरेकी धारके समान तीक्ष्ण पत्थरोंके टुकड़े बिछे होते हैं। कहीं कीचड़-ही-कीचड़ भरी रहती है और कहीं ऐसे-ऐसे गड्ढे होते हैं, जिनको पार करना असम्भव-सा होता है। कहीं-कहीं लोहेकी सुईके समान कीलें गड़ी होती हैं। कहीं वृक्षोंसे भरे हुए पर्वत होते हैं, जो किनारोंपर झरने गिरते रहनेसे दुर्गम प्रतीत होते हैं और कहीं-कहीं तपे हुए अँगारे बिछे होते हैं। ऐसे मार्गसे दुःखी होकर पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। कहीं दुर्गम

---

* ये घातयन्ति विप्रान् गा बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम्॥
येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवह्निप्रदाश्च ये॥
परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्रालङ्कारहारिणः। परारन्ध्रेषु ये क्रूरा ये सदानृतवादिनः॥
ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने महादुःखप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदातारः कन्याविक्रयकारकाः॥
अभक्ष्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पितरं चैव ये वदन्ति च पौरुषम्॥
अन्ये ये चैव निर्दिष्टा महापातककारिणः। दक्षिणेन तु ते सर्वे द्वारेण प्रविशन्ति वै॥
(२१८। १२३—१२८)

गर्त्त, कहीं चिकने ढेले, कहीं तपायी हुई बालू और कहीं तीखे काँटे होते हैं। कहीं दावानल प्रज्वलित रहता है। कहीं तपी हुई शिला है तो कहीं जमी हुई बर्फ। कहीं इतनी अधिक बालू है कि उस मार्गसे जानेवाला जीव उसमें आकण्ठ डूब जाता है। कहीं दूषित जलसे और कहीं कंडेकी आगसे वह मार्ग भरा रहता है। कहीं सिंह, भेड़िये, बाघ, डाँस और भयानक कीड़े डेरा डाले रहते हैं। कहीं बड़ी-बड़ी जोंकें और अजगर पड़े रहते हैं। भयंकर मक्खियाँ, विषैले साँप और दुष्ट एवं बलोन्मत्त हाथी सताया करते हैं। खुरोंसे मार्गको खोदते हुए तीखे सींगोंवाले बड़े-बड़े साँड़, भैंसे और मतवाले ऊँट सबको कष्ट देते हैं। भयानक डाइनों और भीषण रोगोंसे पीड़ित होकर जीव उस मार्गसे यात्रा करते हैं।

कहीं धूलिमिश्रित प्रचण्ड वायु चलती है, जो पत्थरोंकी वर्षा करके निराश्रय जीवोंको कष्ट पहुँचाती रहती है; कहीं बिजली गिरनेसे शरीर विदीर्ण हो जाता है; कहीं बड़े जोरसे बाणोंकी वर्षा होती है, जिससे सब अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कहीं-कहीं बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर उल्कापात होते रहते हैं और प्रज्वलित अँगारोंकी वर्षा हुआ करती है, जिससे जलते हुए पापी जीव आगे बढ़ते हैं। कभी जोर-जोरसे धूलकी वर्षा होनेके कारण शरीर भर जाता है और जीव रोने लगते हैं। मेघोंकी भयंकर गर्जनासे बारंबार त्रास पहुँचता रहता है। बाण-वर्षासे घायल हुए शरीरपर खारे जलकी धारा गिरायी जाती है और उसकी पीड़ा सहन करते हुए जीव आगे बढ़ते हैं। कहीं-कहीं अत्यन्त शीतल हवा चलनेके कारण अधिक सर्दी पड़ती हैं तथा कहीं रूखी और कठोर वायुका सामना करना पड़ता है; इससे पापी जीवोंके अङ्ग-अङ्गमें बिवाई फट जाती है। वे सूखने और सिकुड़ने लगते हैं। ऐसे मार्गसे, जहाँ न तो राह-खर्चके लिये कुछ मिल पाता है और न कोई सहारा ही दिखायी देता है, पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। सब ओर निर्जल और दुर्गम प्रदेश दृष्टिगोचर होता है। बड़े परिश्रमसे पापी जीव यमलोकतक पहुँच पाते हैं। यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले भयंकर यमदूत उन्हें बलपूर्वक ले जाते हैं। वे एकाकी और पराधीन होते हैं। साथमें न कोई मित्र होता है न बन्धु। वे अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए बारंबार रोते रहते हैं। प्रेतोंका-सा उनका शरीर होता है। उनके कण्ठ, ओठ और तालू सूखे रहते हैं। वे शरीरसे अत्यन्त दुर्बल और भयभीत हो क्षुधाग्निकी ज्वालासे जलते रहते हैं। कोई साँकलमें बँधे होते हैं। किन्हींको उतान सुलाकर यमदूत उनके दोनों पैर पकड़कर घसीटते हैं और कोई नीचे मुँह करके घसीटे जाते हैं। उस समय उन्हें अत्यन्त दुःख होता है। उन्हें खानेको अन्न और पीनेको पानी नहीं मिलता। वे भूख-प्याससे पीड़ित हो हाथ जोड़ दीनभावसे आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बारंबार याचना करते और 'दीजिये, दीजिये' की रट लगाये रहते हैं। उनके सामने सुगन्धित पदार्थ, दही, खीर, घी, भात, सुगन्धयुक्त पेय और शीतल जल प्रस्तुत होते हैं। उन्हें देखकर वे बारंबार उनके लिये याचना करते हैं।

उस समय यमराजके दूत क्रोधमें लाल आँखें करके उन्हें फटकारते हुए कठोर वाणीमें कहते हैं—'ओ पापियो! तुमने समयपर अग्निहोत्र नहीं किया, स्वयं ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया और दूसरोंको भी उन्हें दान देते समय बलपूर्वक मना किया; उसी पापका फल तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ है। तुम्हारा धन आगमें नहीं जला था, जलमें नहीं नष्ट हुआ था, राजाने नहीं छीना था और चोरोंने भी नहीं चुराया था। नराधमो! तो भी तुमने जब पहले ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया है, तब इस समय तुम्हे कहाँसे कोई वस्तु प्राप्त हो सकती है। जिन साधु पुरुषोंने सात्त्विकभावसे

नाना प्रकारके दान किये हैं, उन्हींके लिये ये पर्वतोंके समान अन्नके ढेर लगे दिखायी देते हैं। इनमें भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चोष्य—सब प्रकारके खाद्य पदार्थ हैं। तुम इन्हें पानेकी इच्छा न करो, क्योंकि तुमने किसी प्रकारका दान नहीं दिया है। जिन्होंने दान, होम, यज्ञ और ब्राह्मणोंका पूजन किया है, उन्हींका अन्न ले आकर सदा यहाँ जमा किया जाता है। नारकी जीवो! यह दूसरोंकी वस्तु हम तुम्हें कैसे दे सकते हैं।'

यमदूतोंकी यह बात सुनकर वे भूख-प्याससे पीड़ित जीव उस अन्नकी अभिलाषा छोड़ देते हैं। तदनन्तर यमदूत उन्हें भयानक अस्त्रोंसे पीड़ा देते हैं। मुद्गर, लोहदण्ड, शक्ति, तोमर, पट्टिश, परिघ, भिन्दिपाल, गदा, फरसा और बाणोंसे उनकी पीठपर प्रहार किया जाता है और सामनेकी ओरसे सिंह तथा बाघ आदि उन्हें काट खाते हैं। इस प्रकारके पापी जीव न तो भीतर प्रवेश कर पाते हैं और न बाहर ही निकल पाते हैं। अत्यन्त दुःखित होकर करुणक्रन्दन किया करते हैं। इस प्रकार वहाँ भलीभाँति पीड़ा देकर यमराजके दूत

उन्हें भीतर प्रवेश कराते और उस स्थानपर ले जाते हैं, जहाँ सबका संयमन (नियन्त्रण) करनेवाले धर्मात्मा यमराज रहते हैं। वहाँ पहुँचकर वे दूत यमराजको उन पापियोंके आनेकी सूचना देते हैं और उनकी आज्ञा मिलनेपर उन्हें उनके सामने उपस्थित करते हैं। तब पापाचारी जीव भयानक यमराज और चित्रगुप्तको देखते हैं। यमराज उन पापियोंको बड़े जोरसे फटकारते हैं और चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंसे पापियोंको समझाते हुए कहते हैं—'पापाचारी जीवो! तुमने दूसरोंके धनका अपहरण किया है और अपने रूप और वीर्यके घमंडमें आकर परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया है। जीव स्वयं जो कर्म करता है, उसका फल भी उन्हें स्वयं ही भोगना पड़ता है—यह जानते हुए भी तुमने अपना विनाश करनेके लिये यह पापकर्म क्यों किया? अब क्यों शोक करते हो। अपने कुकर्मोंसे ही तुम पीड़ित हो रहे हो। तुमने अपने कर्मोंद्वारा जिन दुःखोंका उपार्जन किया है, उन्हें भोगो। इसमें किसीका कुछ दोष नहीं है। ये जो राजालोग मेरे समीप आए हुए हैं, इन्हें भी अपने बलका बड़ा घमंड था। ये अपने घोर दुष्कर्मोंद्वारा यहाँ लाये गये हैं। इनकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी।' तत्पश्चात् यमराज राजाओंकी ओर दृष्टिपात करके कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी नरेशो! तुमलोग प्रजाका विध्वंस करनेवाले हो। थोड़े दिनोंतक रहनेवाले राज्यके लिये तुमने क्यों भयंकर पाप किया? राजाओ! तुमने राज्यके लोभ, मोह, बल तथा अन्यायसे जो प्रजाओंको कठोर दण्ड दिया है, उसका यथोचित फल इस समय भोगो। कहाँ गया वह राज्य। कहाँ गयीं वे रानियाँ, जिनके लिये तुमने पापकर्म किये हैं। उन सबको छोड़कर यहाँ तुमलोग एकाकी—असहाय होकर खड़े हो। यहाँ वह सारी सेना नहीं दिखायी देती, जिसके द्वारा तुमने प्रजाका दमन किया है। इस समय

यमदूत तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग फाड़े डालते हैं। देखो तो, उस पापका अब कैसा फल मिल रहा है।'

इस प्रकार यमराजके उपालम्भयुक्त अनेक वचन सुनकर वे राजा अपने-अपने कर्मोंका विचार करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब उनके पापोंकी शुद्धिके लिये धर्मराज अपने सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा देते हैं—'ओ चण्ड! ओ महाचण्ड! इन राजाओंको पकड़कर ले जाओ और क्रमशः नरककी अग्निमें तपाकर इन्हें पापोंसे मुक्त करो।' धर्मराजकी आज्ञा पाते ही यमदूत राजाओंके दोनों पैर पकड़कर वेगसे घुमाते हुए उन्हें ऊपर फेंक देते हैं और फिर लौटकर उनके पापोंकी मात्राके अनुसार उन्हें बड़ी-बड़ी शिलाओंपर देरतक पटकते रहते हैं, मानो वज्रसे किसी महान् वृक्षपर प्रहार करते हों। इससे पापी जीवका शरीर जर्जर हो जाता है। उसके प्रत्येक छिद्रसे रक्तकी धारा बहने लगती है। उसकी चेतना लुप्त हो जाती है और वह हिलने-डुलनेमें भी असमर्थ हो जाता है। तदनन्तर शीतल वायुका स्पर्श होनेपर धीरे-धीरे पुनः वह सचेत हो उठता है। तब यमराजके दूत उसे पापोंकी शुद्धिके लिये नरकमें डाल देते हैं। एकसे निवृत्त होनेपर वे दूसरे-दूसरे पापियोंके विषयमें यमराजसे निवेदन करते हैं—'देव! आपकी आज्ञासे हम दूसरे पापीको भी ले आये हैं। यह सदा धर्मसे विमुख और पापपरायण रहा है। यह दुराचारी व्याध है। इसने महापातक और उपपातक—सभी किये हैं। यह अपवित्र मनुष्य सदा दूसरे जीवोंकी हिंसामें संलग्न रहा है। यह जो दुष्टात्मा खड़ा है, अगम्या स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला है, इसने दूसरेके धनका भी अपहरण किया है। यह कन्या बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, कृतघ्न तथा मित्रोंको धोखा देनेवाला है। इस दुरात्माने मदोन्मत्त होकर सदा धर्मकी निन्दा की है, मर्त्यलोकमें केवल पापका ही आचरण किया है। देवेश्वर! इस समय इसको दण्ड देना है या इसपर अनुग्रह करना है, यह बताइये। क्योंकि आप ही निग्रहानुग्रह करनेमें समर्थ हैं। हमलोग तो केवल आज्ञापालक हैं।'

यों निवेदन करके वे दूत पापीको यमराजके सामने उपस्थित कर देते हैं और स्वयं दूसरे पापियोंको लानेके लिये चल देते हैं। जब पापीपर लगाये गये दोषकी सिद्धि हो जाती है, तब यमराज अपने भयंकर सेवकोंको उन्हें दण्ड देनेके लिये आदेश देते हैं। वसिष्ठ आदि महर्षियोंने जिसके लिये जो दण्ड नियत किया है, उसीके अनुसार वे यमकिंकर पापीको दण्ड प्रदान करते हैं। अङ्कुश, मुद्गर, डंडे, आरे, शक्ति, तोमर, खड्ग और

शूलोंके प्रहारसे पापियोंको विदीर्ण कर डालते हैं। अब नरकोंके भयंकर स्वरूपका वर्णन सुनो।

महावीचि नामक नरक रक्तसे भरा रहता है। उसमें वज्रके समान काँटे होते हैं। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें डूबा हुआ पापी जीव काँटोंमें विंधकर अत्यन्त कष्ट भोगता है। गौओंका वध करनेवाला मनुष्य उस भयंकर नरकमें एक

लाख वर्षोंतक निवास करता है। कुम्भीपाकका विस्तार सौ लाख योजन है। वह अत्यन्त भयंकर नरक है। वहाँकी भूमि तपाये हुए ताँबेके घड़ोंसे भरी रहनेके कारण अत्यन्त प्रज्वलित दिखायी देती है। वहाँ गरम-गरम बालू और अँगारे बिछे होते हैं। ब्राह्मणकी हत्या तथा पृथ्वीका अपहरण करनेवाले और धरोहरको हड़प लेनेवाले पापी उस नरकमें डालकर प्रलयकालतक जलाये जाते हैं। तदनन्तर रौरव नामक नरक है, जो प्रज्वलित वज्रमय बाणोंसे व्याप्त रहता है। उसका विस्तार साठ हजार योजनका है। उस नरकमें गिराये हुए मनुष्य जलते हुए बाणोंसे बिंधकर यातना भोगते हैं। झूठी गवाही देनेवाले मनुष्य उसमें ईखकी भाँति पेरे जाते हैं। उसके बाद मञ्जूष नामक नरक है, जो लोहेसे बना हुआ है। वह सदा प्रज्वलित रहता है। उसमें वे ही डालकर जलाये जाते हैं, जो दूसरोंको निरपराध बंदी बनाते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक पीब, मूत्र और विष्ठाका भंडार है। उसमें ब्राह्मणको पीड़ा देनेवाला पापी नीचे मुँह करके गिराया जाता है। विलेपक नामका घोर नरक लाहकी आगसे जलता रहता है। उसमें मदिरा पीनेवाले द्विज डालकर जलाये जाते हैं। महाप्रभ नामसे विख्यात नरक बहुत ऊँचा है। उसमें चमकता हुआ शूल गड़ा होता है। जो लोग पति-पत्नीमें भेद डालते हैं, उन्हें वहीं शूलसे छेदा जाता है। उसके बाद जयन्ती नामक अत्यन्त घोर नरक है, जहाँ लोहेकी बहुत बड़ी चट्टान पड़ी रहती है। परायी स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेवाले मनुष्य उसीके नीचे दबाये जाते हैं। शाल्मल नरक जलते हुए सुदृढ़ काँटोंसे व्याप्त है। जो स्त्री अनेक पुरुषोंके साथ सम्भोग करती है, उसे उस शाल्मल नामक वृक्षका आलिङ्गन करना पड़ता है। उस समय वह पीड़ासे व्याकुल हो उठती है। जो लोग सदा झूठ बोलते और दूसरोंके मर्मको चोट पहुँचानेवाली वाणी मुँहसे निकालते हैं, मृत्युके बाद उनकी जिह्वा यमदूतोंद्वारा काट ली जाती है। जो आसक्तिके साथ कटाक्षपूर्ण परायी स्त्रीकी ओर देखते हैं, यमराजके दूत बाण मारकर उनकी आँखें फोड़ देते हैं। जो लोग माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधूके साथ समागम तथा स्त्री, बालक और बूढ़ोंकी हत्या करते हैं, उनकी भी यही दशा होती है; वे चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त नरक-यातनामें पड़े रहते हैं। महारौरव नामक नरक ज्वालाओंसे परिपूर्ण तथा अत्यन्त भयंकर है, उसका विस्तार चौदह हजार योजन है। जो मूढ़ नगर, गाँव, घर अथवा खेतमें आग लगाते हैं, वे एक कल्पतक उस नरकमें पकाये जाते हैं। तामिस्र नरकका विस्तार एक लाख योजन है। वहाँ सदा खड्ग, पट्टिश और मुद्गरोंकी मार पड़ती रहती है। इससे वह बड़ा भयंकर जान पड़ता है। यमराजके दूत चोरोंको उसीमें डालकर शूल, शक्ति, गदा और खड्गसे उन्हें तीन सौ कल्पोंतक पीटते रहते हैं। महातामिस्र नामक नरक और भी दुःखदायी है। उसका विस्तार तामिस्रकी अपेक्षा दूना है। उसमें जोंकें भरी हुई हैं और निरन्तर अन्धकार छाया रहता है। जो माता, पिता और मित्रकी हत्या करनेवाले तथा विश्वासघाती हैं, वे जबतक यह पृथ्वी रहती है, तबतक उसमें पड़े रहते हैं और जोंकें निरन्तर उनका रक्त चूसती रहती हैं। असिपत्रवन नामक नरक तो बहुत ही कष्ट देनेवाला है। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें अग्निके समान प्रज्वलित खड्ग पत्तोंके रूपमें व्याप्त है। वहाँ गिराया हुआ पापी खड्गकी धारके समान पत्तोंद्वारा क्षत-विक्षत हो जाता है। उसके शरीरमें सैकड़ों घाव हो जाते हैं। मित्रघाती मनुष्य उसमें एक कल्पतक रखकर काटा जाता है। करम्भवालुका नामक नरक दस हजार योजन विस्तीर्ण है। उसका आकार कुएँकी तरह है। उसमें जलती हुई बालू, अँगारे और काँटे भरे हुए हैं। जो भयंकर उपायोंद्वारा किसी मनुष्यको

जला देता है, वह उक्त नरकमें एक लाख दस हजार तीन सौ वर्षोंतक जलाया और विदीर्ण किया जाता है।

काकोल नामक नरक कीड़ों और पीबसे भरा रहता है। जो दुष्टात्मा मानव दूसरोंको न देकर अकेला ही मिष्टान्न उड़ाता है, वह उसीमें गिराया जाता है। कुड्मल नरक विष्ठा, मूत्र और रक्तसे भरा होता है। जो लोग पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान नहीं करते, वे उसीमें गिराये जाते हैं। महाभीम नरक अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मांस व रक्तसे पूर्ण है। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले नीच मनुष्य उसमें गिरते हैं। महावट नरक मुर्दोंसे भरा होता है। वह बहुत-से कीटोंसे व्याप्त रहता है। जो मनुष्य अपनी कन्या बेचता है, वह नीचे मुँह करके उसमें गिराया जाता है। तिलपाक नामसे प्रसिद्ध नरक बहुत ही भयंकर बताया गया है। जो लोग दूसरोंको पीड़ा देते हैं, वे उसमें तिलकी भाँति पेरे जाते हैं। तैलपाक नरकमें खौलता हुआ तेल भूमिपर बहता रहता है। जो मित्रों तथा शरणागतोंकी हत्या करते हैं, वे उसीमें पकाये जाते हैं। वज्रकपाट नरक वज्रमयी शृङ्खलासे व्याप्त रहता है। जिन लोगोंने दूध बेचनेका व्यवसाय किया है, उन्हें वहाँ निर्दयतापूर्वक पीड़ा दी जाती है। निरुच्छ्वास नरक अन्धकारसे पूर्ण और वायुसे रहित होता है। जो ब्राह्मणको दिये जानेवाले दानमें रुकावट डालता है, वह निश्चेष्ट करके उसमें डाल दिया जाता है। अङ्गारोपचय नामक नरक दहकते हुए अँगारोंसे प्रज्वलित रहता है। जो लोग देनेकी प्रतिज्ञा करके भी ब्राह्मणको दान नहीं देते, वे उसीमें जलाये जाते हैं। महापायी नरकका विस्तार एक लाख योजन है। जो सदा असत्य बोला करते हैं, उन्हें नीचे मुख करके उसीमें डाल दिया जाता है। महाज्वाल नामक नरक सदा आगकी लपटोंसे प्रकाशित एवं भयंकर होता है। जो मनुष्य पापमें मन लगाते हैं, उन्हें दीर्घकालतक उसीमें जलाया जाता है। क्रकच नामक नरकमें वज्रकी धारकी समान तीखे आरे लगे होते हैं। उसमें अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले मनुष्योंको उन्हीं आरोंसे चीरा जाता है। गुडपाक नरक खौलते हुए गुड़के अनेक कुण्डोंसे व्याप्त है। जो मनुष्य वर्णसंकरता फैलाता है, वह उसीमें डालकर जलाया जाता है।*

क्षुरधार नामक नरक तीखे उस्तुरोंसे भरा रहता है। जो लोग ब्राह्मणोंकी भूमि हड़प लेते हैं, वे एक कल्पतक उसीमें डालकर काटे जाते हैं। अम्बरीष नामक नरक प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित रहता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य करोड़ कल्पोंतक उसमें दग्ध किया जाता है। वज्रकुठार नामक नरक वज्रसे व्याप्त है। पेड़ काटनेवाले पापी मनुष्य उसीमें डालकर काटे जाते हैं। परिताप नामक नरक भी प्रलयाग्निसे उद्दीप्त

* नरकं गुडपाकेति ज्वलदुडुहदैर्वृतम्। निक्षिप्तो दह्यते तस्मिन् वर्णसंकरकृन्नरः॥
(२१५। १२१-१२२)

रहता है। विष देने तथा मधुकी चोरी करनेवाला पापी उसीमें यातना भोगता है। कालसूत्र नरक वज्रमय सूतसे निर्मित है। जो लोग दूसरोंकी खेती नष्ट करते हैं, वे उसीमें घुमाये जाते हैं, जिससे उनका अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाता है। कश्मल नरक मुख और नाकके मलसे भरा होता है। मांसकी रुचि रखनेवाला मनुष्य उसमें एक कल्पतक रखा जाता है। उग्रगन्ध नामक नरक लार, मूत्र और विष्ठासे भरा होता है। जो पितरोंको पिण्ड

नहीं देते, वे उसी नरकमें डाले जाते हैं। दुर्धर नरक जोंकों और बिच्छुओंसे भरा रहता है। सूदखोर मनुष्य उसमें दस हजार वर्षोंतक पड़ा रहता है। वज्रमहापीड़ नामक नरक वज्रसे ही निर्मित है। जो दूसरोंके धन-धान्य और सुवर्णकी चोरी करते हैं, उन्हें उसीमें डालकर यातना दी जाती है। यमदूत उन चोरोंको छूरोंसे क्षण-क्षणपर काटते रहते हैं। जो मूर्ख किसी प्राणीकी हत्या करके उसे कौए और गृध्रकी भाँति खाते हैं, उन्हें एक कल्पतक अपने ही शरीरका मांस खाना पड़ता है। जो दूसरोंके आसन, शय्या और वस्त्रका अपहरण करते हैं, उन्हें यमदूत शक्ति और तोमरोंसे विदीर्ण करते हैं। जिन खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंने लोगोंके फल अथवा पत्ते भी चुराये हैं, उन्हें क्रोधमें भरे हुए यमदूत तिनकोंकी आगमें जला डालते हैं। जो मनुष्य पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा दूषित भाव रखता है, यमदूत उसकी छातीमें जलता हुआ शूल गाड़ देते हैं। जो मानव मन, वाणी और क्रियाद्वारा धर्मसे विमुख रहते हैं, उन्हें यमलोकमें बड़ी भयंकर यातना भोगनी पड़ती है। इस प्रकार लाखों, करोड़ों और अरबों नरक हैं, जहाँ पापी मनुष्य अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। इस लोकमें थोड़ा-सा भी पापकर्म करनेपर यमलोकमें भयंकर नरकके भीतर घोर यातना सहनी पड़ती है। मूढ़ मनुष्य साधु पुरुषोंद्वारा बताये हुए धर्मयुक्त वचनोंको नहीं सुनते। जब कोई उनसे परलोककी चर्चा करता है, तब वे झट यही उत्तर देते हैं—किसने स्वर्ग और नरकको प्रत्यक्ष देखा है। ऐसे लोग दिन-रात प्रयत्नपूर्वक पाप करते हैं। धर्मका आचरण तो वे भूलकर भी नहीं करते। इस प्रकार जो इसी लोकमें कर्मोंके फलका भोग होना मानते हैं, परलोकके प्रति जिनकी तनिक भी आस्था नहीं है, ऐसे नराधम भयंकर नरकोंमें पड़ते हैं। नरकका निवास अत्यन्त दुःखदायी और स्वर्गवास सुख देनेवाला है। मनुष्य शुभकर्म करनेसे स्वर्ग पाते हैं और अशुभकर्म करके नरकोंमें पड़ते हैं।

धर्मसे यमलोकमें सुखपूर्वक गति तथा भगवद्भक्तिके प्रभावका वर्णन

मुनियोंने कहा—अहो! यमलोकके मार्गमें तो बड़ा भयंकर दुःख होता है। साधुश्रेष्ठ! आपने उन दुःखोंके साथ ही घोर नरकों तथा दक्षिणद्वारका भी वर्णन किया। ब्रह्मन्! उस भयानक मार्गमें कष्टोंसे बचनेका कोई उपाय है या नहीं? यदि है तो बताइये, किस उपायसे मनुष्य यमलोकमें सुखपूर्वक जा सकते हैं?

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! जो लोग इस लोकमें धर्मपरायण हो अहिंसाका पालन करते, गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न रहते और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे स्त्री और पुत्रोंसहित जिस प्रकार उस मार्गसे यात्रा करते हैं, वह बतलाता हूँ। उपर्युक्त पुण्यात्मा पुरुष सुवर्णमय ध्वजाओंसे सुशोभित भाँति-भाँतिके दिव्य विमानोंपर

आरूढ़ हो धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्रकारकी वस्तुएँ दानमें देते हैं, वे उस महान् पथपर सुखसे यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको, ब्राह्मणोंमें भी विशेषतः श्रोत्रियोंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम रीतिसे तैयार किया हुआ अन्न देते हैं, वे सुसज्जित विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो सदा सत्य बोलते और बाहर-भीतरसे शुद्ध रहते हैं, वे भी देवताओंके समान कान्तिमान् शरीर धारणकर विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें जाते हैं। जो धर्मज्ञ पुरुष जीविकारहित दीन-दुर्बल साधुओंको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे पवित्र गोदान करते हैं, वे मणिजटित दिव्य विमानोंद्वारा धर्मराजके लोकमें जाते हैं। जो जूता, छाता, शय्या, आसन, वस्त्र और आभूषण दान करते हैं, वे दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत हो हाथी, रथ और घोड़ोंकी सवारीसे वहाँकी यात्रा करते हैं। उनके ऊपर सोने-चाँदीका छत्र लगा रहता है। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विशुद्ध हृदयसे भक्तिपूर्वक गुड़का रस और भात देते हैं, वे सुवर्णमय वाहनोंद्वारा यमलोकमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक शुद्ध एवं सुसंस्कृत दूध, दही, घी और गुड़ दान करते हैं, वे चक्रवाक पक्षियोंसे जुड़े हुए सुवर्णमय विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। उस समय गन्धर्वगण वाद्योंद्वारा उनकी सेवा करते हैं। जो सुगन्धित पुष्प दान करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक तिल, तिलमयी धेनु अथवा घृतमयी धेनु दान करते हैं, वे चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें प्रवेश करते हैं। उस समय गन्धर्वगण उनका सुयश गाते रहते हैं। इस लोकमें जिनके बनवाये हुए कुएँ, बावड़ी, तालाब, सरोवर, दीर्घिका, पुष्करिणी तथा शीतल जलाशय शोभा पाते हैं, वे दिव्य घण्टानादसे मुखरित, सुवर्ण और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विमानोंद्वारा यात्रा

करते हैं। मार्गमें उन्हें सुख देनेके लिये दिव्य पंखे डुलाये जाते हैं। जो लोग समस्त प्राणियोंके

जीवनभूत जलका दान करते हैं, वे पिपासासे रहित हो दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखपूर्वक उस महान् पथकी यात्रा करते हैं! जिन्होंने ब्राह्मणोंको लकड़ीकी बनी खड़ाऊँ, सवारी, पीढ़ा और आसन दान किये हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं। वे विमानोंपर बैठकर सोने और मणियोंके बने हुए उत्तम पीढ़ोंपर पैर रखकर यात्रा करते हैं।

जो मनुष्य दूसरोंके उपकारके लिये फल और पुष्पोंसे सुशोभित विचित्र उद्यान लगाते हैं, वे वृक्षोंकी रमणीय एवं शीतल छायामें सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। जो लोग सोना, चाँदी, मूँगा तथा मोती दान करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर यमलोकमें जाते हैं। भूमिदान करनेवाले पुरुष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे तृप्त हो उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर देदीप्यमान शरीरसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो ब्राह्मणोंके लिये भक्तिपूर्वक उत्तम गन्ध, अगर, कपूर, पुष्प और धूपका दान करते हैं, वे मनोहर गन्ध, सुन्दर वेष, उत्तम कान्ति और श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित हो विचित्र विमानोंद्वारा धर्मनगरकी यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले मनुष्य अग्निके तुल्य प्रकाशमान होकर सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चलते हैं। जो गृह अथवा रहनेके लिये स्थान देते हैं, वे अरुणोदयकी-सी कान्तिवाले सुवर्णमण्डित गृहोंके साथ धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जलपात्र, कुंडी और कमण्डलु दान करनेवाले मानव अप्सराओंसे पूजित हो महान् गजराजोंपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको सिर और पैरोंमें मलनेके लिये तेल तथा नहाने और पीनेके लिये जल देते हैं, वे घोड़ोंपर सवार होकर यमलोकमें जाते हैं। जो रास्तेके थके-माँदे दुर्बल ब्राह्मणोंको अपने यहाँ ठहराते हैं, वे चकवोंसे जुड़े हुए दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो स्वागतपूर्वक आसन देकर ब्राह्मणकी पूजा करता है, वह अत्यन्त प्रसन्न होकर सुखसे उस मार्गपर जाता है।

जो 'पापहरे!' इत्यादिका उच्चारण करके गौको मस्तक झुकाते हैं, वह सुखसे यमलोकके मार्गपर आगे बढ़ता है। जो शठता और दम्भका परित्याग करके एक समय भोजन करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। जो जितेन्द्रिय पुरुष एक दिन उपवास करके दूसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे मोरोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो नियमपूर्वक व्रतका पालन करते हुए तीसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे हाथियोंसे जुड़े हुए दिव्य रथोंपर आसीन हो यमराजके लोकमें जाते हैं। जो नित्य पवित्र रहकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए छठे दिन आहार ग्रहण करते हैं, वे साक्षात् शचीपति इन्द्रके समान ऐरावतकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो एक पक्षतक उपवास करके अन्न ग्रहण करते हैं, वे बाघोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके

नगरमें जाते हैं। उस समय देवता और असुर उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। जो जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक उपवास करते हैं, वे सूर्यके

समान देदीप्यमान रथोंपर बैठकर यमलोककी यात्रा करते हैं। जो स्त्री अथवा गौकी रक्षाके लिये युद्धमें प्राणत्याग करता है, वह सूर्यके समान कान्तिमान् शरीर धारण करके देवकन्याओंद्वारा सेवित हो धर्मनगरकी यात्रा करता है।

जो भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए जितेन्द्रियभावसे तीर्थोंकी यात्रा करते हैं, वे सुखदायक विमानोंसे सुशोभित हो उस भयंकर पथकी यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ द्विज प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करते हैं, वे तपाये हुए सुवर्णसदृश विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं। जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते और भृत्योंका भरण-पोषण करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो समस्त प्राणियोंके प्रति क्षमाभाव रखते, सबको अभय देते, क्रोध, मोह और मदसे मुक्त रहते तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, वे महान् तेजसे सम्पन्न हो पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विमानपर बैठकर यमराजकी पुरीमें जाते हैं। उस समय देवता और गन्धर्व उनकी सेवामें खड़े रहते हैं। जो सत्य और पवित्रतासे युक्त रहकर कभी भी मांसाहार नहीं करते, वे भी धर्मराजके नगरमें सुखसे ही यात्रा करते हैं। जो एक हजार गौओंका दान करता है और जो कभी मांस भक्षण नहीं करता, वे दोनों समान हैं—यह बात पूर्वकालमें वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ साक्षात् ब्रह्माजीने कही थी। ब्राह्मणो! सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही या उसके समान फल मांस न खानेसे भी प्राप्त होता है।* इस प्रकार दान और व्रतमें तत्पर रहनेवाले धर्मात्मा पुरुष विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं, जहाँ सूर्यनन्दन यम विराजमान रहते हैं। धार्मिक पुरुषोंको देखकर यमराज स्वयं ही स्वागतपूर्वक उन्हें आसन देते और पाद्य, अर्घ्य तथा प्रिय वचनोंद्वारा उनका सम्मान करते हैं। वे कहते हैं—'पुण्यात्मा पुरुषो! आपलोग धन्य हैं। आप अपने आत्माका कल्याण करनेवाले महात्मा हैं, क्योंकि आपने दिव्य सुखके लिये शुभकर्मोंका अनुष्ठान किया है। अब इस विमानपर बैठकर उस अनुपम स्वर्गलोकको जाइये, जहाँ समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। वहाँ महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्य क्षीण होनेपर जो थोड़ा अशुभ कर्म शेष रहेगा, उसका फल यहाँ आकर भोगियेगा।'

धर्मात्मा पुरुष अपने पुण्योंके प्रभावसे धर्मराजको कोमल हृदयवाले अपने पिताके तुल्य देखते हैं,

---

* ये च मांसं न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः। तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः॥
गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तु मांसं न भक्षयेत्। समावेतौ पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदां वरः॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्समम्॥
(२१६। ६३, ६५-६६)

इसलिये धर्मका सदा सेवन करना चाहिये। धर्म मोक्षरूप फलको देनेवाला है। धर्मसे ही अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि बतायी गयी है। धर्म ही माता-पिता और भ्राता है, धर्म ही अपना रक्षक और सुहृद् है। स्वामी, सखा, पालक तथा धारण-पोषण करनेवाला धर्म ही है।* धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम और कामसे भोग एवं सुख उपलब्ध होते हैं। धर्मसे ही ऐश्वर्य, एकाग्रता और उत्तम स्वर्गीय गति प्राप्त होती है। विप्रवरो! धर्मका यदि सेवन किया जाय तो वह मनुष्यकी महान् भयसे रक्षा करता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि धर्मसे देवत्व और ब्राह्मणत्व भी प्राप्त हो सकते हैं। जब मनुष्योंके पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाते हैं, तब उनकी बुद्धि इस लोकमें धर्मकी ओर लगती है। हजारों जन्मोंके पश्चात् दुर्लभ मनुष्य-जीवनको पाकर जो धर्मका आचरण नहीं करता, वह निश्चय ही सौभाग्यसे वञ्चित है। जो लोग कुत्सित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूसरोंके सेवक और मूर्ख हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें धर्म नहीं किया है—ऐसा जानना चाहिये। जो दीर्घायु, शूरवीर, पण्डित, भोगसाधनसे सम्पन्न, धनवान्, नीरोग तथा रूपवान् हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही धर्मका अनुष्ठान किया है। ब्राह्मणो! इस प्रकार धर्मपरायण मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं और अधर्मका सेवन करनेवाले लोग पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाते हैं।

जो मनुष्य नरकासुरका विनाश करनेवाले भगवान् वासुदेवके भक्त हैं, वे स्वप्नमें भी यमराज अथवा नरकोंको नहीं देखते। जो दैत्यों और दानवोंका संहार करनेवाले आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणको प्रतिदिन नमस्कार करते हैं, वे भी यमराजको नहीं देखते। जो मन, वाणी और क्रियाके द्वारा भगवान् अच्युतकी शरणमें चले गये हैं, उनपर यमराजका वश नहीं चलता। वे मोक्षरूप फलके भागी होते हैं। ब्राह्मणो! जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ श्रीनारायणको नमस्कार करते हैं, वे वैकुण्ठधामके सिवा अन्यत्र नहीं जाते। श्रीविष्णुको नमस्कार करके मनुष्य यमदूतोंको, यमलोकके मार्गको, यमपुरीको तथा वहाँके नरकोंको किसी प्रकार नहीं देख पाते। मोहमें पड़कर अनेकों बार पाप कर लेनेपर भी यदि मानव सर्वपापहारी श्रीहरिको नमस्कार करते हैं तो वे नरकमें नहीं पड़ते। जो लोग शठतासे भी सदा भगवान् जनार्दनका स्मरण करते हैं, वे भी देहत्यागके पश्चात् रोग-शोकसे रहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होते हैं। अत्यन्त क्रोधमें आसक्त होकर भी जो कभी श्रीहरिके नामोंका कीर्तन करता है, वह भी चेदिराज शिशुपालकी भाँति सम्पूर्ण दोषोंका क्षय हो जानेसे मोक्षको प्राप्त करता है।†

---

* तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदामुक्तिफलप्रदः। धर्मादर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते॥
धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा। धर्मः स्वामी सखा गोप्ता तथा धाता च पोषकः॥
(२१६। ७३-७४)

† ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुव्रताः। ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकाणि वा॥
अनादिनिधनं देवं दैत्यदानवदारणम्। ये नमन्ति नरा नित्यं न हि पश्यन्ति ते यमम्॥
कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युतं शरणं गताः। न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः॥
ये जना जगतां नाथं नित्यं नारायणं द्विजाः। नमन्ति न हि ते विष्णोः स्थानादन्यत्र गामिनः॥
न ते दूतान्न तन्मार्गं न यमं न च तां पुरीम्। प्रणम्य विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि कथंचन॥
कृत्वापि बहुशः पापं नरा मोहसमन्विताः। न यान्ति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम्॥
शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम्। तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम्॥
अत्यन्तक्रोधसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्धरिम्। सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेच्चेदिपतिर्यथा॥
(२१६। ८२—८९)

धर्मकी महिमा एवं अधर्मकी गतिका निरूपण तथा अन्नदानका माहात्म्य

मुनियोंने कहा—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा सब शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं। कृपया बताइये पिता, माता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी और मित्रवर्ग—इनमेंसे कौन मरनेवाले प्राणीका विशेष सहायक होता है? लोग तो मृतकके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति छोड़कर चल देते हैं, फिर परलोकमें कौन उसके साथ जाता है?

व्यासजी बोले—विप्रवरो! प्राणी अकेला ही जन्म लेता, अकेला ही मरता, अकेला ही दुर्गम संकटोंको पार करता और अकेला ही दुर्गतिमें पड़ता है। पिता, माता, भ्राता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी तथा मित्रवर्ग—इनमेंसे कोई भी मरनेवालेका साथ नहीं देता। घरके लोग मृत व्यक्तिके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति त्याग देते और दो घड़ी रोकर उससे मुँह मोड़कर चले जाते हैं। वे सब लोग तो त्याग देते हैं, किन्तु धर्म उसका त्याग नहीं करता। वह अकेला ही जीवके साथ जाता है, अतः धर्म ही सच्चा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त प्राणी उत्तम स्वर्गगतिको प्राप्त होता है, इसी प्रकार अधर्मयुक्त मानव नरकमें पड़ता है; अतः विद्वान् पुरुष पापसे प्राप्त होनेवाले धनमें अनुराग न रखे। एकमात्र धर्म ही मनुष्योंका सहायक बताया गया है। बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञाता मनुष्य भी लोभ, मोह, घृणा अथवा भयसे मोहित होकर दूसरेके लिये न करने योग्य कार्य भी कर डालता है। धर्म, अर्थ और काम—तीनों ही इस जीवनके फल हैं। अधर्म-त्यागपूर्वक इन तीनोंकी प्राप्ति करनी चाहिये।*

मुनियोंने कहा—भगवन्! आपका यह धर्मयुक्त वचन, जो परम कल्याणका साधन है, हमने सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह शरीर किन तत्त्वोंका समूह है। मनुष्योंका मरा हुआ शरीर तो स्थूलसे सूक्ष्म—अव्यक्तभावको प्राप्त हो जाता है, वह नेत्रोंका विषय नहीं रह जाता; फिर धर्म कैसे उसके साथ जाता है?

व्यासजी बोले—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सदा साथ रहकर धर्मपर दृष्टि रखते हैं। ये समस्त प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंके निरन्तर साक्षी रहते हैं। इनके साथ धर्म जीवका अनुसरण करता है। जब शरीरसे प्राण निकल जाता है, तब त्वचा, हड्डी, मांस, वीर्य और रक्त भी उस शरीरको छोड़ देते हैं। उस समय जीव धर्मसे युक्त होनेपर ही इस लोक और परलोकमें सुख एवं अभ्युदयको प्राप्त होता है।

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने यह भलीभाँति

---

* एकः प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति। एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्॥
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः। ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः। मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः॥
तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति। तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः॥
प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं पराम्। तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते॥
तस्मात्पापागतैरर्थैर्नानुरज्येत पण्डितः। धर्म एको मनुष्याणां सहायः परिकीर्तितः॥
लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाथ बहुश्रुतः। नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीवतः फलम्। एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम्॥

(२१७। ४—११)

समझा दिया कि धर्म किस प्रकार जीवका अनुसरण करता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि [शरीरके कारणभूत] वीर्यकी उत्पत्ति कैसे होती है।

व्यासजीने कहा—द्विजवरो! शरीरमें स्थित जो पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज और मनके अधिष्ठाता देवता हैं, वे जब अन्न ग्रहण करते हैं और उससे मनसहित पृथ्वी आदि पाँचों भूत तृप्त होते हैं, तब उस अन्नसे शुद्ध वीर्य बनता है। उस वीर्यमें कर्मप्रेरित जीव आकर निवास करता है। फिर स्त्रियोंके रजमें मिलकर वह समयानुसार जन्म ग्रहण करता है। पुण्यात्मा प्राणी इस लोकमें जन्म लेनेपर जन्मकालसे ही पुण्यकर्मका उपभोग करता है। वह धर्मके फलका आश्रय लेता है। मनुष्य यदि जन्मसे ही धर्मका सेवन करता है तो सदा सुखका भागी होता है। यदि बीच-बीचमें कभी धर्म और कभी अधर्मका सेवन करता है तो वह सुखके बाद दुःख भी पाता है। पापयुक्त मनुष्य यमलोकमें जाकर महान् कष्ट उठानेके बाद पुनः तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। मोहयुक्त जीव जिस-जिस कर्मसे जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, उसे बतलाता हूँ; सुनो! परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य पहले तो भेड़िया होता है; फिर क्रमशः कुत्ता, सियार, गीध, साँप, कौआ और बगुला होता है। जो पापात्मा कामसे मोहित होकर अपनी भौजाईके साथ बलात्कार करता है, वह एक वर्षतक नर-कोकिल होता है। मित्र, गुरु तथा राजाकी पत्नीके साथ समागम करनेसे कामात्मा पुरुष मरनेके बाद सूअर होता है। पाँच वर्षोंतक सूअर रहकर मरनेके बाद दस वर्षोंतक बगुला, तीन महीनोंतक चींटी और एक मासतक कीटकी योनिमें पड़ा रहता है। इन सब योनियोंमें जन्म लेनेके बाद वह पुनः कृमियोनिमें उत्पन्न होता और चौदह महीनोंतक जीवित रहता है। इस प्रकार अपने पूर्वपापोंका क्षय करनेके बाद वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो पहले एकको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर दूसरेको देना चाहता है, वह भी मरनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है। उस योनिमें वह तेरह वर्षोंतक जीवित रहता है। फिर अधर्मका क्षय होनेपर वह मनुष्य होता है। जो देवकार्य अथवा पितृकार्य न करके देवताओं और पितरोंको संतुष्ट किये बिना ही मर जाता है, वह कौआ होता है। सौ वर्षोंतक कौएकी योनिमें रहनेके बाद वह मुर्गा होता है। तत्पश्चात् एक मासतक सर्पकी योनिमें निवास करता है। उसके बाद वह मनुष्य होता है। जो पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है, वह मृत्युके बाद क्रौञ्च-योनिमें जन्म लेता है और दस वर्षोंतक जीवन धारण करता है। तत्पश्चात् मरनेपर वह मनुष्य होता है। शूद्रजातीय पुरुष ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। उससे मृत्यु होनेपर वह सूअर होता है। सूअरकी योनिमें जन्म लेते ही रोगसे उसकी मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर वह मूर्ख पूर्वोक्त पापके ही फलस्वरूप कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद उसे मानव-शरीरकी प्राप्ति होती है। मानवयोनिमें संतान उत्पन्न करके वह मर जाता है और चूहेका जन्म पाता है। कृतघ्न मनुष्य मृत्युके बाद जब यमराजके लोकमें जाता है, उस समय क्रूर यमदूत उसे बाँधकर भयंकर दण्ड देते हैं। उस दण्डसे उसको बड़ी वेदना होती है। दण्ड, मुद्गर, शूल, भयंकर अग्निदण्ड, असिपत्रवन, तप्तवालुका तथा कूटशाल्मलि आदि अन्य बहुत-सी घोर यातनाओंका अनुभव करके वह संसारचक्रमें आता और कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है; पंद्रह वर्षोंतक कीड़ा रहनेके बाद मानव-गर्भमें आकर वहाँ जन्म लेनेके पहले ही मर जाता है। इस प्रकार सैकड़ों बार गर्भमें मृत्युका कष्ट भोगकर अनेक बार संसार-बन्धनमें पड़ता है। तत्पश्चात् वह पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है। उसमें बहुत वर्षोंतक कष्ट उठाकर अन्तमें वह कछुआ होता है।

दहीकी चोरी करनेसे मनुष्य बगुला और मेढक होता है। फल, मूल अथवा पुआ चुरानेसे वह चींटी होता है। जलकी चोरी करनेसे कौआ और काँसा चुरानेसे हारीत (हरियल) पक्षी होता है। चाँदीका बर्तन चुरानेवाला कबूतर होता है और सुवर्णमय पात्रका अपहरण करनेसे कृमियोनिमें जन्म लेना पड़ता है। रेशमका कीड़ा चुरानेसे मनुष्य वानर होता है। वस्त्रकी चोरी करनेसे तोतेकी योनिमें जन्म होता है। साड़ी चुरानेवाला मनुष्य मरनेके बाद हंस होता है। रूईका वस्त्र हड़प लेनेवाला मानव मृत्युके पश्चात् क्रौञ्च होता है। सनका वस्त्र, ऊनी वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र चुरानेवाला मनुष्य खरगोश होता है। चूर्णकी चोरी करनेसे मनुष्य दूसरे जन्ममें मोर होता है। अङ्गराग और सुगन्धकी चोरी करनेवाला लोभी मनुष्य छछूँदर होता है। उस योनिमें पंद्रह वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद जब पापका क्षय हो जाता है, तब वह मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो स्त्री दूधकी चोरी करती है, वह बगुली होती है। जो नीच पुरुष स्वयं सशस्त्र होकर वैरसे अथवा धनके लिये किसी शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करता है, वह मरनेपर गदहा होता है। गदहेकी योनिमें दो वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद वह शस्त्रद्वारा मारा जाता है, फिर मृगकी योनिमें जन्म लेकर सदा उद्विग्न बना रहता है। मृगयोनिमें एक वर्ष बीतनेपर वह बाणका निशाना बन जाता है, फिर मछलीकी योनिमें जन्म ले वह जालमें फँसा लिया जाता है। चार महीने बीतनेपर वह शिकारी कुत्तेके रूपमें जन्म लेता है। दस वर्षोंतक कुत्ता रहकर पाँच वर्षोंतक व्याघ्रकी योनिमें रहता है। फिर कालक्रमसे पापोंका क्षय होनेपर मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो मनुष्य खलीमिश्रित अन्नका अपहरण करता है, वह भयंकर चूहा होता है। उसका रंग नेवले-जैसा भूरा होता है। वह पापात्मा प्रतिदिन मनुष्योंको डँसता रहता है। घीकी चोरी करनेवाला दुर्बुद्धि मानव कौआ और बगुला होता है। नमक चुरानेसे चिरिकाक नामक पक्षी होना पड़ता है। जो मनुष्य विश्वासपूर्वक रखी हुई धरोहरको हड़प लेता है, वह मृत्युके बाद मछलीकी योनिमें जन्म लेता है। उसके पश्चात् मृत्यु होनेपर फिर मनुष्य होता है। मानव-योनिमें भी उसकी आयु बहुत ही थोड़ी होती है।

ब्राह्मणो! मनुष्य पाप करके तिर्यग्योनिमें जाता है, जहाँ उसे धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। जो मनुष्य पाप करके व्रतोंद्वारा उसका प्रायश्चित्त करते हैं, वे सुख और दुःख दोनोंसे युक्त होते हैं। लोभ-मोहसे युक्त पापाचारी मनुष्य निश्चय ही म्लेच्छयोनिमें जन्म लेते हैं। जो लोग जन्मसे ही पापका परित्याग करते हैं, वे नीरोग, रूपवान् और धनी होते हैं। स्त्रियाँ भी ऊपर बताये अनुसार कर्म करनेसे पापकी भागिनी होती हैं और पापयोनिमें पड़े हुए पूर्वोक्त पापियोंकी ही पत्नी बनती हैं। द्विजवरो! चोरीके प्रायः सभी दोष बता दिये गये। यहाँ जो कुछ कहा गया है, वह बहुत संक्षिप्त है; फिर कभी कथा-वार्ताका अवसर आनेपर तुमलोग इस विषयको विस्तारपूर्वक सुन सकते हो। पूर्वकालमें देवर्षियोंकी सभामें उनके प्रश्नानुसार ब्रह्माजीने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमलोगोंको बतलाया है। ये सब बातें सुनकर तुम धर्मके अनुष्ठानमें मन लगाओ।

मुनि बोले—ब्रह्मन्! आपने अधर्मकी गतिका निरूपण किया, अब हम धर्मकी गति सुनना चाहते हैं। किस कर्मके अनुष्ठानसे मनुष्यकी सद्गति होती है?

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो! जो मोहवश अधर्मका अनुष्ठान कर लेनेपर उसके लिये पुनः सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करता और मनको एकाग्र रखता है, वह पापका सेवन नहीं करता। ज्यों-ज्यों मनुष्यका मन पाप-कर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका

शरीर उस अधर्मसे दूर होता जाता है। यदि धर्मवादी ब्राह्मणोंके सामने अपना पाप कह दिया जाय तो वह उस पापजनित अपराधसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे अपने अधर्मकी बात बारंबार प्रकट करता है, वैसे-ही-वैसे वह एकाग्रचित्त होकर अधर्मको छोड़ता जाता है।* जैसे साँप केचुल छोड़ता है, उसी प्रकार वह पहलेके अनुभव किये हुए पापोंका त्याग करता है। एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणको नाना प्रकारके दान दे। जो मनको ध्यानमें लगाता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त करता है।

ब्राह्मणो! अब मैं दानका फल बतलाता हूँ। सब दानोंमें अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाया गया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह सरलतापूर्वक सब प्रकारके अन्नोंका दान करे। अन्न ही मनुष्योंका जीवन है। उसीसे जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति होती है। अन्नमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं, अतः अन्नको श्रेष्ठ बताया जाता है। देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि अन्नदानसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके लिये न्यायोपार्जित उत्तम अन्नका प्रसन्नचित्तसे दान करना चाहिये। जिसके प्रसन्नचित्तसे दिये हुए अन्नको दस ब्राह्मण भोजन कर लेते हैं, वह कभी पशु-पक्षी आदिकी योनिमें नहीं पड़ता। सदा पापोंमें संलग्न रहनेवाला मनुष्य भी यदि दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन करा दे तो वह अधर्मसे मुक्त हो जाता है। वेदोंका अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण भिक्षासे अन्न ले आकर यदि किसी स्वाध्यायशील ब्राह्मणको दान कर दे तो वह संसारमें सुख और समृद्धिका भागी होता है। जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको हानि न पहुँचाकर न्यायतः प्रजाका पालन करते हुए अन्नका उपार्जन करता है और उसे एकाग्रचित्त होकर श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है, वह धर्मात्मा है और उस पुण्यके जलसे अपने पापपङ्कको धो डालता है। अपने द्वारा उपार्जित खेतीके अन्नमेंसे छठा भाग राजाको देनेके बाद जो शेष शुद्ध भाग बच जाता है, वह अन्न यदि वैश्य ब्राह्मणको दान करे तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो शूद्र प्राणोंको संशयमें डालकर और नाना प्रकारकी कठिनाइयोंको सहकर भी अपने द्वारा उपार्जित शुद्ध अन्नको ब्राह्मणोंके निमित्त दान करता है, वह भी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जो कोई भी मनुष्य श्रेष्ठ वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक न्यायोपार्जित अन्नका दान करता है, उसका पाप छूट जाता है। संसारमें अन्न बलकी वृद्धि करनेवाला है। उसका दान करनेसे मनुष्य बलवान् बनता है। सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। दानवेत्ता पुरुषोंने जो मार्ग बताया है और जिसपर मनीषी पुरुष चलते हैं, वही अन्नदाताओंका भी मार्ग है। उन्हींसे सनातन धर्म है। मनुष्यको सभी अवस्थाओंमें न्यायोपार्जित अन्नका दान करना चाहिये। क्योंकि अन्न सर्वोत्तम गति है। अन्नदानसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। इस लोकमें उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मृत्युके बाद भी वह सुखका भागी होता है।†

---

* मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते। मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम्॥
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते। तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते॥
यदि विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम्। ततोऽधर्मकृतात्क्षिप्रमपराधात्प्रमुच्यते ॥
यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते। समाहितेन मनसा विमुञ्चति तथा तथा॥
(२१८। ४—७)

† अन्नस्य हि प्रदानेन नरो याति परां गतिम्॥ सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्।
(२१८। २६-२७)

इस प्रकार पुण्यवान् मनुष्य पापोंसे मुक्त होता है। अतः अन्यायरहित अन्नका दान करना चाहिये। जो गृहस्थ सदा प्राणाग्निहोत्रपूर्वक अन्न-भोजन करता है, वह अन्नदानसे प्रत्येक दिनको सफल बनाता है। जो मनुष्य वेद, न्याय, धर्म और इतिहासके ज्ञाता सौ विद्वानोंको प्रतिदिन भोजन कराता है, वह घोर नरकमें नहीं पड़ता और संसार-बन्धनमें भी नहीं बँधता, अपितु सम्पूर्ण कामनाओंसे तृप्त हो मृत्युके बाद सुखका भागी होता है। इस प्रकार पुण्यकर्मसे युक्त मनुष्य निश्चिन्त होकर आनन्दका भागी होता है। उसे रूप, कीर्ति और धनकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने तुम्हें अन्नदानका महान् फल बतलाया। यह सभी धर्मों और दानोंका मूल है।

श्राद्ध-कल्पका वर्णन

मुनियोंने पूछा—भगवन्! अब श्राद्ध-कल्पका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। तपोधन! कब, कहाँ, किन देशोंमें और किन लोगोंको किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये—यह बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! सुनो, मैं श्राद्ध-कल्पका विस्तारके साथ वर्णन करता हूँ। जब, जहाँ, जिन प्रदेशोंमें और जिन लोगोंद्वारा जिस प्रकार श्राद्ध किया जाना चाहिये, वह सब बतलाता हूँ। अपने कुलोचित धर्मका पालन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको उचित है कि वे अपने-अपने वर्णके अनुरूप वेदोक्त विधिसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करें। स्त्रियों और शूद्रोंको ब्राह्मणकी आज्ञाके अनुसार मन्त्रोच्चारणके बिना ही विधिवत् श्राद्ध करना चाहिये। उनके लिये अग्निमें होम आदि वर्जित हैं। पुष्कर आदि तीर्थ, पवित्र मन्दिर, पर्वतशिखर, पावन प्रदेश, पुण्यसलिला नदी, नद, सरोवर, संगम, सात समुद्रोंके तट, लिपे-पुते अपने घर, दिव्य वृक्षोंके मूल और यज्ञ-कुण्ड—ये सभी उत्तम स्थान हैं। इन सबमें श्राद्ध करना चाहिये।

अब श्राद्धके लिये वर्जित स्थान बतलाता हूँ। किरात (किलात), कलिङ्ग (उड़ीसा), कोङ्कण, कृमि, दशार्ण, कुमार्य, तङ्गण, क्रथ, सिन्धु नदीका उत्तर तट, नर्मदाका दक्षिण तट और करतोयाका पूर्व तट—इन प्रदेशोंमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। प्रत्येक मासकी अमावास्या और पूर्णिमाको श्राद्धके योग्य काल बताया गया है। नित्यश्राद्धमें विश्वेदेवोंका पूजन नहीं होता। नैमित्तिक श्राद्ध विश्वेदेवोंके पूजनपूर्वक होता है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीन प्रकारके श्राद्ध माने गये हैं। इन तीनोंका प्रतिवर्ष अनुष्ठान करना चाहिये। जातकर्म आदि संस्कारोंके अवसरपर आभ्युदयिक श्राद्ध भी करना उचित है। उसमें युग्म ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करनेका विधान है। आभ्युदयिक श्राद्ध मातासे आरम्भ होता है। जब सूर्य कन्याराशिपर जाते हैं, तब कृष्णपक्षके पंद्रह दिनोंतक पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये। प्रतिपदाको श्राद्ध करनेसे धनकी प्राप्ति होती है। द्वितीया संतान देनेवाली है। तृतीया पुत्रप्राप्तिकी अभिलाषा पूर्ण करती है। चतुर्थी शत्रुका नाश करनेवाली है। पञ्चमीको श्राद्ध करनेसे मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त करता है और षष्ठीको श्राद्ध करके वह पूजनीय होता है। सप्तमीको गणोंका आधिपत्य, अष्टमीको उत्तम बुद्धि, नौमीको स्त्री, दशमीको मनोरथकी पूर्णता और एकादशीको श्राद्ध करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण वेदोंको प्राप्त करता है। द्वादशीको पितरोंकी पूजा करनेवाला मानव विजय-लाभ करता है। त्रयोदशीको श्रद्धासहित श्राद्ध करनेवाला पुरुष संतान-वृद्धि, पशु, मेधा, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु अथवा ऐश्वर्यका भागी होता है—इसमें

तनिक भी संदेह नहीं है। जिसके पितर युवावस्थामें ही मृत्युको प्राप्त हुए अथवा शस्त्रद्वारा मारे गये हों, वे उन पितरोंको तृप्त करनेकी इच्छासे चतुर्दशी तिथिको श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करें। जो पुरुष पवित्र होकर अमावास्याको यत्नपूर्वक श्राद्ध करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं तथा अक्षय स्वर्गको प्राप्त करता है।

मुनिवरो! अब पितरोंकी प्रसन्नताके लिये जो-जो वस्तु देनी चाहिये, उसका वर्णन सुनो। जो श्राद्धकर्ममें गुडमिश्रित अन्न, तिल, मधु अथवा मधुमिश्रित अन्न देता है, उसका वह सम्पूर्ण दान अक्षय होता है। पितर कहते हैं—'क्या हमारे कुलमें ऐसा कोई पुरुष होगा, जो हमें जलाञ्जलि देगा, वर्षामें और मघा नक्षत्रमें हमको मधुमिश्रित खीर अर्पण करेगा? मनुष्योंको बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये। यदि उनमेंसे एक भी गया चला जाय अथवा कन्याका विवाह करे या नील वृषका उत्सर्ग करे तो पितरोंको पूर्ण तृप्ति और उत्तम गति प्राप्त हो।' कृत्तिका नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेवाला मानव स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। संतानकी इच्छा रखनेवाला पुरुष रोहिणीमें श्राद्ध करे। मृगशिरामें श्राद्ध करनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है। आर्द्रामें शौर्य और पुनर्वसुमें स्त्रीकी प्राप्ति होती है; पुष्यमें अक्षय धन, आश्लेषामें उत्तम आयु, मघामें संतान और पुष्टि तथा पूर्वाफाल्गुनीमें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। उत्तराफाल्गुनीमें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य संतानवान् और श्रेष्ठ होता है। हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे शास्त्रज्ञानमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है। चित्रामें रूप, तेज और संतति मिलती है। स्वातीमें श्राद्ध करनेसे व्यापारमें लाभ होता है। विशाखा पुत्रकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली है। अनुराधामें श्राद्ध करनेसे चक्रवर्ती-पदकी प्राप्ति होती है। ज्येष्ठामें श्राद्धसे प्रभुत्व प्राप्त होता है। मूलमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष उत्तम आरोग्य लाभ करता है। पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें यशकी प्राप्ति होती है। उत्तराषाढ़ामें श्राद्धसे शोक दूर होता है। श्रवणमें श्राद्धके अनुष्ठानसे शुभ लोक प्राप्त होते हैं। धनिष्ठामें श्राद्धसे अधिक धनका लाभ होता है। अभिजित्में श्राद्धसे वेदोंकी विद्वत्ता प्राप्त होती है। शतभिषामें पितरोंकी पूजा करनेसे वैद्यकके कार्यमें सिद्धि प्राप्त होती है। पूर्वाभाद्रपदामें श्राद्धसे भेड़ और बकरी तथा उत्तराभाद्रपदामें गौएँ प्राप्त होती हैं। रेवतीमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे जस्ता आदि धातुओंकी तथा अश्विनीमें घोड़ोंकी प्राप्ति होती है। भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष उत्तम आयु प्राप्त करता है। तत्त्वज्ञ पुरुष उक्त नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेपर ऐसे ही फलोंके भागी होते हैं। अतः अक्षय फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको कन्याराशिपर सूर्यके रहते उक्त नक्षत्रोंमें काम्य श्राद्धका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। सूर्यके कन्याराशिपर स्थित रहते मनुष्य जिन-जिन कामनाओंका चिन्तन करते हुए श्राद्ध करते हैं, उन सबको प्राप्त कर लेते हैं। जब सूर्य कन्याराशिपर स्थित हों, तब नान्दीमुख पितरोंका भी श्राद्ध करना चाहिये; क्योंकि उस समय सभी पितर पिण्ड पानेकी इच्छा रखते हैं। जो राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका दुर्लभ फल प्राप्त करना चाहता हो, उसे कन्याराशिपर सूर्यके रहते जल, शाक और मूल आदिसे भी पितरोंकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। उत्तराफाल्गुनी और हस्त नक्षत्रोंपर सूर्यदेवके स्थित रहते जो भक्तिपूर्वक पितरोंका पूजन करता है, उसका स्वर्गलोकमें निवास होता है। उस समय यमराजकी आज्ञासे पितरोंकी पुरी तबतक खाली रहती है, जबतक कि सूर्य वृश्चिक राशिपर मौजूद रहते हैं। वृश्चिक बीत जानेपर भी जब कोई श्राद्ध नहीं करता, तब देवताओंसहित पितर मनुष्यको दुःसह शाप देकर खेदपूर्वक लंबी साँसें लेते हुए अपनी

पुरीको लौट जाते हैं। अष्टका[1], मन्वन्तरा[2] तथा अन्वष्ट[3]का तिथियोंको भी श्राद्ध करना चाहिये। वह मातृवर्गसे आरम्भ होता है[4]।

ग्रहण, व्यतीपात, एक राशिपर सूर्य और चन्द्रमाके संगम, जन्मनक्षत्र तथा ग्रहपीड़ाके अवसरपर पार्वण श्राद्ध करनेका विधान है। दोनों अयनोंके आरम्भके दिन, दोनों विषुव[5] योगोंके आनेपर तथा प्रत्येक संक्रान्तिके दिन विधिपूर्वक उत्तम श्राद्ध करना चाहिये। इन दिनोंमें पिण्डदानको छोड़कर शेष सभी श्राद्ध-सम्बन्धी कार्य करने चाहिये। वैशाखकी शुक्ला तृतीया और कार्तिककी शुक्ला नवमीको संक्रान्तिकी विधिसे श्राद्ध करना उचित है। भादोंकी त्रयोदशी और माघकी अमावास्याको खीरसे श्राद्ध करना चाहिये। जब कोई वेदवेत्ता एवं अग्निहोत्री श्रोत्रिय ब्राह्मण घरपर पधारे, तब उस एक ब्राह्मणके द्वारा भी विधिपूर्वक उत्तम श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। जिस दिन साधुपुरुषोंद्वारा प्रशंसित श्राद्धके योग्य कोई वस्तु प्राप्त हो जाय, उस दिन द्विजोंको पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये। माता और पिताकी मृत्युके दिन प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। यदि पिताके भाई अथवा अपने बड़े भाईकी मृत्यु हो गयी हो और उनके कोई पुत्र नहीं हो तो उनके लिये भी निधनतिथिको प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना उचित है। पार्वण श्राद्धमें पहले विश्वेदेवोंका आवाहन और पूजन होता है। किंतु एकोद्दिष्टमें ऐसा नहीं होता। देवकार्यमें दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही निमन्त्रित करे। इसी प्रकार मातामहोंके श्राद्धकार्यमें भी समझना चाहिये।

जो हालका मरा हो, उसके लिये सदा बाहर जलके समीप पृथ्वीपर तिल और कुशसहित पिण्ड और जल देना चाहिये। मृत्युके तीसरे दिन प्रेतका अस्थि-चयन करना उचित है। घरमें किसीकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है।* सूतक निवृत्त हो जानेपर घरमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना बताया गया है। बारहवें दिन, एक मासपर, फिर डेढ़ मासपर तथा उसके बाद प्रतिमास एक वर्षतक श्राद्ध करना चाहिये। वर्ष बीतनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध करना उचित है। सपिण्डीकरण हो जानेपर उसके लिये पार्वण श्राद्धका विधान है। सपिण्डीकरणके बाद मृत व्यक्ति प्रेतभावसे मुक्त होकर पितरोंके स्वरूपको प्राप्त होते हैं। पितर दो प्रकारके हैं—अमूर्त और मूर्तिमान्। नान्दीमुख नामवाले पितर अमूर्त होते हैं और पार्वण श्राद्धके पितर मूर्तिमान् बताये गये हैं। एकोद्दिष्ट श्राद्ध ग्रहण करनेवाले पितरोंकी 'प्रेत' संज्ञा है। इस प्रकार पितरोंके तीन भेद स्वीकार किये गये हैं।

मुनियोंने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! मरे हुए पिता आदिका

---

१. पौष, माघ, फाल्गुन तथा चैत्रके कृष्णपक्षकी अष्टमियोंको अष्टका कहते हैं। उनमें गृह्योक्त अष्टका-कर्म किये जाते हैं। इसीलिये उनका नाम अष्टका है। २. प्राचीन कालका एक प्रकारका उत्सव, जो आषाढ़ शुक्ल दशमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी और भाद्र शुक्ल तृतीयाको होता था। ३. पूर्वोक्त अष्टका तिथियोंके दूसरे दिनकी चारों नवमी तिथियोंको अन्वष्टका कहते हैं। ४. इस श्राद्धको आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं। इसमें पहले माता, पितामही और प्रपितामहीका आवाहन-पूजन आदि होता है। उसके बाद पिता, पितामह, प्रपितामह और मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामहका पूजन आदि कार्य होता है। ५. जिस समय सूर्य विषुव रेखापर पहुँचते और दिन-रात बराबर होते हैं, उसे विषुव कहते हैं। यह समय वर्षमें दो बार आता है।

* दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥

(२२०। ६३)

सपिण्डीकरण श्राद्ध कैसे करना चाहिये? यह हमें विधिपूर्वक बताइये।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! मैं सपिण्डीकरण श्राद्धकी विधि बतलाता हूँ, सुनो। सपिण्डीकरण श्राद्ध विश्वेदेवोंकी पूजासे रहित होता है। इसमें एक ही अर्घ्य और एक ही पवित्रकका विधान है। अग्निकरण और आवाहनकी क्रिया भी इसमें नहीं होती। सपिण्डीकरणमें अपसव्य होकर अयुग्म ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इसमें जो विशेष क्रिया है, उसका वर्णन करता हूँ; एकाग्रचित्त होकर सुनो। सपिण्डीकरणमें तिल, चन्दन और जलसे युक्त चार पात्र होते हैं। उनमेंसे तीन तो पितरोंके लिये रखे और एक प्रेतके लिये। प्रेतके पात्रसे अर्घ्यजल लेकर '**ये समानाः समनसः**०' इत्यादि मन्त्रका जप करते हुए पितरोंके तीनों पात्रोंमें छोड़ना चाहिये। शेष कार्य अन्य श्राद्धोंकी भाँति करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये भी इसी प्रकार एकोद्दिष्टका विधान है। यदि पुत्र न हो तो स्त्रियोंका सपिण्डीकरण नहीं होता। पुरुषोंको उचित है कि वे स्त्रियोंके लिये भी प्रतिवर्ष उनकी मृत्युतिथिको एकोद्दिष्ट श्राद्ध करें। पुत्रके अभावमें सपिण्ड और सपिण्डके अभावमें सहोदक इस विधिको पूर्ण करें। जिसके कोई पुत्र न हो, उसका श्राद्ध उसके दौहित्र कर सकते हैं। पुत्रिका[1]-विधिसे ब्याही हुई कन्याके पुत्र तो अपने नाना आदिका श्राद्ध करनेके अधिकारी हैं ही। जिनकी द्व्यामुष्यायण संज्ञा है, ऐसे पुत्र नाना और बाबा दोनोंका नैमित्तिक श्राद्धोंमें भी विधिपूर्वक पूजन कर सकते हैं। कोई भी न हो तो स्त्रियाँ ही अपने पतियोंका मन्त्रोच्चारण किये बिना श्राद्ध कर सकती हैं। वे भी न हों तो राजा मृतकके सजातीय मनुष्योंद्वारा दाह आदि समस्त क्रियाएँ पूर्ण कराये; क्योंकि राजा सब वर्णोंका बन्धु होता है।

ब्राह्मणो! सपिण्डीकरणके बाद पिताके जो प्रपितामह हैं, वे लेपभागभोजी पितरोंकी श्रेणीमें चले जाते हैं। उन्हें पितृपिण्ड पानेका अधिकार नहीं रहता। उनसे आरम्भ करके चार पीढ़ी ऊपरके पितर, जो अबतक पुत्रके लेपभागका अन्न ग्रहण करते थे, उसके सम्बन्धसे रहित हो जाते हैं। अब उनको लेपभागका अन्न पानेका अधिकार नहीं रहता। वे सम्बन्धहीन अन्नका उपभोग करते हैं। पिता, पितामह और प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंको पिण्डका अधिकारी समझना चाहिये। इनसे भिन्न अर्थात् पितामहके पितामहसे लेकर ऊपरके जो तीन पीढ़ीके पुरुष हैं, वे लेपभागके अधिकारी हैं। इस प्रकार छः ये और सातवाँ यजमान—सब मिलकर सात पुरुषोंका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है—ऐसा मुनियोंका कथन है। यह सम्बन्ध यजमानसे लेकर ऊपरके लेपभागभोजी पितरोंतक माना जाता है। इनसे ऊपरके सभी पितर पूर्वज कहलाते हैं। पूर्वजोंमेंसे जो नरकमें निवास करते हैं, जो पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हैं तथा जो भूत आदिके रूपमें स्थित हैं, उन सबको विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला यजमान तृप्त करता है। जिससे जिसकी तृप्ति होती है, वह बतलाता हूँ; सुनो। मनुष्य पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाचयोनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। स्नानके वस्त्रसे जो जल पृथ्वीपर टपकता है, उससे वृक्षयोनिमें पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। नहानेपर अपने शरीरसे जो जलके कण पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे उन पितरोंकी तृप्ति होती है, जो

१. मनुस्मृतिके अनुसार कन्याका विवाह इस शर्तके साथ भी किया जा सकता है कि उसका पुत्र अपने नानाके श्राद्ध करनेका अधिकारी समझा जाय। विवाहकी यह विधि पुत्रिका-विधि कहलाती है। पुत्रहीन पिता ही पुत्रिका-विधिसे अपनी कन्याका विवाह कर सकता है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र औरस पुत्रकी ही भाँति नानाकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी होता है।

देवभावको प्राप्त हुए हैं। पिण्डोंके उठानेपर जो जलके कण पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। कुलमें जो बालक दाँत निकलनेके पहले दाह आदि कर्मके अनधिकारी रहकर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सम्मार्जनके जलका आहार करते हैं। ब्राह्मणलोग भोजन करके जो हाथ-मुँह धोते हैं और चरणोंका प्रक्षालन करते हैं, उस जलसे अन्यान्य पितरोंकी तृप्ति होती है। ब्राह्मणो! इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंके जो पितर दूसरी-दूसरी योनियोंमें चले गये हैं, वे भी यजमान और ब्राह्मणोंके हाथसे बिखरे हुए अन्न और जलके द्वारा पूर्ण तृप्त होते हैं। मनुष्य अन्यायोपार्जित धनसे जो श्राद्ध करते हैं, उससे चाण्डाल आदि योनियोंमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। इस प्रकार यहाँ श्राद्ध करनेवाले भाई-बन्धुओंके द्वारा जो अन्न और जल पृथ्वीपर डाले जाते हैं, उनके द्वारा बहुत-से पितर तृप्त होते हैं। अतः मनुष्यको उचित है कि वह पितरोंके प्रति भक्ति रखते हुए शाकमात्रके द्वारा भी विधिपूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्ध करनेवाले लोगोंके कुलमें कोई दुःख नहीं भोगता।

श्राद्धका दान संयमी, अग्निहोत्री, शुद्धचरित्र, विद्वान् एवं विशेषतः श्रोत्रिय ब्राह्मणको देना चाहिये। त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, षडङ्गवेत्ता, माता-पिताका भक्त, भानजा, सामवेदका ज्ञाता, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, उपाध्याय, मामा, श्वशुर, साला, सम्बन्धी, मण्डल ब्राह्मणका पाठ करनेवाला, पुराणोंका तत्त्वज्ञ, संकल्पहीन, संतोषी और प्रतिग्रह न लेनेवाला—ये श्राद्धमें सम्मिलित करनेयोग्य पंक्तिपावन ब्राह्मण हैं। ऊपर बताये हुए श्रेष्ठ द्विजोंको देवयज्ञ अथवा श्राद्धमें एक दिन पहले ही निमन्त्रण देना चाहिये। उसी समयसे ब्राह्मणों तथा श्राद्धकर्ताको भी संयमसे रहना चाहिये। जो श्राद्धमें दान देकर अथवा श्राद्धमें भोजन करके मैथुन करता है, उसके पितर एक मासतक वीर्यमें शयन करते हैं। जो स्त्रीसहवास करके श्राद्ध करता अथवा श्राद्धमें भोजन करता है, उसके पितर उसीके वीर्य और मूत्रका एक मासतक आहार करते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुषको एक दिन पहले ही ब्राह्मणोंके पास निमन्त्रण भेजना चाहिये। यदि पहले दिन ब्राह्मण न मिल सकें तो श्राद्धके दिन भी निमन्त्रण किया जा सकता है। परन्तु स्त्री-प्रसङ्गी ब्राह्मणोंको कदापि निमन्त्रित न करे। यदि समयपर भिक्षाके लिये संयमी यति स्वयं पधारे हों तो उन्हें भी नमस्कार आदिके द्वारा प्रसन्न करके संयतचित्तसे अवश्य भोजन कराये। विद्वान् पुरुष श्राद्धमें योगियोंको भी भोजन कराये। क्योंकि पितरोंका आधार योग है, अतः योगियोंका सदा पूजन करना चाहिये। यदि हजारों ब्राह्मणोंमें एक भी योगी हो तो वह जलसे नौकाकी भाँति यजमान और श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंको भी तार देता है। इस विषयमें ब्रह्मवादी विद्वान् पितरोंकी गायी हुई एक गाथाका गान करते हैं। पूर्वकालमें राजा पुरूरवाके पितरोंने उसका गान किया था। वह गाथा इस प्रकार है—'हमारी वंश-परम्परामें कब किसीको ऐसा श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त होगा, जो योगियोंको भोजन करानेसे बचे हुए अन्नको लेकर पृथ्वीपर हमारे लिये पिण्ड देगा? अथवा गयामें जाकर पिण्डदान करेगा? या हमारी तृप्तिके लिये सामयिक शाक, तिल, घी और खिचड़ी देगा? अथवा त्रयोदशी तिथि और मघा नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करेगा और दक्षिणायनमें हमारे लिये मधु और घीसे मिली हुई खीर देगा?'

इसलिये सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि तथा पापसे मुक्ति चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह भक्तिपूर्वक पितरोंकी पूजा करे। श्राद्धमें तृप्त किये हुए पितर मनुष्योंके लिये वसु,

रुद्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह और तारोंकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हैं। इतना ही नहीं, वे आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य भी देते हैं। पितरोंको पूर्वाह्णकी अपेक्षा अपराह्ण अधिक प्रिय है। घरपर आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करके उन्हें पवित्रयुक्त हाथसे आचमन करानेके पश्चात् आसनोंपर बिठाये; फिर विधिपूर्वक श्राद्ध करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और प्रिय वचन कहकर विदा करे। दरवाजेतक उन्हें पहुँचानेके लिये पीछे-पीछे जाय और उनकी आज्ञा लेकर लौटे। तदनन्तर नित्य-क्रिया करे और अतिथियोंको भोजन कराये। किन्हीं-किन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंका विचार है कि यह नित्यकर्म भी पितरोंके ही उद्देश्यसे होता है। दूसरे लोगोंका कहना है कि इससे पितरोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। शेष कार्य सदाकी भाँति करे। किन्हीं-किन्हींका मत है कि पितरोंके लिये पृथक् पाक बनाकर श्राद्ध करना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि ऐसा न करके पहले बने हुए पाकसे ही अन्न लेकर सब कार्य पूर्ववत् करना चाहिये।

तदनन्तर श्राद्धकर्ता मनुष्य अपने भृत्य आदिके साथ अवशिष्ट अन्न भोजन करे। धर्मज्ञ पुरुषको इसी प्रकार एकाग्रचित्त होकर पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये और जिस प्रकार ब्राह्मणोंको संतोष हो, वैसी चेष्टा करनी चाहिये। अब मैं श्राद्धमें त्याग देने योग्य अधम ब्राह्मणोंका वर्णन करता हूँ। मित्रद्रोही, खराब नखोंवाला, नपुंसक, क्षयका रोगी, कोढ़ी, व्यापारी, काले दाँतोंवाला, गंजा, काना, अंधा, बहरा, जड, गूँगा, पङ्गु, हिजड़ा, खराब चमड़ेवाला, हीनाङ्ग, लाल आँखोंवाला, कुबड़ा, बौना, विकराल, आलसी, मित्रके प्रति शत्रुभाव रखनेवाला, कलङ्कित कुलमें उत्पन्न, पशु पालन करनेवाला, अच्छी आकृतिसे हीन, परिवित्ति (छोटे भाईके विवाहित होनेपर भी स्वयं अविवाहित रहनेवाला), परिवेत्ता (बड़े भाईके ब्याहसे पहले ही विवाह कर लेनेवाला), परिवेदनिका (बड़ी बहिनके विवाहके पहले ही ब्याह करनेवाली स्त्री)-का पुत्र, शूद्रजातीय स्त्रीका स्वामी और उसका पुत्र—ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध-भोजनके अधिकारी नहीं हैं। शूद्रीके पुत्रका संस्कार करानेवाला, अविवाहित, जो दूसरेकी पत्नी रह चुकी हो, ऐसी स्त्रीका पति, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, वैसे गुरुसे पढ़नेवाला, सूतकके अन्नपर जीविका-निर्वाह करनेवाला, सोमरसका विक्रय करनेवाला, चोर, पतित, ब्याज लेकर खानेवाला, शठ, चुगलखोर, वेदोंका त्याग करनेवाला, अग्निहोत्रका त्यागी, राजाका पुरोहित, सेवक, विद्याहीन, द्वेष रखनेवाला, वृद्ध पुरुषोंसे शत्रुता रखनेवाला, दुर्धर्ष, क्रूर, मूढ़, मन्दिरकी आयपर जीनेवाला, नक्षत्र बतानेवाला, बाण बनानेवाला और यज्ञके अनधिकारी पुरुषोंसे यज्ञ करानेवाला—ये तथा अन्य जितने भी निन्दित और अधम ब्राह्मण हैं, उन्हें श्राद्धमें सम्मिलित न करे; क्योंकि वे पंक्तिको दूषित करनेवाले हैं। जहाँ दुष्ट पुरुषोंका आदर और साधु पुरुषोंकी अवहेलना होती हो, वहाँ देवताओंका दिया हुआ भयंकर दण्ड तत्काल ऊपर पड़ता है। जो शास्त्र-विधिकी अवहेलना करके मूर्खको भोजन कराता है, वह दाता प्राचीन धर्मका त्याग करनेके कारण नष्ट हो जाता है। जो अपने आश्रयमें रहनेवाले ब्राह्मणका परित्याग करके दूसरेको बुलाकर भोजन कराता है, वह दाता उस ब्राह्मणके शोकोच्छ्वासकी आगमें दग्ध होकर नष्ट हो जाता है।

वस्त्रके बिना कोई क्रिया, यज्ञ, वेदाध्ययन और तपस्या नहीं होती। अतः श्राद्धकालमें वस्त्रका दान विशेष रूपसे करना चाहिये।* जो रेशमी, सूती और बिना कटा हुआ वस्त्र श्राद्धमें देता है,

* वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च। तस्माद्वासांसि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः॥
(२२०। १३९)

वह उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है। जैसे बहुत-सी गौओंमें बछड़ा अपनी माताके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार श्राद्धमें ब्राह्मणोंका भोजन किया हुआ अन्न जीवके पास, वह जहाँ भी रहता है, पहुँच जाता है। नाम, गोत्र और मन्त्र—ये अन्नको वहाँ ढोकर नहीं ले जाते, अपितु मृत्युको प्राप्त हुए जीवोंतकको तृप्ति पहुँचती है—वे श्राद्धसे तृप्ति लाभ करते हैं। '**देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः।**' * इस मन्त्रका श्राद्धके आरम्भ और अन्तमें तीन बार जप करे। पिण्डदान करते समय भी एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना चाहिये। इससे पितर शीघ्र ही आ जाते हैं और राक्षस भाग खड़े होते हैं तथा तीनों लोकोंके पितर तृप्त होते हैं। यह मन्त्र पितरोंको तारनेवाला है। श्राद्धमें रेशम, सन अथवा कपासका नया सूत देना चाहिये। ऊन अथवा पाटका सूत्र वर्जित है। विद्वान् पुरुष जिसमें कोर न हो, ऐसा वस्त्र फटा न होनेपर भी श्राद्धमें न दे; क्योंकि उससे पितरोंको तृप्ति नहीं होती और दाताके लिये भी अन्यायका फल प्राप्त होता है। पिता आदिमेंसे जो जीवित हो, उसको पिण्ड नहीं देना चाहिये, अपितु उसे विधिपूर्वक उत्तम अन्न भोजन कराना चाहिये। भोगकी इच्छा रखनेवाला पुरुष श्राद्धके पश्चात् पिण्डको अग्निमें डाल दे और जिसे पुत्रकी अभिलाषा हो, वह मध्यम अर्थात् पितामहके पिण्डको मन्त्रोच्चारणपूर्वक अपनी पत्नीके हाथमें दे दे और पत्नी उसे खा ले। जो उत्तम कान्तिकी इच्छा रखनेवाला हो, वह श्राद्धके अनन्तर सब पिण्ड गौओंको खिला दे। बुद्धि, यश और कीर्ति चाहनेवाला पुरुष पिण्डोंको जलमें डाल दे। दीर्घ आयुकी अभिलाषावाला पुरुष उसे कौओंको दे दे। कुमारशालाकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य वह पिण्ड मुर्गोंको दे दे। कुछ ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि पहले ब्राह्मणोंसे 'पिण्ड उठाओ' ऐसी आज्ञा ले ले; उसके बाद पिण्डोंको उठाये। अतः ऋषियोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार श्राद्धका अनुष्ठान करे; अन्यथा दोष लगता है और पितरोंको भी नहीं मिलता।

जौ, धान, तिल, गेहूँ, मूँग, सावाँ, सरसोंका तेल, तिन्नीका चावल और कँगनी आदिसे पितरोंको तृप्त करे। आम, अमड़ा, बेल, अनार, बिजौरा, पुराना आँवला, खीर, नारियल, फालसा, नारंगी, खजूर, अंगूर, नीलकैथ, परवल, चिरौंजी, बेर, जंगली बेर, इन्द्रजौ और भतुआ—इन फलोंको श्राद्धमें यत्नपूर्वक लेना चाहिये। गुड़, शक्कर, खाँड़, गायका दूध, दही, घी, तिलका तेल, सेंधा तथा समुद्र और झीलसे उत्पन्न होनेवाला नमक, पवित्र सुगन्ध, चन्दन, अरगजा तथा केसर भी पितरोंको निवेदन करे। सामयिक शाक, चौलाई, बथुआ, मूली तथा जंगली साग श्राद्धमें देनेयोग्य है। चम्पा, चमेली, बेला, लोध, अशोक, तुलसी, तिलक, शतपत्रा, सुगन्धित शेफालिका, कुब्जक, तगर, बनकेवड़ा और जूही आदि पुष्प श्राद्धमें अर्पण करने योग्य हैं। कमल, कुमुद, पद्म, पुण्डरीक, इन्दीवर, कोकनद और कह्लार भी पितरोंको निवेदन करे। गूगल, चन्दन, श्रीवास (बेल), अगर तथा ऋषिगुग्गुल—ये पितरोंके योग्य धूप हैं। चना और मसूर श्राद्धमें वर्जित हैं। स्त्री, ऊँटनी और भेड़के दूध, दही और घीका परित्याग करे। ताड़, वरुमा, काँकोल, बहुपत्रा (शिवलिंगी), अर्जुनी-फल, नीबू, रक्तबिल्व और सालके फलका भी श्राद्धमें त्याग करे। पितृकर्ममें कस्तूरी, गोरोचन, पद्मचन्दन, कालेयक (काली अगर), हींग, अजवायन और लोहबानकी गन्ध वर्जित है। पालकका साग, बड़ी इलायची, चिरायता, शलजम, गाजर, अमलोनीका साग, चूकाका साग, चनेकी पत्तीका साग, पहाड़ी कन्द, सोवा, सौंफ, पटुआ साग, गन्धशूकर (वाराहीकन्द), हलभृत्य,

* देवता, पितर, महायोगी, स्वाहा और स्वधाको सदा बारंबार नमस्कार है।

सरसों, प्याज, लहसुन, शकरकन्द, भैंसाकंद, जिमीकंद, सुथनी, लौकी, पेहँटुल, कुम्हड़ा, मिर्च, सोंठ, पीपल, बैंगन, केवाँच, बहेड़ा, कच्चे गेहूँका अर्क, सत्तू, बासी अन्न, हींग, कचनार और सहिजन—इन सब वस्तुओंका श्राद्धमें उपयोग न करे। जो अत्यन्त खट्टा, अधिक चिकना, सूक्ष्म, बहुत देरका बना हुआ और नीरस हो तथा जिसमेंसे मदिराकी-सी गन्ध आती हो, ऐसे पदार्थोंको श्राद्धमें न दे। चिरायता, नीम, राई, धनिया, तरबूज और अमलबेद भी श्राद्धमें वर्जित हैं। अनार, छोटी इलायची, नारंगी, अदरख, इमली, अमड़ा और नैपाली धनियाका श्राद्धमें उपयोग करना चाहिये। खीर, सेमर, मूँग, लड्डू, पानक, रसाल (आम) और गोदुग्धको भी श्राद्धमें भक्तिपूर्वक देना चाहिये। जो भी स्वादिष्ट एवं स्निग्ध खाद्य पदार्थ हों, उनका श्राद्धमें उपयोग करना चाहिये। जिनमें खटाई और कडुआपन कम हो, ऐसी ही वस्तुओंका उपयोग करना उचित है। अधिक खट्टे, अधिक नमकीन और अधिक कड़वे पदार्थ असुरोंके भोजन हैं; अतः उनको दूरसे ही त्याग दे। मीठे, स्नेहयुक्त, थोड़े चरपरे और थोड़े खट्टे स्वादिष्ट पदार्थ देवताओंके भोजन हैं। अतः उन्हींका श्राद्धमें उपयोग करे। श्राद्धमें निषिद्ध वस्तु भोजन करानेवाला मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। अभक्ष्य वस्तुएँ ब्राह्मणोंको कदापि न दे। बर्रेकी पत्तीका साग, जँभीरी नीबू, सहिजन, कचनार, खली, मसूर, गाजर, सनकी पत्तीका साग, कोदो, तालमखाना, चूकाका साग, कम्बुक, पदमकाठका फल, लौकी, ताड़ी और ताड़ वृक्षके फलका श्राद्धमें भोजन करानेसे मनुष्य नरकमें पड़ता है। जो पितरोंके लिये उक्त निषिद्ध वस्तुएँ अर्पित करता है, वह उन पितरोंके साथ ही पूयवह नामक नरकमें गिरता है। यदि अनजानमें या प्रमादवश एक बार इन निषिद्ध वस्तुओंका भक्षण कर ले तो उसके दोषकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। सात दिनोंतक क्रमशः फल, मूल, दूध, दही, तक्र, गोमूत्र और जौकी लप्सी खाकर रहे। इस प्रकार ब्राह्मणों और विशेषतः भगवान् विष्णुके भक्तोंको उचित है कि वे एक बार भी निषिद्ध आचरण कर लेनेपर इस प्रकार शरीरकी शुद्धि करें। ऊपर बतायी हुई निषिद्ध वस्तुओंका अवश्य त्याग करे। अपनी शक्तिके अनुसार श्राद्धकी सामग्री एकत्रित करके विधिपूर्वक श्राद्ध करना सबका कर्तव्य है। जो अपने वैभवके अनुसार इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह मानव ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्त कर देता है।

मुनियोंने पूछा—ब्रह्मन्! जिसके पिता तो जीवित हों, किंतु पितामह और प्रपितामहकी मृत्यु हो गयी हो, उसे किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये' यह विस्तारपूर्वक बतलाइये।*

व्यासजी बोले—पिता जिनके लिये श्राद्ध करते हैं, उनके लिये स्वयं पुत्र भी श्राद्ध कर सकता है। ऐसा करनेसे लौकिक और वैदिक धर्मकी हानि नहीं होती।†

मुनियोंने पूछा—विप्रवर! जिसके पिताकी मृत्यु हो गयी हो और पितामह जीवित हों, उसे किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये? यह बतानेकी कृपा करें। ‡

---

* पिता जीवति यस्याथ मृतौ द्वौ पितरौ पितुः। कथं श्राद्धं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरशो वद॥ (२२०। २०५)

† यस्मै दद्यात्पिता श्राद्धं तस्मै दद्यात्सुतः स्वयम्। एवं न हीयते धर्मो लौकिको वैदिकस्तथा॥ (२२०। २०६)

‡ मृतः पिता जीवति च यस्य ब्रह्मन् पितामहः। स हि श्राद्धं कथं कुर्यादेतत्त्वं वक्तुमर्हसि॥ (२२०। २०७)

व्यासजी बोले—पिताको तो पिण्ड दे, पितामहको प्रत्यक्ष भोजन कराये और प्रपितामहको भी पिण्ड दे दे। यही शास्त्रोंका निर्णय है। मरे हुएको पिण्ड देने और जीवितको भोजन करानेका विधान है। उस अवस्थामें सपिण्डीकरण और पार्वणश्राद्ध नहीं हो सकता।*

जो मनुष्य श्राद्ध-सम्बन्धी विधिका पालन करता है, वह आयु, धन और पुत्रोंके साथ ही वृद्धिको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो श्राद्धके समय इस पितृमेधविषयक अध्यायका पाठ करता है, उसके दिये हुए अन्नको पितरलोग तीन युगोंतक खाते रहते हैं। इस प्रकार मैंने यहाँ श्राद्ध-कल्पका वर्णन किया। यह पापोंका नाश और पुण्योंकी वृद्धि करनेवाला है। श्राद्धके अवसरपर मनुष्यको संयतचित्त होकर इसका श्रवण और पाठ करना चाहिये।

गृहस्थोचित सदाचार तथा कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! इस प्रकार गृहस्थ पुरुष हव्य, कव्य और अन्नसे देवता, पितर तथा अतिथियोंका पूजन करे। सम्पूर्ण भूत, भरण-पोषणके योग्य कुटुम्बीजन, पशु, पक्षी, चींटियाँ, संन्यासी, भिक्षुक, पथिक तथा सदाचारी ब्राह्मण आदि जो भी उपस्थित हों, गृहस्थ पुरुष अपने घरमें सबको संतुष्ट करे। जो नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंका उल्लङ्घन करता है, वह पापभोजी है।

मुनि बोले—महर्षे! आपने पुरुषोंके नित्य, नैमित्तिक और काम्य—त्रिविध कर्मोंका वर्णन किया; अब हम सदाचारका वर्णन सुनना चाहते हैं, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य इस लोक और परलोकमें भी सुखका भागी हो।

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो! गृहस्थ पुरुषको सदा ही सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। आचारहीन मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है न परलोकमें। जो सदाचारका उल्लङ्घन करके मनमाना बर्ताव करता है, उस पुरुषका कल्याण यज्ञ, दान और तपस्यासे भी नहीं होता। दुराचारी पुरुषको इस लोकमें बड़ी आयु नहीं मिलती, अतः उत्तम आचाररूप धर्मका सदा पालन करना चाहिये। सदाचार बुरे लक्षणोंका नाश करता है। ब्राह्मणो! अब मैं सदाचारका स्वरूप बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर उसका पालन करना चाहिये। गृहस्थको धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके साधनका यत्न करना चाहिये। उनके सिद्ध होनेपर उसे इस लोक और परलोकमें सिद्धि प्राप्त होती है। मनको वशमें करके अपनी आयका एक चौथाई भाग पारलौकिक कल्याणके लिये संगृहीत करे। आधे भागसे नित्य-नैमित्तिक कार्योंका निर्वाह करते हुए अपना भरण-पोषण करे तथा एक चौथाई भाग अपने लिये मूल पूँजीके रूपमें रखकर उसे बढ़ाये। ब्राह्मणो! ऐसा करनेसे धन सफल होता है। इसी प्रकार पापकी निवृत्ति तथा पारलौकिक उन्नतिके लिये विद्वान् पुरुष धर्मका अनुष्ठान करे। वह इस लोकमें भी फल देनेवाला होता है। ब्राह्ममुहूर्तमें जागे। जागकर धर्म और अर्थका चिन्तन करे। इसके बाद शय्या त्याग कर नित्यकर्मसे निवृत्त हो, स्नान आदिसे पवित्र होकर मनको संयममें रखते हुए पूर्वाभिमुख बैठे और आचमन करके

---

* पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम्। प्रपितामहस्य पिण्डं वै ह्ययं शास्त्रेषु निर्णयः॥
मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत्। सपिण्डीकरणं नास्ति न च पार्वणमिष्यते॥
(२२०। २०८-२०९)

संध्योपासन करे। प्रात:कालकी संध्या उस समय आरम्भ करे, जब तारे दिखायी देते हों। इसी प्रकार सायंकालकी संध्योपासना सूर्यास्तसे पहले ही विधिपूर्वक आरम्भ करे। आपत्तिकालके सिवा और किसी समय उसका त्याग न करे। द्विजो! बुरी-बुरी बातें बकना, झूठ बोलना, कठोर वचन मुँहसे निकालना, असत् शास्त्र पढ़ना, नास्तिकवादको अपनाना तथा दुष्ट पुरुषोंकी सेवा करना अवश्य छोड़ देना चाहिये।* मनको वशमें रखते हुए प्रतिदिन सायंकाल और प्रात:काल हवन करे। उदय और अस्तके समय सूर्यमण्डलका दर्शन न करे। बाल सँवारना, दर्पण देखना, दाँतन करना, आँजन लगाना और देवताओंका तर्पण करना—यह सब कार्य पूर्वाह्णकालमें ही करना चाहिये।

ग्राम, निवासस्थान, तीर्थ और क्षेत्रोंके मार्गमें, जोते हुए खेतमें तथा गोशालामें मल-मूत्र न करे। परायी स्त्रीको नंगी अवस्थामें न देखे। अपनी विष्ठापर दृष्टिपात न करे। रजस्वला स्त्रीका दर्शन, स्पर्श तथा उसके साथ भाषण भी वर्जित है। पानीमें मल-मूत्रका त्याग अथवा मैथुन न करे। बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र, केश, राख, खोपड़ी, भूसी, कोयले, सड़ी-गली वस्तुएँ, रस्सी तथा केवल पृथ्वीपर और मार्गमें कभी न बैठे। गृहस्थ मनुष्य अपने वैभवके अनुसार देवता, पितर, मनुष्य तथा अन्यान्य प्राणियोंका पूजन करके पीछे भोजन करे। भलीभाँति आचमन करके हाथ-पैर धोकर पवित्र हो पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके भोजनके लिये आसनपर बैठे और हाथोंको घुटनोंके भीतर करके मौनभावसे भोजन करे। भोजनके समय मनको अन्यत्र न ले जाय। यदि अन्न किसी प्रकारकी हानि करनेवाला हो तो उस हानिको ही बताये, उसके सिवा अन्नके और किसी दोषकी चर्चा न करे। भोजनके साथ पृथक् नमक लेकर न खाय। जूठा अन्न खाना वर्जित है। मनुष्यको चाहिये कि मनको वशमें रखे और खड़े होकर या चलते-चलते मल-मूत्रका त्याग, आचमन तथा किसी वस्तुका भक्षण न करे। जूठे मुँह वार्तालाप न करे तथा उस अवस्थामें स्वाध्याय भी वर्जित है। जूठी अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी ओर जानबूझकर न देखे। दूसरेके आसन, शय्या और बर्तनका भी स्पर्श न करे।

गुरुजनोंके आनेपर उन्हें बैठनेको आसन दे। उठकर प्रणाम आदिके द्वारा उनका आदर-सत्कार करे। उनके अनुकूल वार्तालाप करे। जाते समय उनके पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर पहुँचाये। उनके प्रतिकूल कोई बर्ताव न करे। एक वस्त्र धारण करके भोजन और देवपूजन न करे। बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंसे बोझ न ढुलाये। आगमें मूत्र त्याग न करे। नग्न होकर कभी स्नान और शयन न करे। दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये। बिना कारण बार-बार सिरके ऊपरसे स्नान न करे। सिरसे स्नान कर लेनेपर किसी भी अङ्गमें तेल न लगाये। सब अनध्यायोंके दिन स्वाध्याय बंद रखे। ब्राह्मण, अग्नि, गौ तथा सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब न करे। दिनमें उत्तरकी ओर और रातमें दक्षिणकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे। जहाँ ऐसा करनेमें कोई बाधा हो, वहाँ इच्छानुसार करे। गुरुके दुष्कर्मकी चर्चा न करे। यदि वे क्रुद्ध हों तो उन्हें विनयपूर्वक प्रसन्न करे। दूसरे लोग भी यदि गुरुकी निन्दा करते हों तो उसे न सुने। ब्राह्मण, राजा, दु:खसे आतुर मनुष्य, विद्यावृद्ध पुरुष, गर्भिणी स्त्री, रोगसे व्याकुल मनुष्य, गूँगा, अंधा, बहरा, मत्त, उन्मत्त, व्यभिचारिणी स्त्री, उपकारी, बालक और पतित—ये यदि सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे हटकर

---

* पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्। उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि॥
असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत्। असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च वै द्विजा:॥
(२२१। १८-१९)

इनको जानेके लिये मार्ग देना चाहिये। विद्वान् पुरुष देवालय, चैत्यवृक्ष, चौराहा, विद्यावृद्ध पुरुष और गुरु—इनको दाहिने करके चले। दूसरोंके धारण किये हुए जूते, वस्त्र और माला आदि स्वयं न पहने। चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा तथा पर्वके दिन तैलाभ्यङ्ग एवं स्त्री-सहवास न करे। बुद्धिमान् मनुष्य बाँहों और पिंडलियोंको ऊपर उठाकर न खड़ा हो तथा पैरोंको भी न हिलाये। पैरसे पैरको न दबाये। किसीको चुभती हुई बात न कहे। निन्दा और चुगली छोड़ दे। दम्भ, अभिमान और तीखे व्यवहारका त्याग करे। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, हीनाङ्ग और निर्धन मनुष्योंकी खिल्ली न उड़ाये। दूसरेको दण्ड न दे, केवल पुत्र और शिष्यको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे दण्ड दिया जा सकता है। आसनको पैरसे खींचकर न बैठे। सायंकाल और प्रातःकाल पहले अतिथिका सत्कार करके पीछे स्वयं भोजन करे।

पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके ही दाँतन करे। दाँतन करते समय मौन रहे। दाँतनके लिये निषिद्ध वृक्ष एवं लताओंका परित्याग करे। उत्तर और पश्चिमकी ओर सिर करके कभी न सोये। दक्षिण या पूर्व दिशाकी ओर ही मस्तक करके सोना चाहिये। जहाँसे दुर्गन्ध आती हो, ऐसे जलमें तथा रात्रिकालमें स्नान न करे। ग्रहणके समय रात्रिमें भी स्नान करना बहुत उत्तम है। इसके सिवा अन्य समयमें दिनमें ही स्नानका विधान है। वस्त्रके छोरसे अथवा वस्त्र हाथमें लेकर उससे शरीरको न मले। बालों और वस्त्रोंको न झटकारे। विद्वान् पुरुष स्नान किये बिना कभी चन्दन न लगाये। एक-दूसरेके वस्त्र और आभूषणोंको अदल-बदलकर न पहने। जिसमें कोर न हो और जो बहुत फट गया हो, ऐसा वस्त्र न पहने। जिसमें कीड़े अथवा बाल पड़े हों, जिसे कुत्तेने देखा अथवा चाट लिया हो अथवा जो सारभाग निकाल लेनेके कारण दूषित हो गया हो, ऐसे अन्नको कभी न खाय। भोजनके साथ अलग नमक रखकर न खाय। बहुत देरके बने हुए सूखे और बासी अन्नको त्याग दे। पिट्ठी, साग, ईखके रस और दूधकी बनी हुई वस्तुएँ भी यदि बहुत दिनोंकी हों तो उन्हें न खाय। सूर्यके उदय और अस्तके समय शयन न करे। बिना नहाये, बिना बैठे, अन्यमनस्क होकर, शय्यापर बैठकर या सोकर, केवल पृथ्वीपर बैठकर, बोलते हुए तथा भृत्यवर्गको दिये बिना कदापि भोजन न करे। मनुष्य स्नान करके सबेरे और शाम दो समय विधिपूर्वक भोजन करे।

विद्वान् पुरुषको कभी परायी स्त्रीके साथ समागम नहीं करना चाहिये। परस्त्रीसंगम मनुष्योंके इष्ट, पूर्त और आयुका नाश करनेवाला है। इस संसारमें परस्त्री-गमनके समान पुरुषकी आयुका विघातक कार्य दूसरा कोई नहीं है।* देवपूजा, अग्निहोत्र, पितरोंका श्राद्ध, गुरुजनोंको प्रणाम तथा भोजन भलीभाँति आचमन करके करना चाहिये। स्वच्छ, फेनरहित, दुर्गन्धशून्य और पवित्र जल लेकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके आचमन करना चाहिये। जलके भीतरकी, घरकी, बाँबीकी, चूहेके बिलकी और शौचसे बची हुई—ये पाँच प्रकारकी मिट्टियाँ त्याग देने योग्य हैं। हाथ-पैर धोकर एकाग्रचित्तसे मार्जन करके घुटनोंको समेटकर तीन या चार बार आचमन करे; फिर दो बार ओठ पोंछकर आँख, कान, मुख, नासिका तथा मस्तकका स्पर्श करे। इस प्रकार जलसे भलीभाँति आचमन करके पवित्र हो देवपूजन तथा श्राद्ध आदिकी क्रिया करनी चाहिये। छींकने, चाटने, वमन करने, थूकने

* परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता। इष्टापूर्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम्॥
न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते। यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्शनम्॥
(१२१। ६०—६२)

तथा अस्पृश्यका स्पर्श करनेपर आचमन, सूर्यका दर्शन अथवा दाहिने कानका स्पर्श करना चाहिये। इनमें पहलेके अभावमें दूसरा उपाय करना चाहिये। पहले उपायके सम्भव होनेपर उपायान्तरका अवलम्बन अभीष्ट नहीं।

दाँत न कटकटाये। अपने शरीरपर ताल न दे। दोनों संध्याओंके समय अध्ययन, भोजन और शयनका त्याग करे। सन्ध्याकालमें मैथुन और रास्ता चलना भी मना है। पूर्वाह्णमें देवताओंका, मध्याह्नमें मनुष्योंका तथा अपराह्णकालमें पितरोंका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। देवकार्य या पितृकार्यमें सिरसे स्नान करके प्रवृत्त होना उचित है। पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके क्षौर कराये। उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेपर भी जो कन्या किसी अङ्गसे हीन या रोगिणी हो, उसके साथ विवाह न करे। ईर्ष्याका परित्याग करे। दिनमें शयन अथवा मैथुन न करे। दूसरोंको कष्ट देनेवाला कार्य न करे। कभी किसी भी जीवको पीड़ा न दे। रजस्वला स्त्री चार रातोंतक सभी वर्णके पुरुषोंके लिये त्याज्य है। यदि कन्याका जन्म अभीष्ट न हो तो उसे रोकनेके लिये पाँचवीं रातमें भी स्त्रीसहवास न करे। छठी रात आनेपर स्त्रीके पास जाय, क्योंकि युग्म रात्रियाँ ही इसके लिये श्रेष्ठ हैं। युग्म रात्रियोंमें स्त्रीसहवास करनेसे पुत्र होता है और अयुग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे कन्या उत्पन्न होती है। पर्व आदिके अवसरपर मैथुन करनेसे विधर्मी संतान होती है और संध्याकालमें गर्भाधान करनेसे नपुंसक उत्पन्न होते हैं। विद्वान् पुरुष क्षौरकर्ममें रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी) तिथियोंका परित्याग करे। विनयरहित उद्दण्ड पुरुषोंकी बात कभी न सुने। जो अपनेसे नीचा हो, उसे आदरपूर्वक ऊँचा आसन न दे। हजामत बनवाने, वमन होने, स्त्री-प्रसङ्ग करने तथा श्मशानभूमिमें जानेपर वस्त्रसहित स्नान करे। देवता, वेद, द्विज, साधु, सच्चे महात्मा, गुरु, पतिव्रता, वेद, यज्ञ तथा तपस्वीकी निन्दा और परिहास न करे। सदा माङ्गलिक वेष धारण किये रहे। कभी भी अमङ्गलमय वेष न धारण करे। स्वच्छ वस्त्र पहने और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। उद्धत, उन्मत्त, मूढ़, अविनीत, शीलहीन, अवस्था और जातिसे दूषित, अधिक अपव्ययी, वैरी, कार्यमें असमर्थ, निन्दित, धूर्तोंका संग करनेवाले, निर्धन, विवाद करनेवाले तथा अन्य अधम पुरुषोंके साथ कभी मित्रता न करे। सुहृद्, यज्ञदीक्षित, राजा, स्नातक तथा श्वशुर—इनके साथ मैत्रीका भाव रखे और जब ये घरपर पधारें तो उठकर खड़ा हो जाय; साथ ही अपने वैभवके अनुसार इनका पूजन करे। प्रतिवर्ष अपने घर आये हुए ब्राह्मणोंका वैभवके अनुसार स्वागत-सत्कार करे।

अपने घरमें यथास्थान देवताओंका भलीभाँति पूजन करके क्रमशः अग्निमें आहुति दे। पहली आहुति ब्रह्माको, दूसरी प्रजापतिको, तीसरी गृह्याओंको, चौथी कश्यपको तथा पाँचवीं अनुमतिको दे। तत्पश्चात् बलिवैश्वदेव करे। देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् स्थानका विभाग करके उनके लिये बलि अर्पण करे। उसका क्रम इस प्रकार है। एक पात्रमें पहले पर्जन्य, जल और पृथ्वीको तीन बलियाँ दे; फिर पूर्व आदि प्रत्येक दिशामें वायुको बलि देकर क्रमशः उन-उन दिशाओंके नामसे भी बलि समर्पित करे। तत्पश्चात् मध्यमें क्रमशः ब्रह्मा, अन्तरिक्ष और सूर्यको बलि दे। उनके उत्तरभागमें विश्वेदेवों और विश्वभूतोंको बलि दे फिर उनके भी उत्तरभागमें उषा और भूतपतिको बलि समर्पित करे। तदनन्तर '**पितृभ्यः स्वधा नमः**' यों कहकर दक्षिण दिशामें अपसव्य होकर पितरोंके लिये बलि दे और वायव्य दिशामें अन्नका शेष भाग तथा जल लेकर '**यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनम्**' यह मन्त्र पढ़कर उसे विधिपूर्वक छोड़ दे। फिर देवताओं और ब्राह्मणोंको नमस्कार करे। दाहिने हाथमें अँगूठेके उत्तर ओर जो एक रेखा होती है, वह ब्राह्मतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है; उसीसे आचमन किया जाता है। तर्जनी और

अँगूठेके बीचका भाग पितृतीर्थ कहलाता है। नान्दीमुख पितरोंको छोड़कर अन्य सब पितरोंको उसी तीर्थसे जल आदि देना चाहिये। अँगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ है। उसीसे देवकार्य करनेका विधान है। कनिष्ठिकाके मूलभागमें कायतीर्थ (प्रजापति-तीर्थ) है। उससे प्रजापतिका कार्य किया जाता है। इस प्रकार इन तीर्थोंसे सदा देवताओं और पितरोंके कार्य करने चाहिये, अन्य तीर्थोंसे कदापि नहीं। ब्राह्मतीर्थसे आचमन उत्तम माना गया है। पितरोंका श्राद्ध और तर्पण पितृतीर्थसे, देवताओंका यज्ञ-यागादि देवतीर्थसे और प्रजापतिका कार्य कायतीर्थसे करना श्रेष्ठ बताया गया है। नान्दीमुख नामवाले पितरोंके लिये पिण्डदान और तर्पण आदि कार्य प्राजापत्यतीर्थसे करने चाहिये।

विद्वान् पुरुष एक साथ जल और अग्नि न ले। गुरु, देवता, पिता तथा ब्राह्मणोंकी ओर पैर न फैलाये। बछड़ेको दूध पिलाती हुई गायको न छेड़े। अञ्जलिसे पानी न पिये। शौचके समय विलम्ब न करे। मुखसे आग न फूँके। ब्राह्मणो! जहाँ ऋण देनेवाला धनी, चिकित्सा करनेवाला वैद्य, श्रोत्रिय ब्राह्मण तथा जलपूर्ण नदी—ये चार न हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये। जहाँ शत्रुविजयी बलवान् और धर्मपरायण राजा हो, वहीं विद्वान् पुरुषको सदा निवास करना चाहिये। दुष्ट राजाके राज्यमें कहाँ सुख है।* जहाँ पुरवासी परस्पर संगठित और न्यायानुकूल बर्ताव करनेवाले हों तथा सब लोग शान्त एवं ईर्ष्यारहित हों, वहाँका निवास भविष्यमें सुख देनेवाला होता है। जिस राष्ट्रमें किसान बहुत हों, परंतु वे बहुत घमंडी न हों तथा जहाँ सब तरहके अन्न पैदा होते हों, वहीं बुद्धिमान् पुरुषको निवास करना चाहिये। ब्राह्मणो! जहाँ अपनेको जीतनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य, पहलेका शत्रु और सदा उत्सवमें ही मग्न रहनेवाले लोग—ये तीन सदा मौजूद हों, वहाँ कभी निवास नहीं करना चाहिये। जिस स्थानपर अच्छे स्वभाववाले पड़ोसी हों, दुर्धर्ष राजा हो और सदा खेती उपजानेवाली भूमि हो, वहीं विद्वान् पुरुषको रहना उचित है। विप्रवरो! इस प्रकार मैंने तुमलोगोंके हितके लिये ये सब बातें बतायी हैं।

अब मैं भक्ष्य और भोज्यकी विधिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें बतलाऊँगा। घी अथवा तेलमें पका हुआ अन्न बहुत देरका बना हुआ अथवा बासी भी हो तो वह भोजन करने योग्य होता है। गेहूँ, जौ तथा गोरसकी बनी हुई वस्तुएँ तेल, घीमें न बनी हों, तब भी वे पूर्ववत् ग्रहण करने योग्य हैं। शङ्ख, पत्थर, सोना, चाँदी, रस्सी, कपड़ा,साग, मूल, फल, मणि, हीरा, मूँगा, मोती, पात्र और चमस—इन सबकी शुद्धि जलसे होती है। लोहेके पात्रों एवं हथियारोंकी शुद्धि पानीसे धोने तथा पत्थर यानी शानपर रगड़नेसे होती है। जिस पात्रमें तेल या घी रखा गया हो, उसकी सफाई गर्म जलसे होती है। सूप, मृगचर्म, मूसल, ओखली तथा कपड़ोंके ढेरकी शुद्धि जल छिड़कनेमात्रसे हो जाती है। वल्कल वस्त्रकी शुद्धि जल और मिट्टीसे होती है, मिट्टीके बर्तन दुबारा पकानेसे शुद्ध होते हैं। भिक्षामें प्राप्त अन्न, कारीगरका हाथ, बाजारमें बिकनेके लिये आयी हुई शाक आदि वस्तुएँ, जिसके गुण-दोषका ज्ञान न हो, ऐसी वस्तु और सेवकोंद्वारा बनायी हुई वस्तु सदा शुद्ध मानी जाती है। जो बहता हो तथा जिससे दुर्गन्ध न आती हो, ऐसा जल शुद्ध माना गया है। समयानुसार अग्निसे तपाने, बुहारने, गायोंके चलने-फिरने, लीपने, जोतने और जल छिड़कनेसे भूमिकी शुद्धि होती है। बुहारने आदिसे

---

* तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्। ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी॥
जितामित्रो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः। तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम्॥
(२२१। १०३—१०४)

घर शुद्ध होता है। जिसमें बाल या कीड़े पड़ें हो, जिसे गायने सूँघ लिया हो तथा जिसमें मक्खियाँ पड़ी हों, ऐसे पात्रकी शुद्धिके लिये राख, मिट्टी और जलका उपयोग करना चाहिये। ताँबेका बर्तन खटाईसे, राँगा और शीशा जलसे और काँसेके बर्तन राख और जलसे शुद्ध होते हैं। जिस पात्रमें कोई अपवित्र वस्तु पड़ गयी हो, उसे मिट्टी और जलसे तबतक धोये, जबतक कि उसकी दुर्गन्ध दूर न हो जाय। इससे वह शुद्ध होता है। धूल, अग्नि, घोड़ा, गौ, छाया, किरणें, वायु, भूमि, जलके छींटे और मक्खी आदि—ये सब अशुद्ध वस्तुके संसर्गमें आनेपर भी दूषित नहीं होते। बकरे और घोड़ेका मुख शुद्ध माना गया है, किंतु गायका नहीं। बछड़ेका मुँह तथा माताका स्तन भी पवित्र बताया गया है। पेड़से फल गिराते समय पक्षीकी चोंच भी शुद्ध मानी गयी है। आसन, शय्या, सवारी, नदीका तट और तृण—ये सब बाजारमें बिकनेवाली वस्तुओंकी भाँति सूर्य और चन्द्रमाकी किरणों तथा वायुके स्पर्शसे शुद्ध होते हैं। सड़कों और गलियोंमें घूमने-फिरने, स्नान करने, छींक आने, हवा खुलने तथा वस्त्र बदलनेपर विधिपूर्वक आचमन करना चाहिये। पक्की ईंटके बने हुए चबूतरे आदिमें यदि कोई अस्पृश्य वस्तु, गलियोंकी कीचड़ या जल आदि लग जाय तो उसकी शुद्धि केवल वायुके स्पर्शसे हो जाती है।

अनजानमें यदि दूषित अन्न भोजन कर ले तो तीन रात उपवास करनेसे शुद्धि होती है; और यदि जान-बूझकर किया हो तो उसके दोषकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त करनेसे शुद्धि होती है। रजस्वला स्त्री, नवप्रसूता स्त्री, चाण्डाल तथा मुर्दा ढोनेवाले मनुष्योंसे छू जानेपर शुद्धिके लिये स्नान करना चाहिये। मनुष्यकी गीली हड्डीका स्पर्श कर लेनेपर ब्राह्मण स्नान करनेसे शुद्ध होता है और सूखी हड्डीका स्पर्श करनेपर केवल आचमन करके गायका स्पर्श या सूर्यका दर्शन करनेसे वह शुद्ध हो सकता है। थूक और उबटनको न लाँघे। जूठन, मल-मूत्र और पैरोंकी धोवनको घरसे बाहर फेंके। दूसरोंके खुदाये हुए पोखरे आदिमें पाँच लोंदे मिट्टी निकाले बिना स्नान न करे। देवतासम्बन्धी सरोवरों और गङ्गा आदि नदियोंमें सदा ही स्नान करे। असमयमें उद्यान आदिके भीतर कभी न ठहरे। लोकनिन्दित पुरुषों तथा विधवा स्त्रियोंसे कभी वार्तालाप न करे। रजस्वला स्त्री, पतित, मुर्दा, विधर्मी, प्रसूता स्त्री, नपुंसक, वस्त्रहीन, चाण्डाल, मुर्दा ढोनेवाले तथा परस्त्रीगामी पुरुषोंको देखकर विद्वान् पुरुष अपनी शुद्धिके लिये सूर्यका दर्शन करे। अभक्ष्य पदार्थ, भिक्षुक, पाखण्डी, बिल्ली, गदहा, मुर्गा, पतित, जातिबहिष्कृत, चाण्डाल, ग्रामीण सुअर तथा अशौचदूषित मनुष्योंका स्पर्श कर लेनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। जिसके घरमें प्रतिदिन नित्यकर्मकी अवहेलना होती है तथा जिसे ब्राह्मणोंने त्याग दिया है, वह नराधम पापभोगी है। नित्यकर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। उसे न करनेका विधान तो केवल मरणाशौच और जननाशौचमें ही है। अशौच प्राप्त होनेपर ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन तथा वैश्य पंद्रह दिनोंतक दान-होम आदि कर्मोंसे अलग रहे। शूद्र एक मासतक अपना कर्म बंद रखे। फिर अशौच निवृत्त होनेपर सब लोग अपने शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करें। मृतकका दाह-संस्कार करनेके बाद उसके गोत्रवाले लोगोंको चाहिये कि बाहर जलाशय आदिमें जाकर पहले, चौथे, सातवें और नवें दिन उस प्रेतके लिये जलाञ्जलि दें। दाह-संस्कारके चौथे दिन समान गोत्रवाले भाई-बन्धुओंको प्रेतकी चितासे उसकी अस्थियोंका संचय करना चाहिये। अस्थिसंचयके बाद उनके अङ्गोंका स्पर्श किया जा सकता है। फिर समानोदक पुरुष अपने सब कर्म कर सकते हैं। जिस दिन मृत्यु हुई हो, उस दिन समानोदक और सपिण्ड दोनोंका स्पर्श

किया जा सकता है। धनके लिये चेष्टा करते समय या स्वेच्छासे अथवा शस्त्र, रस्सी, बन्धन, अग्नि, विष, पर्वतसे गिरने तथा उपवास आदिके द्वारा मृत्यु होनेपर और बालक, परदेशी एवं परिव्राजककी मृत्यु होनेपर तत्काल अशौच निवृत्त हो जाता है। कुछ लोगोंके मतमें तीन दिनोंतक अशौच बना रहता है। यदि सपिण्डोंमेंसे एककी मृत्यु होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें दूसरेकी भी मृत्यु हो जाय तो पहलेके अशौचके साथ ही दूसरेका अशौच भी निवृत्त हो जाता है। अतः पहलेके अशौचमें जितने दिन शेष हों, उतने ही दिनोंके भीतर दूसरेका भी श्राद्ध आदि कर्म कर देना चाहिये। जननाशौचमें भी यही विधि देखी गयी है। सपिण्ड तथा समानोदक व्यक्तियोंमें एकके बाद दूसरेका जन्म हो तो इसी प्रकार पहलेके साथ दूसरेका अशौच भी निवृत्त हो जाता है।

पुत्रका जन्म होनेपर पिताको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। उसमें भी यदि एकके जन्मके बाद दूसरेका जन्म हो जाय तो पहले जन्मे हुए बालकके दिनपर ही दूसरेकी भी शुद्धि बतायी गयी है। अशौचके बाद क्रमशः दस, बारह, पंद्रह और तीस दिन बीतनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करें। अशौच निवृत्त होनेपर प्रेतके लिये एकोद्दिष्ट करना चाहिये और ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। लोकमें जो-जो वस्तु अधिक प्रिय हो और घरमें भी जो वस्तु अत्यन्त प्रिय जान पड़े, उसको अक्षय बनानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह उसे गुणवान् पुरुषको दान दे। अशौचके दिन पूरे हो जानेपर जल, वाहन और आयुधका स्पर्श करके पवित्र हो सब वर्णोंके लोग प्रेतके लिये जलदान और पिण्डदान आदिका कार्य करें; तदनन्तर अपने-अपने वर्ण-धर्मका पालन करें। इससे इस लोक और परलोकमें भी कल्याण होता है। तीनों वेदोंका प्रतिदिन स्वाध्याय करे, विद्वान् बने, धर्मानुसार धनका उपार्जन करे और उसे यत्नपूर्वक यज्ञमें लगाये। जिस कर्मको करते समय आत्मामें घृणा न हो और जिसे महापुरुषोंके सामने प्रकट करनेमें कोई संकोच न हो, ऐसा कर्म निःशङ्क होकर करना चाहिये। ब्राह्मणो! ऐसे आचरणवाले गृहस्थ पुरुषको धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है तथा इस लोक और परलोकमें भी उसका कल्याण होता है। यह विषय अत्यन्त गोपनीय तथा आयु, धन और बुद्धिको बढ़ानेवाला है। यह सब पापोंका नाशक, पवित्र तथा श्री, पुष्टि एवं आरोग्य देनेवाला है। इतना ही नहीं, यह कल्याणमय प्रसङ्ग मनुष्योंको यश और कीर्ति देनेवाला तथा उनके तेज और बलकी वृद्धि करनेवाला है। मनुष्योंको सदा इसका अनुष्ठान करना चाहिये। यह स्वर्गका सर्वोत्तम साधन है। सम्यक् श्रेयकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको यत्नपूर्वक इन सब बातोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो इस विषयको भलीभाँति जानकर नित्य-निरन्तर इसका अनुष्ठान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। द्विजवरो! यह मैंने सारसे भी अत्यन्त सारभूत तत्त्वका वर्णन किया है। यह श्रुतियों तथा स्मृतियोंद्वारा प्रतिपादित धर्म है। हर एकको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो नास्तिक हो, जिसकी बुद्धि खोटी हो, जो दम्भी, मूर्ख और कुतर्कपूर्ण वार्तालाप करनेवाला हो, ऐसे मनुष्यको कदापि इसका उपदेश नहीं देना चाहिये।

वर्ण और आश्रमोंके धर्मका निरूपण

मुनियोंने कहा—ब्रह्मन्! अब हम वर्णधर्म और आश्रमधर्मका विशेष रूपसे वर्णन सुनना चाहते हैं। विप्रवर! अब उसीका वर्णन कीजिये।

व्यासजी बोले—द्विजवरो! अब मैं क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंके धर्मका वर्णन करूँगा। तुमलोग एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्राह्मणको सदा दान, दया, तपस्या, देवयज्ञ और स्वाध्यायमें तत्पर रहना चाहिये। तर्पण और अग्निहोत्र उसका प्रतिदिनका कार्य होना चाहिये। जीविकाके लिये वह अन्य द्विजोंका यज्ञ कराये तथा उन्हें पढ़ाये। यज्ञ करनेके लिये वह जान-बूझकर भी प्रतिग्रह ले सकता है। सब लोगोंका हितसाधन करना और किसीका भी अपने द्वारा अहित न होने देना, यह ब्राह्मणका कर्तव्य है। समस्त प्राणियोंके प्रति मैत्रीका होना, यह ब्राह्मणके लिये सबसे उत्तम धन है।* केवल ऋतुकालमें पत्नीके साथ समागम करना ब्राह्मणके लिये प्रशंसाकी बात है। क्षत्रिय भी अपने इच्छानुसार ब्राह्मणको दान दे, नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करे और स्वाध्यायमें संलग्न रहे। शस्त्र चलाकर जीवन-निर्वाह करना और पृथ्वीका पालन करना—ये दो क्षत्रियकी मुख्य जीविकाएँ हैं। उनमें भी पृथ्वीकी रक्षा उसके लिये मुख्य आजीविका है। पृथ्वीका पालन करनेसे ही राजा कृतार्थ होते हैं, क्योंकि उसीसे उनके यज्ञ आदि कार्योंकी रक्षा होती है। जो राजा दुष्ट पुरुषोंका दमन और साधु पुरुषोंका पालन करके सब वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें स्थापित करता है, वह मनोवाञ्छित लोकोंको प्राप्त होता है। लोकपितामह ब्रह्माजीने वैश्योंके लिये पशुओंका पालन, व्यापार और खेती—ये तीन आजीविकाएँ प्रदान की हैं। वेदोंका अध्ययन, यज्ञ, दान, धर्म तथा नित्य और नैमित्तिक आदि कर्मोंका अनुष्ठान वैश्यके लिये भी उत्तम है। शूद्र द्विजातियोंकी सेवाका कार्य करे और उसीसे अर्थोपार्जन करके अपना जीवन-निर्वाह करे। अथवा खरीद-बिक्री या शिल्पकर्मके द्वारा धन पैदा करके उससे जीविका चलाये। शूद्र भी दान दे और मन्त्रहीन पाक-यज्ञोंद्वारा यजन करे। वह श्राद्ध आदि सब कार्य बिना मन्त्रके कर सकता है। भृत्य आदिका भरण-पोषण करनेके लिये सबके लिये संग्रह आवश्यक है। ऋतुकालके समय अपनी पत्नीके पास जाना, सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखना, शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहन करना, अभिमान न रखना, सत्य बोलना, पवित्रतापूर्वक रहना, किसीको कष्ट न पहुँचाना, सबका मङ्गल करना, प्रिय वचन बोलना, सबके प्रति मैत्रीका भाव रखना, किसी वस्तुकी कामना न करना, कृपणता न करना तथा किसीके भी दोष न देखना—ये सभी वर्णोंके लिये सामान्यरूपसे उत्तम गुण बताये गये हैं। चारों आश्रमोंके लिये भी ये सामान्य गुण हैं। ब्राह्मणो! अब ब्राह्मण आदि वर्णोंके उपधर्म बतलाये जाते हैं। आपत्तिकालमें ब्राह्मणके लिये क्षत्रियका कर्म, क्षत्रियके लिये वैश्यका कर्म तथा वैश्य और क्षत्रिय दोनोंके लिये शूद्रका कर्म कर्तव्य बताया गया है। सामर्थ्य रहते इन दोनोंको शूद्रका कर्म नहीं करना चाहिये, परंतु आपत्तिकालमें वही कर्तव्य हो जाता है। आपत्ति न होनेपर कर्म-संकर कदापि न करे। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने वर्णधर्मका वर्णन किया है।

अब आश्रमधर्मका भलीभाँति वर्णन करता हूँ, सुनो। उपनयन-संस्कार होनेपर ब्रह्मचारी बालक एकाग्रचित्त हो गुरुके घरपर रहते हुए वेदोंका

* सर्वलोकहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विजाः। मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम्॥ (२२२। ५)

अध्ययन करे। शौच और सदाचारका पालन करते हुए गुरुकी सेवा करे। पवित्र बुद्धिसे व्रतके पालनपूर्वक वेदोंकी शिक्षा ग्रहण करे। दोनों संध्याओंके समय एकाग्रचित्त हो सूर्योपस्थान, अग्निहोत्र और गुरुका अभिवादन करे। गुरुदेव खड़े हों तो स्वयं भी खड़ा रहे। वे जाते हों तो पीछे-पीछे जाय और वे बैठे हों तो उनसे नीचे आसनपर बैठे। शिष्यको चाहिये कि वह गुरुके विपरीत कोई आचरण न करे। उन्हींकी आज्ञासे उनके सामने बैठकर एकाग्रचित्तसे वेदका अध्ययन करे। गुरुका आदेश मिलनेपर भिक्षाका अन्न ग्रहण करे। जब आचार्य पहले स्नान कर लें तो स्वयं जलमें प्रवेश करके अवगाहन करे। प्रतिदिन प्रातः-काल आचार्यके लिये समिधा और जल आदि ले आये। जब ग्रहण करनेके योग्य वेदोंका पूर्णरूपसे अध्ययन कर ले, तब विद्वान् पुरुष गुरुदक्षिणा देकर गुरुकी आज्ञा ले गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे।

विधिपूर्वक योग्य स्त्रीसे विवाह करके अपने वर्णोचित कर्मद्वारा धनका उपार्जन करे और उसीसे यथाशक्ति गृहस्थका सारा कार्य पूर्ण करे। श्राद्धके द्वारा पितरों, यज्ञद्वारा देवताओं, अन्नसे अतिथियों, स्वाध्यायसे मुनियों, संतानोत्पादनसे प्रजापति, बलिवैश्वदेवसे सम्पूर्ण भूतों और सत्यवचनके द्वारा सम्पूर्ण जगत्का पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अपने कर्मोंद्वारा उपार्जित उत्तम लोकोंमें जाता है। भिक्षापर निर्वाह करनेवाले संन्यासी और ब्रह्मचारी भी गृहस्थोंके ही अवलम्बसे रहते हैं, अतः गार्हस्थ्य-आश्रम श्रेष्ठ माना गया है। जो ब्राह्मण वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और पृथ्वीके दर्शनके लिये भूतलपर भ्रमण करते हैं, जिनका कोई घर नहीं है, जो प्रायः निराहार रहते हैं और जहाँ सन्ध्या हो गयी, वहीं डेरा डाल देते हैं, ऐसे लोगोंका सहारा और आधार गृहस्थ ही हैं। पूर्वोक्त द्विज जब घरपर पधारें तो मधुर वाणीसे सदा उनका स्वागत-सत्कार करना चाहिये। उन्हें शय्या, आसन और भोजन देना चाहिये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, वह उसे अपना पाप दे बदलेमें उसका पुण्य लेकर चल देता है।* गृहस्थ पुरुषमें दूसरोंके प्रति अवहेलना, अपनेमें अहंकार, दम्भ, परनिन्दा, दूसरोंपर चोट करनेकी प्रवृत्ति और कटुवचन बोलनेका स्वभाव होना अच्छा नहीं माना गया है। जो गृहस्थ इस प्रकार उत्तम विधिका पालन करता है, वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो उत्तम लोकोंमें जाता है। गृहस्थ पुरुष बुढ़ापा आनेपर अपनी स्त्रीका भार पुत्रोंको सौंप दे और स्वयं तपस्याके लिये वनमें चला जाय अथवा स्त्रीको भी साथ ही लेता जाय। वहाँ पत्तियाँ, मूल और फल आदिका आहार करते हुए पृथ्वीपर शयन करे। सिरके बाल, दाढ़ी और मूँछ न कटाये। वानप्रस्थ मुनिके लिये सब लोग अतिथि हैं। वह मृगचर्म, कास और कुश आदिकी कौपीन एवं चादर धारण करे। उसके लिये तीनों समय स्नान करना उत्तम माना गया है। देवपूजन, होम, सम्पूर्ण अतिथियोंका पूजन, भिक्षा और प्राणियोंको बलि-समर्पण—ये सब बातें वानप्रस्थके लिये श्रेष्ठ मानी गयी हैं। वह अपने शरीरमें जंगली फल आदिके तेल लगा सकता है। उसका मुख्य कर्तव्य है तपस्या—शीत और उष्ण आदि द्वन्द्वोंका सहन। जो वानप्रस्थ मुनि नियमपूर्वक रहकर पूर्वोक्त रूपसे अपने कर्तव्यका पालन करता है, वह अग्निकी भाँति अपने सब दोषोंको जला देता और सनातन लोकोंको प्राप्त होता है।

मुनियो! मनीषी पुरुष जो भिक्षुका चतुर्थ आश्रम बतलाते हैं, उसके स्वरूपका वर्णन सुनो। भिक्षुको चाहिये कि पुत्र, धन, स्त्रीके प्रति स्नेहका त्याग करे और ईर्ष्यारहित होकर चतुर्थ आश्रममें जाय। उसीको संन्यास-आश्रम भी कहते हैं।

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥ (२२२। ३६)

संन्यासीको समस्त त्रैवर्णिक कर्मोंके आरम्भका त्याग करना चाहिये। वह मित्र और शत्रुमें समान भाव रखे। सब प्राणियोंका मित्र बना रहे। जरायुज और अण्डज आदि किसी भी प्राणीके साथ मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी द्रोह न करे। वह सब प्रकारकी आसक्तियोंको त्याग दे। गाँवोंमें एक रात और नगरमें पाँच रातसे अधिक न रहे। पशु, पक्षी आदिके प्रति न तो उसका राग हो और न द्वेष ही रहे। जीवन-निर्वाहके लिये वह उच्च वर्णवाले मनुष्योंके घरपर भिक्षाके लिये जाय—वह भी ऐसे समयमें जब कि रसोईकी आग बुझ गयी हो और घरके सब लोग खा-पी चुके हों। भिक्षा न मिलनेपर खेद और मिलनेपर हर्ष न माने। भिक्षा उतनी ही ले, जिससे प्राणयात्रा होती रहे। विषयासक्तिसे वह नितान्त दूर रहे। अधिक आदर-सत्कारकी प्राप्तिको घृणाकी दृष्टिसे देखे, क्योंकि अधिक आदर-सत्कार मिलनेपर संन्यासी अन्य बन्धनोंसे मुक्त होनेपर भी बँध जाता है। काम, क्रोध, दर्प, लोभ और मोह आदि जितने दोष हैं, उन सबका त्याग करके संन्यासी ममतारहित हो सर्वत्र विचरता रहे।* जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय-दान देकर पृथ्वीपर विचरता रहता है, उस देहाभिमानसे मुक्त यतिको कहीं भय नहीं होता। जो ब्राह्मण अग्निहोत्रको भावनाद्वारा शरीरमें स्थापित करके अपने मुखमें भिक्षाप्राप्त अन्नरूपी हविष्य डालकर उस शरीरस्थ अग्निको आहुति देता है, वह उस संचित अग्निके द्वारा उत्तम लोकोंमें जाता है। जो द्विज पवित्र एवं संयत बुद्धिसे युक्त हो शास्त्रोक्त विधिसे मोक्ष-आश्रमका पालन करता है, वह बिना ईंधनकी प्रज्वलित अग्निके सदृश शान्त तेजोमय ब्रह्मलोकमें जाता है।

उच्च वर्णकी अधोगति और नीच वर्णकी ऊर्ध्वगतिका कारण

मुनियोंने पूछा—महाभाग! आप सर्वज्ञ हैं, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं। मुने! भूत, भविष्य और वर्तमान—कुछ भी आपसे छिपा नहीं है। महामते! किस कर्मसे उच्च वर्णोंकी नीच गति होती है और किस कर्मसे नीच वर्णोंकी उत्तम गति होती है? यह बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताओंसे आच्छादित, अनेक प्रकारकी धातुओंसे विभूषित तथा विविध आश्चर्योंसे युक्त हिमालयके रमणीय शिखरपर त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर विराजमान थे। वहाँ गिरिराजकुमारी पार्वती देवीने देवेश्वर महादेवजीको प्रणाम करके यही प्रश्न किया था। मैं वही प्रसङ्ग यहाँ सुना रहा हूँ, तुम सब लोग ध्यान देकर सुनो।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने पूर्वकालमें चार वर्णोंकी सृष्टि की। उनमेंसे वैश्य किस कर्मसे शूद्रभावको प्राप्त होता है? अथवा क्या करनेसे क्षत्रिय वैश्य हो जाता है और ब्राह्मण किस कर्मके अनुष्ठानसे क्षत्रिय होता है? देव! इस प्रकार धर्मको प्रतिलोम-दशामें कैसे लाया जा सकता है? ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय किस कर्मसे शूद्र होते हैं? भूतनाथ! आप मेरे इस संशयका निवारण कीजिये। क्षत्रिय आदि तीन वर्णोंके लोग, जो जन्मसे ही यहाँ भिन्न वर्णवाले

* प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारे भुक्तवज्जने। काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थी पर्यटेद् गृहान्॥
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत्। प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः॥
अतिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेच्चैव सर्वतः। अतिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते॥
कामः क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयश्च ये। तांस्तु दोषान् परित्यज्य परिव्राण्निर्ममो भवेत्॥
(२२२। ५०—५३)

हैं, कैसे ब्राह्मणभावको प्राप्त हो सकते हैं?

शिवजी बोले—देवि! ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति अत्यन्त

कठिन है। शुभे! ब्राह्मण स्वभावसे ही ब्राह्मण होता है; इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी स्वभावसे ही वैसे होते हैं—ऐसा मेरा विचार है। ब्राह्मण इस लोकमें पापकर्म करनेसे अपने पथसे भ्रष्ट हो जाता है, उत्तम वर्णको पाकर भी फिर उससे नीचे गिर जाता है। जो ब्राह्मण-धर्मका पालन करते हुए उसीसे जीवन-निर्वाह करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है; परंतु जो ब्राह्मणत्वका त्याग करके क्षत्रियोचित धर्मोंका सेवन करता है, वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होकर क्षत्रिययोनिमें जन्म लेता है। जो विप्र लोभ और मोहका आश्रय ले अपनी मन्द बुद्धिके कारण दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर भी सदा वैश्यकर्मका अनुष्ठान करता है, वह वैश्ययोनिको प्राप्त होता है; अथवा यदि वैश्य शूद्रोचित कर्म करने लगता है तो वह शूद्र हो जाता है। अपने धर्मसे भ्रष्ट हुआ ब्राह्मण शूद्रत्वको प्राप्त होता है। वर्णसे भ्रष्ट या बहिष्कृत होनेपर वह ब्रह्मलोकसे भी गिर जाता है और नरकमें पड़नेके पश्चात् शूद्रयोनिमें जन्म लेता है। महाभागे! क्षत्रिय अथवा वैश्य भी जब अपना-अपना कर्म छोड़कर शूद्रोचित कर्म करने लगते हैं, तब अपने पदसे भ्रष्ट होकर वर्णसंकर हो जाते हैं। ऐसे कर्म-भ्रष्ट ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों शूद्रभावको प्राप्त होते हैं। जो शूद्र ज्ञान-विज्ञानसे युक्त एवं पवित्र हो अपने धर्मका पालन करते हुए जीवन-निर्वाह करता है, धर्मको जानता और उसके पालनमें तत्पर रहता है, वह धर्मके फलका भागी होता है।*

देवि! ब्रह्माजीने यह एक दूसरी आध्यात्मिक बात बतलायी है, जिसके पालनसे धर्मकामी पुरुषोंको नैष्ठिक सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य क्षत्रियके वीर्य और शूद्रजातीय स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न अथवा वर्णसंकर है, उसका अन्न अत्यन्त निन्दित माना गया है। इसी प्रकार एक समुदायका अन्न, श्राद्ध और सूतकका अन्न तथा शूद्रका अन्न कभी नहीं खाना चाहिये। देवि! देवताओं और महात्मा पुरुषोंने शूद्रके अन्नकी सदा ही निन्दा की है। यह श्रीब्रह्माजीके श्रीमुखका कथन होनेके कारण अत्यन्त प्रामाणिक है। जो ब्राह्मण अपने पेटमें शूद्रका अन्न लिये मृत्युको प्राप्त होता है, वह अग्निहोत्री और यज्ञकर्ता होते हुए भी शूद्रोचित गतिको प्राप्त होता है। पेटमें शूद्रान्न शेष रहनेके कारण वह ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट हो जाता है। शूद्रान्न-भोजी ब्राह्मण शूद्रत्वको प्राप्त होता है—इसमें अन्यथा विचारके लिये स्थान नहीं है।† ब्राह्मण अपने उदरमें जिसका अन्न शेष रहते प्राण-त्याग

---

* यस्तु शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्शुचिः। धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते॥ (२२३। २१)

† तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः। ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा॥ (२२३। २६)

करता है और जिसके अन्नसे जीवन-निर्वाह करता है, उसीकी योनिको प्राप्त होता है। जो लोग दुर्लभ ब्राह्मणत्वको अनायास ही पाकर उसकी अवहेलना करते हैं अथवा अभक्ष्य-भक्षण करते हैं, वे ब्राह्मणत्वसे गिर जाते हैं। शराबी, ब्रह्महत्यारा, चोर, व्रत भङ्ग करनेवाला, अपवित्र, स्वाध्याय न करनेवाला, पापी, लोभी, अपकारी, शठ, व्रतहीन, शूद्रीका पति, दोगलेका अन्न खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला और नीचसेवी ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो जाता है। गुरुस्त्रीगामी, गुरुद्वेषी, गुरुनिन्दापरायण तथा ब्रह्मद्रोही ब्राह्मण भी ब्रह्मयोनिसे गिर जाता है।

जो शूद्र सब कर्म शास्त्रीय विधिके अनुसार न्यायपूर्वक करता है, सबका अतिथि-सत्कार करनेके बाद बचा हुआ अन्न भोजन करता है, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णवाले पुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषामें यत्नपूर्वक लगा रहता है, जो कभी मनमें बुरा नहीं मानता, सदा सन्मार्गपर स्थित रहता है, देवता और द्विजोंका सत्कार करता, सबका आतिथ्य करनेके लिये दृढ़संकल्प रहता, ऋतुकालमें पत्नीके साथ समागम करता, नियमपूर्वक रहकर नियमित भोजन करता और कार्यदक्ष, साधुसेवी तथा अतिथियोंसे बचे हुए अन्नका भोजन करनेवाला होता है, जो कभी भी मांस नहीं ग्रहण करता, ऐसा शूद्र वैश्ययोनिको प्राप्त होता है।

जो वैश्य सत्यवादी, अहंकाररहित, निर्द्वन्द्व, सामवेदका ज्ञाता, पवित्र और स्वाध्यायपरायण होकर प्रतिदिन यज्ञ करता, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखता, ब्राह्मणोंका सत्कार करता, किसी भी वर्णके दोष नहीं देखता, गृहस्थोचित व्रतका पालन करते हुए केवल दो समय भोजन करता है, जो आहारपर विजय पाकर निष्काम एवं अहंकारशून्य हो गया है, अग्निहोत्रकी उपासना करते हुए विधिपूर्वक हवन करता है और सबका आतिथ्य-सत्कार करते हुए यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करता है, वह वैश्य पवित्र होकर श्रेष्ठ क्षत्रिय-कुलमें जन्म ग्रहण करता है। क्षत्रियरूपमें उत्पन्न होनेपर वह जन्मसे ही अच्छे संस्कारका होता है। उपनयनके पश्चात् ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर हो वह संस्कारसम्पन्न द्विज होता है। वह समय-समयपर दान देता, प्रचुर दक्षिणा देकर वैभवपूर्ण यज्ञ करता और वेदाध्ययन करके स्वर्गकी इच्छासे आहवनीय आदि तीनों अग्नियोंकी सदा उपासना करता है। राजा होनेपर वह संकल्पके जलसे भीगे हाथोंद्वारा दान देता और सदा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता है। स्वयं सत्यवादी होकर सदा सत्यका ही अनुष्ठान करता है, शुद्धिपर दृष्टि रखता है और धर्मदण्डसे युक्त हो धर्म, अर्थ एवं कामरूप त्रिवर्गका साधन करता है। शरीर और इन्द्रियोंको वशमें रखकर प्रजासे करके रूपमें केवल उसकी आयका छठा भाग ग्रहण करता है। तत्त्वज्ञ राजाको चाहिये कि वह स्वेच्छाचारी होकर विषय-भोगोंका सेवन न करे, अपितु धर्ममें चित्त लगाकर सदा ऋतुकालमें ही पत्नीके पास जाय। नित्य उपवास करनेवाला, नियमपरायण, स्वाध्यायशील तथा पवित्र रहे। सबका अतिथि-सत्कार करे। धर्म, अर्थ और कामका चिन्तन करते हुए सदा प्रसन्न-चित्त रहे। अन्नकी इच्छा रखनेवाले शूद्रोंको भी सदा यही उत्तर दे—'भोजन तैयार है।' स्वार्थ या कामनासे प्रेरित होकर कोई भाव न व्यक्त करे। देवता, पितर और अतिथियोंके लिये सर्वदा साधन-सामग्री उपस्थित रखे। अपने घरमें न्यायानुकूल विधिसे उपासना करे। भिक्षुको भिक्षा दे। दोनों समय विधिपूर्वक अग्निहोत्र करे तथा गौओं और ब्राह्मणोंका हितसाधन करनेके लिये संग्राममें सम्मुख होकर प्राण दे दे। त्रिविध अग्नियोंके सेवन तथा मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करनेसे पवित्र होकर क्षत्रिय भी जन्मान्तरमें ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न, वेदोंका पारंगत और संस्कारयुक्त ब्राह्मण हो जाता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर शुभ कर्म करनेसे धर्मात्मा वैश्य कर्मानुसार क्षत्रिय होता है और नीच कुलमें उत्पन्न शूद्र भी उत्तम कर्म करनेसे संस्कार-सम्पन्न द्विज हो जाता है।

देवि! जन्मसे ब्राह्मण होनेपर भी जो दुराचारी और समस्त वर्णसंकरोंका अन्न भोजन करनेवाला है, वह ब्राह्मणत्वको त्यागकर वैसा ही शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार शुद्धात्मा एवं जितेन्द्रिय शूद्र भी शुद्ध कर्मोंके अनुष्ठानसे ब्राह्मणकी भाँति सेवन करने योग्य हो जाता है, यह साक्षात् ब्रह्माजीका कथन है। जो शूद्र अपने स्वभाव और कर्मके अनुसार जीवन बिताता है, उसे द्विजातियोंसे भी अधिक शुद्ध जानना चाहिये—ऐसा मेरा विश्वास है। जन्म, संस्कार, वेदाध्ययन और संतति—ये सब द्विजत्वके कारण नहीं हैं; द्विजत्वका मुख्य कारण तो सदाचार ही है। संसारमें ये सब लोग आचरणसे ही ब्राह्मण माने जाते हैं। उत्तम आचरणमें स्थित होनेपर शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो सकता है।* पार्वती! ब्रह्मस्वभाव सर्वत्र सम है—यह मेरी मान्यता है। जहाँ निर्गुण एवं निर्मल ब्रह्म स्थित है, वहीं द्विजत्व है। देवि! ये जो विमल स्वभाववाले पुरुष हैं, वे ब्रह्मके ही स्थान और भावका दर्शन करानेवाले हैं। प्रजाकी सृष्टि करते समय वरदायक भगवान् ब्रह्माने स्वयं ही ऐसी बात कही थी। ब्राह्मण इस संसारमें एक महान् क्षेत्र है, जो हाथ-पैरोंसे युक्त होकर सर्वत्र विचरता रहता है। इसमें जो बीज पड़ता है, वह परलोकमें फल देनेवाली खेती है। ब्राह्मणको सदा संतुष्ट एवं सन्मार्गका पथिक होना चाहिये। उन्नति चाहनेवाले द्विजको सदा ब्रह्ममार्गका अवलम्बन करके रहना चाहिये। गृहस्थ ब्राह्मणको घरपर रहते हुए प्रतिदिन संहिताके मन्त्रोंका अध्ययन और स्वाध्याय करना चाहिये। वह अध्ययनकी वृत्तिसे ही जीवन-निर्वाह करे। जो ब्राह्मण इस प्रकार सदा सन्मार्गमें स्थित हो अग्निहोत्र और स्वाध्याय करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। देवि! ब्राह्मणत्वको प्राप्त करके उसकी यत्नपर्वूक रक्षा करनी चाहिये। यह मैंने तुम्हें बड़ी गोपनीय बात बतलायी है। शूद्र धर्माचरणसे ब्राह्मण होता है और ब्राह्मण धर्मभ्रष्ट होनेपर शूद्रत्वको प्राप्त होता है।

स्वर्ग और नरकमें ले जानेवाले धर्माधर्मका निरूपण

पार्वतीजीने कहा—भगवन्! सर्वभूतेश्वर! देव-दानव-वन्दित विभो! मुझे मनुष्योंके धर्म और अधर्मके विषयमें संदेह है। देव! आप उसका समाधान कीजिये। देहधारी जीव सदा मन, वाणी और क्रियारूप त्रिविध बन्धनोंद्वारा बँधते हैं; फिर किन साधनोंसे और किस प्रकार उनकी मुक्ति होती है? यह बताइये। देव! किस स्वभावसे, कैसे कर्मसे अथवा किन सदाचारों एव सद्गुणोंसे संसारके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं?

शिवजी बोले—देवि! तुम धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाली और निरन्तर धर्ममें तत्पर रहनेवाली हो। तुम्हारा प्रश्न सब प्राणियोंके लिये हितकारी और उनकी बुद्धिको बढ़ानेवाला है। मैं उसका उत्तर देता हूँ, सुनो। जो मनुष्य सब प्रकारके लिङ्गों (बाह्य चिह्नों)-से रहित, सत्य-धर्मके परायण तथा शान्त हैं, जिनके सभी संशय

---

* ..... । ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकरभोजनः॥
स ब्राह्मण्यं समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः। कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः॥
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माब्रवीत्स्वयम्। स्वभावकर्मणा चैव यश्च शूद्रोऽधितिष्ठति॥
विशुद्धः स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मतिः। न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतिर्न च संततिः॥
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्। सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते॥
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति। (२२३। ५३—५८)

नष्ट हो गये हैं, वे अधर्म या धर्मसे नहीं बँधते। जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग हैं, वे पुरुष कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसीकी हिंसा नहीं करते तथा किसीके प्रति आसक्त नहीं होते, वे कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ते। जो प्राण-संहारसे दूर रहनेवाले, सुशील, दयालु, प्रिय और अप्रियको समान समझनेवाले तथा जितेन्द्रिय हैं, वे भी कर्मोंसे नहीं बँधते। जो सब प्राणियोंपर दया रखते, सब जीवोंके लिये विश्वासपात्र बने रहते और हिंसापूर्ण बर्तावका त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेवाले हैं। जो पराये धनके प्रति कभी ममता नहीं रखते और परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहते हैं तथा जो धर्मतः प्राप्त अर्थका ही उपभोग करनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो परस्त्रियोंके प्रति सदा माता, बहिन और पुत्रीका-सा बर्ताव करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते, ऋतुकाल आनेपर ही पत्नीके साथ समागम करते तथा विषय-सुखोंके उपभोगमें कभी आसक्त नहीं होते, वे ही मनुष्य स्वर्गलोकके यात्री होते हैं। जो अपने सदाचारके कारण परायी स्त्रियोंकी ओरसे सदा आँखें बंद किये रहते हैं, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखते और शीलकी सदा रक्षा करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह देवमार्ग है। मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंको सदा उसी मार्गका सेवन करना चाहिये, जो वासनाद्वारा निर्मित न हो, जिसमें किसीका व्यर्थ ही अपकार न होता हो और जहाँ दान, सत्कर्म, तपस्या, शील, शौच तथा दयाभावका दर्शन होता हो। स्वर्गमार्गकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसके विपरीत मार्गका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

जो अपने अथवा दूसरेके लिये अधर्मयुक्त बात नहीं कहते और कभी झूठ नहीं बोलते, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो जीविका अथवा धर्मके लिये या स्वेच्छासे ही कभी असत्यभाषण नहीं करते, अपितु स्पष्ट, कोमल, मधुर, पापरहित एवं स्वागतपूर्ण वचन बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो कठोर, कड़वी तथा निष्ठुर बात मुँहसे नहीं निकालते, चुगली नहीं खाते, साधुतासे रहते हैं, कठोर भाषण और परद्रोह त्याग देते हैं तथा सम्पूर्ण भूतोंके प्रति सम एवं जितेन्द्रिय होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो शठोंसे बात नहीं करते, विरुद्ध कर्मोंको त्याग देते, कोमल वचन बोलते, क्रोध न करके मनोहर वाणी मुँहसे निकालते और कुपित होनेपर भी शान्ति धारण करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। देवि! यह वाणीद्वारा पाला जानेवाला धर्म है। शुभ तथा सत्य गुणोंवाले विद्वान् मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये।

कल्याणि! मानसिक धर्मसे युक्त मनुष्य सदा स्वर्गमें जाते हैं। मैं उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। निर्जन वनमें रखे हुए पराये धनपर जब दृष्टि पड़े, उस समय जो मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, वे स्वर्गगामी होते हैं। इसी प्रकार जो परायी स्त्रियोंको एकान्तमें पाकर मनके द्वारा भी कामवश उन्हें नहीं ग्रहण करते, जो शत्रु और मित्रको सदा एक-चित्तसे अपनाते, शास्त्रोंका अध्ययन करते, पवित्र एवं सत्यप्रतिज्ञ होते और अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं, जिनसे दूसरोंको कष्ट नहीं पहुँचता और जिनके चित्तमें सदा मैत्रीका भाव बना रहता है, जो सब प्राणियोंपर निरन्तर दयाभाव बनाये रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो ज्ञानवान्, क्रियावान्, क्षमावान्, सुहृद्-प्रेमी, धर्माधर्मके ज्ञाता और शुभाशुभ कर्मोंके फल-संग्रहके प्रति उदासीन रहते हैं, जो पापियोंको त्याग देते, देवताओं और द्विजोंकी सेवामें संलग्न रहते एवं गुरुजनोंके आनेपर खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। देवि! जो लोग शुभकर्मोंके

फलस्वरूप स्वर्गमार्गपर जाते हैं, उनका मैंने वर्णन किया। अब तुम और क्या सुनना चाहती हो?

पार्वतीजी बोलीं—महेश्वर! मेरे मनमें मनुष्योंके सम्बन्धमें एक और महान् संशय है। अतः आप उसका भलीभाँति समाधान करें। प्रभो! मनुष्य किस कर्मसे इस पृथ्वीपर बड़ी आयु प्राप्त करता है? और किस कर्मसे उसकी आयु क्षीण हो जाती है? आप कर्मोंके परिणामका वर्णन करें।

शिवजी बोले—देवि! कर्मोंका फल जैसे प्राप्त होता है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। मर्त्यलोकमें सब मनुष्य अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। जो मनुष्य सदा हाथमें डंडा लेकर दूसरोंके प्राणोंका संहार करता, सर्वदा हथियार उठाकर प्राणियोंकी हिंसा किया करता, सब जीवोंके प्रति निर्दय बना रहता, सदा सबको उद्वेगमें डालता, कीट और पतङ्गोंको भी शरण नहीं देता और अत्यन्त निष्ठुरतापूर्ण बर्ताव करता है, वह नरकमें पड़ता है। इसके विपरीत जो धर्मात्मा होता है, उसे अपने स्वरूपके अनुरूप ही गति मिलती है। हिंसक नरकमें और अहिंसक स्वर्गमें जाता है। नरकगामी मनुष्य नरकमें पड़कर अत्यन्त दुस्सह एवं भयंकर यातना भोगता है। जो कोई कभी उस नरकसे निकलता है, वह यदि मनुष्य-योनिमें आता है तो भी वहाँ उसकी आयु बहुत थोड़ी होती है। देवि! जो शुभकर्म करते हुए जीवन व्यतीत करता है, प्राणियोंकी हिंसासे दूर रहता है, जो शस्त्र और दण्डका त्याग करके कभी किसीकी हिंसा नहीं करता, न मरवाता है, न मारता है और न मारनेवालेका अनुमोदन ही करता है, जिसका सभी प्राणियोंके प्रति स्नेह है तथा जो अपने और परायेमें समान भाव रखता है, ऐसा पुरुष सदा देवपदको प्राप्त होता है। देवि! वह अपने शुभ कर्मोंसे प्राप्त देवोचित सुख-भोगोंका प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है। वह यदि कभी मनुष्य-लोकमें आता है तो उसकी बड़ी आयु होती है। यह बड़ी आयुवाले सदाचारी एवं पुण्यात्मा मनुष्योंका मार्ग है। जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे इसकी प्राप्ति होती है, यह ब्रह्माजीका कथन है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! कैसे शील और सदाचारवाला पुरुष किन कर्मों अथवा किस दानसे स्वर्गमें जाता है?

महादेवजी बोले—जो ब्राह्मणका सत्कार करनेवाला तथा दीन-दुःखी और कृपण आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान एवं वस्त्र देनेवाला है, जो यज्ञमण्डप, धर्मशाला, पौंसला तथा पुष्करिणी बनवाता है, मन और इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्धभावसे नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म करता है, आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, खेतकी उपज तथा खेत आदि वस्तुओंका सदा शान्त चित्तसे दान करता है, देवि! ऐसा मनुष्य देवलोकमें जन्म लेता है। वहाँ दीर्घकालतक उत्तम भोगोंका उपभोग करते हुए नन्दन आदि वनोंमें अप्सराओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार करता है। देवि! वहाँसे च्युत होनेपर वह मनुष्योंके सौभाग्यशाली कुलमें, जो धन-धान्यसे सम्पन्न होता है, जन्म लेता है। वह मानव समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त, प्रसन्न, प्रचुर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न एवं धनवान् होता है। पार्वती! जो दानशील महाभाग प्राणी हैं, ब्रह्माजीने उन्हें सर्वप्रिय बतलाया है। इनके सिवा दूसरे मनुष्य ऐसे हैं, जो देनेमें कृपण होते हैं। वे मूर्ख घरमें रहते हुए भी किसीको अन्न नहीं देते। दीनों, अंधों, कृपणों, दुःखियों, याचकों और अतिथियोंको देखकर मुँह फेर लेते हैं। उनके याचना करते रहनेपर भी अनसुनी करके पीछे लौट जाते हैं। कभी किसीको धन, वस्त्र, भोग, स्वर्ग, गौ और भाँति-भाँतिके खाद्य पदार्थ नहीं देते। जो लोभी, नास्तिक और दानरहित होते हैं, वे अज्ञानी मनुष्य नरकमें पड़ते हैं। कालचक्रके परिवर्तनसे उन्हें जब कभी मनुष्य-योनिमें आना पड़ता है, तब वे निर्धन-कुलमें जन्म पाते हैं। बुद्धि भी उनकी बहुत थोड़ी

होती है। यहाँ वे भूख-प्यासका कष्ट सहते हैं। सब लोग उन्हें समाजसे बहिष्कृत किये रहते हैं। वे सब भोगोंसे निराश हो पापपूर्ण वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते हैं। उनका जन्म ऐसे कुलमें होता है, जहाँ भोग-सामग्री बहुत थोड़ी होती है; अतः वे अल्पभोगपरायण होते हैं। देवि! इस प्रकार दान न करनेसे मनुष्य निर्धन होते हैं।

उनसे भिन्न अन्य मनुष्य दम्भी और अभिमानी होते हैं। वे मन्दबुद्धि मानव आसन देने योग्य गुरुजनके आनेपर उन्हें पीढ़ातक नहीं देते। जिन्हें स्वयं किनारे हटकर जानेके लिये मार्ग देना उचित है, उनके लिये वे अज्ञानी मार्ग नहीं देते। जो लोग अर्घ्य पाने योग्य हैं, उनका वे विधिपूर्वक पूजन नहीं करते। उन्हें पाद्य अथवा आचमनीय भी नहीं देते। अभीष्ट एवं श्रेष्ठ गुरुजनसे भी प्रेमपूर्वक वार्तालाप नहीं करते। अभिमानके साथ ही बढ़े हुए लोभके वशीभूत होकर वे माननीय पुरुषोंका भी अनादर और बड़े-बूढ़ोंका तिरस्कार करते हैं। देवि! ऐसे स्वभाववाले सभी मनुष्य नरकमें जाते हैं। यदि वे कभी उस नरकसे छुटकारा पाते हैं तो बहुत वर्षोंतक अन्यान्य योनियोंमें भटकनेके बाद घृणित, अज्ञानी, चाण्डाल आदिके निन्दित कुलमें जन्म पाते हैं। गुरुजनों और वृद्ध पुरुषोंको संताप देनेवाले लोगोंकी यही गति होती है।

जो न दम्भी है न मानी है, जो देवता और अतिथियोंका पूजक, लोकपूज्य, सबको नमस्कार करनेवाला, मधुरभाषी, सब प्रकारकी चेष्टाओंसे दूसरोंका प्रिय करनेवाला, समस्त प्राणियोंको सदा प्रिय माननेवाला, द्वेषरहित, प्रसन्नमुख, कोमलस्वभाव, सबसे स्वागतपूर्वक स्नेहमय वचन बोलनेवाला, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुषोंका विधिवत् सत्कारपूर्वक पूजन करनेवाला, मार्ग देने योग्य पुरुषोंको मार्ग देनेवाला, गुरुपूजक और अतिथिको अन्नका अग्रभाग अर्पित करनेवाला है, ऐसा पुरुष स्वर्गमें जाता है। मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंका फल स्वयं ही भोगता है। यह साक्षात् ब्रह्माजीका बताया हुआ धर्म है, जिसका मैंने वर्णन किया है।

जिसका आचरण निर्दयतापूर्ण होता है, जो सब प्राणियोंके मनमें भय उपजाता है, हाथ, पैर, रस्सी, डंडा, ढेला, खंभा अथवा अन्य साधनोंसे जीवोंको कष्ट देता है, हिंसाके लिये उद्वेग पैदा करता है, जीवोंपर आक्रमण करता और उन्हें उद्विग्न बनाता है, ऐसे स्वभाव और आचरणवाला मनुष्य नरकमें पड़ता है। वह यदि कालक्रमसे मनुष्य-योनिमें जाता है तो अधम-कुलमें जन्म लेता है, जहाँ उसे नाना प्रकारकी बाधाएँ और क्लेश सहन करने पड़ते हैं। वह अधम मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप सब लोकोंका द्वेषपात्र होता है। इसके विपरीत जो सब प्राणियोंको दयापूर्ण दृष्टिसे देखता है, सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है, पिताके समान निर्वैर होता है, दयालु होनेके कारण प्राणियोंको न डराता है और न मारता ही है, जिसके हाथ-पैर वशमें होते हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंका विश्वासपात्र है, रस्सी, डंडा, ढेला अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाता, शुभ कर्म करता और सबपर दया रखता है, ऐसे शील और आचरणवाला मनुष्य स्वर्गमें जाता है। वहाँ देवताओंकी भाँति वह दिव्य भवनमें सानन्द निवास करता है। वह यदि पुण्यक्षयके पश्चात् मर्त्यलोकमें आता है तो मनुष्योंमें क्लेशरहित एवं निर्भय होता है। वह सुखसे जन्म लेता और अभ्युदयशील होता है। सुखका भागी तथा उद्वेगशून्य होता है। देवि! यह साधु पुरुषोंका मार्ग है, जहाँ किसी प्रकारकी बाधा नहीं है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! कुछ मनुष्य ऊहापोहमें कुशल दिखायी देते हैं; अतः कृपया बताइये—किस कर्मसे मनुष्य बुद्धिमान् होते हैं? तथा जो लोग जन्मसे ही अंधे, रोगी तथ नपुंसक देखे जाते हैं, उनके वैसे होनेमें क्या कारण है? बतानेकी कृपा करें।

महादेवजी बोले—जो लोग वेदवेत्ता, सिद्ध

तथा धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन शुभाशुभ कर्म पूछते हैं और अशुभका त्याग करके शुभ कर्मका सेवन करते हैं, वे इस लोकमें सुखसे रहते और अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं। ऐसे लोग जब फिर कभी मनुष्य-योनिमें आते हैं, तब बुद्धिमान् होते हैं। जिसका वेदाध्ययन यज्ञानुष्ठानमें सहायक होता है, वह कल्याणका भागी होता है। जो परायी स्त्रियोंपर कुदृष्टि डालते हैं, वे उस दुष्ट स्वभावके कारण जन्मान्ध होते हैं। जो दूषित मनसे परायी स्त्रीको नंगी देखते हैं, वे पापी मनुष्य इस लोकमें रोगसे पीड़ित होते हैं। जो मूर्ख और दुराचारी मानव पशु आदिके साथ मैथुन करते हैं, वे मानव नपुंसक होते हैं। जो पशुओंको बाँधे रखते और गुरुपत्नी-गमन करते हैं, वे मनुष्य भी नपुंसक होते हैं।

पार्वतीजीने पूछा—देवश्रेष्ठ! कौन-सा कर्म अनिन्द्य है? क्या करनेसे मनुष्य कल्याणका भागी होता है?

महादेवजी बोले—जो कल्याणमय मार्गकी इच्छा रखता हुआ सदा ब्राह्मणोंसे उसकी जिज्ञासा करता है, जो धर्मका अन्वेषण और गुणोंकी अभिलाषा करता है, वह स्वर्गमें जाता है। देवि! यदि कभी वह फिर मनुष्य-योनिमें आता है तो मेधावी और धारणाशक्तिसे युक्त होता है। यह सत्पुरुषोंका धर्म सबका कल्याण करनेवाला है, अतः इसीपर चलना चाहिये। यह मैंने मनुष्योंके हितके लिये बतलाया है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! कुछ लोग व्रत और तपसे भ्रष्ट एवं राक्षसके समान देखे जाते हैं और कुछ मनुष्य यज्ञपरायण दृष्टिगोचर होते हैं; यह किस कर्मविपाकका फल है?

महादेवजीने कहा—देवि! लोकधर्मके प्रतिपादक शास्त्र और प्राचीन मर्यादाको प्रमाण मानकर जो उसका अनुसरण करते हैं, वे दृढ़संकल्प एवं यज्ञतत्पर देखे जाते हैं। परंतु जो मोहके वशीभूत हो अधर्मको ही धर्म बताते हैं, वे व्रत और मर्यादाका लोप करनेवाले मानव ब्रह्मराक्षस होते हैं। उन्हींमेंसे जो लोग काल-क्रमसे यहाँ फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेते हैं, वे होम और वषट्कारसे शून्य एवं मनुष्योंमें अधम होते हैं। देवि! मैंने तुम्हारे संदेहका निवारण करनेके लिये यह मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मका निरूपण किया है।

भगवान् वासुदेवका माहात्म्य

व्यासजी कहते हैं—जगन्माता पार्वती अपने स्वामीकी कही हुई सब बातें आदिसे ही सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। उस समय वहाँ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे जो मुनि उस पर्वतपर गये थे, उन्होंने भी शूलपाणि महादेवजीका पूजन और प्रणाम करके सब लोकोंके हितके लिये प्रश्न किया।

मुनियोंने कहा—त्रिलोचन! आपको नमस्कार है। इस रोमाञ्चकारी महाभयंकर संसारमें अज्ञानी पुरुष चिरकालसे भटक रहे हैं, वे जन्म-मृत्युरूप संसारबन्धनसे किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं? बताइये। हम यही सुनना चाहते हैं।

महादेवजी बोले—द्विजो! कर्मबन्धनमें बँधकर दुःख भोगनेवाले मनुष्योंके लिये मैं भगवान् वासुदेवसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं देखता। जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् वासुदेवका मन, वाणी और क्रियाद्वारा विधिपूर्वक पूजन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जिनका मन जगन्मय भगवान् वासुदेवमें नहीं लगा, उनके जीवनसे और पशुओंकी भाँति चेष्टासे क्या लाभ हुआ।

मुनियोंने कहा—सर्वलोकवन्दित पिनाकधारी भगवान् शंकर! हम भगवान् वासुदेवका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

महादेवजी बोले—सनातन पुरुष श्रीहरि ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। उनका श्रीविग्रह श्यामवर्ण है, उनकी

कान्ति जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान है। वे मेघरहित आकाशमें सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते हैं। उनके दस भुजाएँ हैं। वे महातेजस्वी और देवशत्रुओंके नाशक हैं। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है। वे इन्द्रियोंके नियन्ता और सम्पूर्ण देववृन्दके अधिपति हैं। उनके उदरसे ब्रह्माका और मस्तकसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ है। सिरके बालोंसे नक्षत्र और ग्रह तथा रोमावलियोंसे देवता और असुर उत्पन्न हुए। उनके शरीरसे ऋषि और सनातन लोक प्रकट हुए हैं। वे साक्षात् ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवताओंके निवासस्थान हैं। वे ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीके रचयिता और तीनों लोकोंके स्वामी हैं। स्थावर-जङ्गम भूतोंका संहार करनेवाले वे ही हैं। वे देवताओंके भी देवता और रक्षक हैं। शत्रुओंको ताप देनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वस्रष्टा, सर्वव्यापी और सब ओर मुखवाले हैं। तीनों लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वे सनातन महाभाग गोविन्दके नामसे विख्यात हैं। देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये मानव-शरीरमें अवतीर्ण होकर वे समस्त भूपालोंका युद्धमें संहार करेंगे। भगवान् विष्णुके बिना देवगण अनाथ हैं। अतः उनके बिना वे संसारमें देव-कार्यकी सिद्धि नहीं कर सकते। सम्पूर्ण भूतोंके नायक भगवान् विष्णु समस्त प्राणियोंद्वारा वन्दित हैं। वे देवताओंके नाथ, कार्य-कारण-ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्मर्षियोंको शरण देनेवाले हैं। ब्रह्माजी उनकी नाभिमें हैं और मैं शरीरमें। सम्पूर्ण देवता भी उनके शरीरमें सुखपूर्वक स्थित हैं। वे भगवान् कमलके समान नेत्र धारण करते हैं। उनके गर्भमें श्रीका निवास है। वे सदा लक्ष्मीजीके साथ रहते हैं। शार्ङ्ग नामक धनुष, सुदर्शन चक्र और नन्दक नामक खड्ग उनके आयुध हैं। सम्पूर्ण नागोंके शत्रु गरुड उनकी ध्वजामें विराजमान हैं। उत्तम शील, शौच, इन्द्रियसंयम, पराक्रम, वीर्य, सुदृढ़ शरीर, ज्ञान, सरलता, कोमलता, रूप और बल आदि सभी गुणोंसे वे सुशोभित हैं। उनके पास सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंका समुदाय है। उनके योगमायामय सहस्रों नेत्र हैं। वे विकराल नेत्रोंवाले भी हैं। उनका हृदय विशाल है। वे अपनी वाणीसे मित्रजनोंकी प्रशंसा करते हैं। कुटुम्बी और बन्धुजनोंके प्रेमी हैं। क्षमाशील, अहंकारशून्य और वेदोंका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। वे भयातुरोंके भयका अपहरण और मित्रोंके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले हैं। समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले और दीनोंके पालक हैं। शास्त्रोंके ज्ञाता और ऐश्वर्यसम्पन्न हैं। शरणमें आये हुए मनुष्योंके उपकारी और शत्रुओंको भय देनेवाले हैं। नीतिज्ञ, नीतिसम्पन्न, ब्रह्मवादी, जितेन्द्रिय और उत्कृष्ट बुद्धिसे युक्त हैं।

वे देवताओंके अभ्युदयके लिये महात्मा मनुके वंशमें अवतार लेंगे। उस अवतारमें वे ब्राह्मणोंका सत्कार करनेवाले, ब्रह्मस्वरूप और ब्राह्मणोंके प्रेमी होंगे। यदुकुलमें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्ण राजगृहमें जरासंधको जीतकर उसकी कैदमें पड़े हुए राजाओंको छुड़ायेंगे। पृथ्वीके समस्त रत्न उनके पास संचित होंगे। वे अत्यन्त पराक्रमी होंगे। भूतलपर दूसरा कोई वीर उन्हें पराक्रमद्वारा परास्त न कर सकेगा। वे विक्रमसे सम्पन्न समस्त राजाओंके भी राजा और वीरमूर्ति होंगे। भगवान् वासुदेव द्वारकामें रहते हुए दुर्बुद्धि दैत्योंको पराजित करके इस पृथ्वीका पालन करेंगे। आप सब लोग ब्राह्मणों तथा श्रेष्ठ पूजन-सामग्रियोंके साथ भगवान्‌की सेवामें उपस्थित हो सनातन ब्रह्माजीकी भाँति उनका यथायोग्य पूजन करें। जो मेरा तथा पितामह ब्रह्माका दर्शन करना चाहता हो, उसे परप प्रतापी भगवान् वासुदेवका दर्शन अवश्य करना चाहिये। उनका दर्शन होनेसे ही मेरा भी दर्शन हो जाता है—इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। तपोधनो! भगवान् वासुदेव ही ब्रह्मा हैं, ऐसा जानो। जिनपर कमलनयन भगवान् विष्णु प्रसन्न होंगे, उनपर ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता भी प्रसन्न हो

जायँगे। संसारमें जो मानव भगवान् केशवकी शरण लेगा, उसे कीर्ति, यश और स्वर्गकी प्राप्ति होगी। इतना ही नहीं, वह धर्मात्मा होनेके साथ ही धर्मका उपदेश करनेवाला आचार्य होगा।

महातेजस्वी भगवान् विष्णुने प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे धर्मानुष्ठानके लिये कोटि-कोटि ऋषियोंको उत्पन्न किया। वे सनत्कुमार आदि ऋषि गन्धमादन पर्वतपर विधिपूर्वक तपस्यामें संलग्न हैं। इसलिये धर्मज्ञ एवं प्रवचन-कुशल भगवान् विष्णु सबके लिये नमस्कार करनेयोग्य हैं। वे वन्दित होनेपर स्वयं वन्दना करते हैं और सम्मानित होनेपर स्वयं भी सम्मान देते हैं। जो प्रतिदिन उनका दर्शन करता है, उसपर वे भी सदा कृपादृष्टि रखते हैं। जो उनकी शरणमें जाता है, उसकी ओर वे भी बढ़ आते हैं। जो उनकी अर्चना करता है, उसकी वे भी सदा अर्चना करते हैं। इस प्रकार आदिदेव भगवान् विष्णु अनिन्द्य हैं। साधु पुरुषोंने उनकी आराधनाके लिये बड़ी भारी तपस्या की है। देवताओंने भी सनातन देव श्रीहरिका सदा ही पूजन किया है। भगवान्‌के अनुरूप निर्भयतासे युक्त हो उनकी शरणमें जाकर उनकी आराधनामें मन लगाया है। सम्पूर्ण द्विजोंको चाहिये कि वे मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् देवकी-नन्दनकी सेवामें उपस्थित हो यत्नपूर्वक उनका दर्शन और नमस्कार करें। मुनिवरो! मैंने इसी मार्गका अनुष्ठान किया है। उन सर्वदेवेश्वर भगवान्‌का दर्शन कर लेनेपर सम्पूर्ण देवताओंका दर्शन हो जाता है। उन महावराहरूपधारी सर्वलोकपितामह जगत्पति भगवान् विष्णुको मैं नित्यप्रति प्रणाम करता हूँ। उन्हीं श्रीकृष्णके बड़े भाई हलधर बलरामजी होंगे, जिनका श्वेतगिरिके समान गौर वर्ण होगा। इस पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनाग ही उनके रूपमें अवतीर्ण होंगे। वे भगवान् शेष बड़ी प्रसन्नताके साथ सर्वत्र विचरण करते हैं। वे अपने फणसे पृथ्वीको लपेट करके स्थित हैं। ये जो भगवान् विष्णु कहलाते हैं, वे ही इस पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् अनन्त हैं। जो बलराम हैं, वही समस्त इन्द्रियोंके स्वामी धरणीधर अच्युत हैं। वे दोनों पुरुषसिंह दिव्य रूप एवं दिव्य पराक्रमी हैं। उन दोनोंका दर्शन और आदर करना चाहिये। वे क्रमशः चक्र और हल धारण करनेवाले हैं। तपोधनो! मैंने तुमलोगोंसे भगवान्‌के अनुग्रहका यह उपाय बताया है, अतः तुम सब लोग प्रयत्नपूर्वक यदुश्रेष्ठ भगवान् वासुदेवका पूजन करो।

श्रीवासुदेवके पूजनकी महिमा तथा एकादशीको भगवान्‌के मन्दिरमें जागरण करनेका माहात्म्य—ब्रह्मराक्षस और चाण्डालकी कथा

मुनियोंने कहा—महर्षे! हमने भगवान् श्रीकृष्णका अद्भुत माहात्म्य सुना। वह सब पापोंको दूर करनेवाला, पुण्यमय, धन्य एवं संसारबन्धनका नाश करनेवाला है। महामुने! श्रीवासुदेवके पूजनमें संलग्न रहनेवाले मनुष्य उनका विधिपूर्वक भक्तिभावसे पूजन करके किस गतिको प्राप्त होते हैं?

व्यासजी बोले—मुनिवरो! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। यह वैष्णवोंको सुख देनेवाला विषय है, ध्यान देकर सुनो। वैष्णवोंके लिये स्वर्ग और मोक्ष दुर्लभ नहीं हैं। वैष्णव पुरुष जिन-जिन दुर्लभ भोगोंकी अभिलाषा करते हैं, उन सबको प्राप्त कर लेते हैं। जैसे कोई पुरुष कल्पवृक्षके पास पहुँच जानेपर अपनी इच्छाके अनुसार फल पाता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णसे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। भक्त मनुष्य श्रद्धा और विधिके साथ जगद्गुरु भगवान् वासुदेवका

पूजन करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके फलस्वरूप स्वयं भगवान्‌को प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग सदा भक्तिपूर्वक अविनाशी वासुदेवकी पूजा करते हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो समस्त मनोवाञ्छित फलोंके देनेवाले सर्वपापहारी श्रीहरिका सदा पूजन करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्त्यज—सभी सुरश्रेष्ठ भगवान् वासुदेवका पूजन करके परम गतिको प्राप्त होते हैं।*

दोनों पक्षोंकी एकादशीको उपवासपूर्वक एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहने। इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखे और पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, नाना प्रकारके उपहार, जप, होम, प्रदक्षिणा, भाँति-भाँतिके दिव्य स्तोत्र, मनोहर गीत, वाद्य, दण्डवत्-प्रणाम तथा 'जय' शब्दके उच्चारणद्वारा श्रद्धापूर्वक भगवान् विष्णुकी विधिवत् पूजा करे। पूजनके पश्चात् रात्रिमें जागरण करके श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए उनकी कथा-वार्ता करे। अथवा भगवत्सम्बन्धी पदोंका गान करे। यों करनेवाला मनुष्य भगवान् विष्णुके परम धामको जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

मुनियोंने पूछा—महामुने! भगवान् विष्णुके लिये जागरण करके गीत गानेका क्या फल है? उसे बताइये। उसका श्रवण करनेके लिये हमारे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! भगवान् विष्णुके लिये जागरण करते समय गान करनेका जो फल बताया गया है, उसका क्रमशः वर्णन करता हूँ; सुनो। इस पृथ्वीपर अवन्ती नामसे प्रसिद्ध एक नगरी थी, जहाँ शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु विराजमान थे। उस नगरीके किनारे एक चाण्डाल रहता था, जो संगीतमें कुशल था। वह उत्तम वृत्तिसे धन पैदा करके कुटुम्बके लोगोंका भरण-पोषण करता था। भगवान् विष्णुके प्रति उसकी बड़ी भक्ति थी। वह अपने व्रतका दृढ़तापूर्वक पालन करता था। प्रत्येक मासकी एकादशी तिथिको वह उपवास करता और भगवान्‌के मन्दिरके पास जाकर उन्हें गीत सुनाया करता था। वह गीत भगवान् विष्णुके नामोंसे युक्त और उनकी अवतार-कथासे सम्बन्ध रखनेवाला होता था। गान्धार, षड्ज, निषाद, पञ्चम और धैवत आदि स्वरोंसे वह रात्रि-जागरणके समय विभिन्न गाथाओंद्वारा श्रीविष्णुका यशोगान करता था। द्वादशीको प्रातःकाल भगवान्‌को प्रणाम करके अपने घर आता और पहले दामाद, भानजे और

कन्याओंको भोजन कराकर पीछे स्वयं सपरिवार भोजन करता था। इस प्रकार विचित्र गीतोंद्वारा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए

* धन्यास्ते पुरुषा लोके येऽर्चयन्ति सदा हरिम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः। सम्पूज्य तं सुरवरं प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥
(२२६। १३-१४)

उस चाण्डालकी आयुका अधिकांश भाग बीत गया। एक दिन चैत्रके कृष्णपक्षकी एकादशी तिथिको वह भगवान् विष्णुकी सेवा करनेके लिये जंगली पुष्पोंका संग्रह करनेके निमित्त भक्तिपूर्वक उत्तम वनमें गया। क्षिप्राके तटपर महान् वनके भीतर एक बहेड़ेका वृक्ष था। उसके नीचे पहुँचनेपर किसी राक्षसने उस चाण्डालको देखा और भक्षण करनेके लिये पकड़ लिया। यह देख चाण्डालने उस राक्षससे कहा—'भद्र! आज तुम मुझे न खाओ, कल प्रातःकाल खा लेना। मैं सत्य कहता हूँ, फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगा। राक्षस! आज मेरा बहुत बड़ा कार्य है, अतः मुझे छोड़ दो। मुझे भगवान् विष्णुकी सेवाके लिये रात्रिमें जागरण करना है। तुम्हें उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। ब्रह्मराक्षस! सम्पूर्ण जगत्का मूल सत्य ही है, अतः मेरी बात सुनो। मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, पुनः तुम्हारे पास लौट आऊँगा। परायी स्त्रियोंके पास जाने और पराये धनको हड़प लेनेवाले मनुष्योंको जिस पापकी प्राप्ति होती है, ब्रह्महत्यारे, शराबी और गुरुपत्नीगामी तथा शूद्रजातीय स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले द्विजको जो पाप होता है, कृतघ्न, मित्रघाती, दुबारा ब्याही हुई स्त्रीके पति, क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले पुरुष, कृपण तथा वन्ध्याके अतिथिको जो पाप लगता है, अमावस्या, अष्टमी, षष्ठी और दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीमें स्त्रीसमागमसे जो पाप होता है, ब्राह्मण यदि रजस्वला स्त्रीके पास जाय अथवा श्राद्ध करके स्त्रीसमागम करे, उससे जो पाप लगता है, मल-भोजन करनेपर जिस पापकी प्राप्ति होती है, मित्रकी पत्नीके साथ सम्भोग करनेवालोंको जो दोष प्राप्त होता है, चुगलखोर, दम्भी, मायावी और मधुघातीको जिस पापकी प्राप्ति होती है, ब्राह्मणको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर उसे न देनेवालेको जो दोष लगता है, स्त्री-हत्या, बाल-हत्या और मिथ्याभाषण करनेवालेको जिस पापका भागी होना पड़ता है, देवता, वेद, ब्राह्मण, राजा, मित्र और साध्वी स्त्रीकी निन्दा करनेसे जो पाप होता है, गुरुको झूठा कलङ्क देने, वनमें आग लगाने, गौकी हत्या करने, ब्राह्मणाधम होने और बड़े भाईके अविवाहित रहते स्वयं विवाह कर लेनेपर जो पाप लगता है तथा भ्रूणहत्या करनेवाले मनुष्योंको जिस पापकी प्राप्ति होती है—अथवा यहाँ बहुत-से शपथोंका वर्णन करनेसे क्या लाभ। राक्षस! एक भयंकर शपथ सुन लो; यद्यपि वह कहने योग्य नहीं है तो भी कहता हूँ—अपनी कन्याको बेचकर जीविका चलानेवाले, झूठी गवाही देने एवं यज्ञके अनधिकारीसे यज्ञ करानेवाले मनुष्योंको जिस पापका भागी होना पड़ता है तथा संन्यासी और ब्रह्मचारीको कामभोगमें आसक्त होनेपर जिस पापकी प्राप्ति होती है, उक्त सभी पापोंसे मैं लिप्त होऊँ, यदि तुम्हारे पास लौटकर न आऊँ।'

चाण्डालकी यह बात सुनकर ब्रह्मराक्षसको बड़ा विस्मय हुआ। उसने कहा—'जाओ, सत्यके द्वारा अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करना।' राक्षसके यों कहनेपर चाण्डाल फूल लेकर भगवान् विष्णुके मन्दिरपर आया। उसने सभी फूल ब्राह्मणको दे दिये। ब्राह्मणने उन्हें जलसे धोकर उनके द्वारा भगवान् विष्णुका पूजन किया और अपने घरकी राह ली; किंतु चाण्डालने मन्दिरके बाहर ही भूमिपर बैठकर उपवासपूर्वक गीत गाते हुए रातभर जागरण किया। रात बीती, सबेरा हुआ और चाण्डालने स्नान करके भगवान्को नमस्कार किया; फिर अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये वह राक्षसके पास चल दिया। उसे जाते देख किसी मनुष्यने पूछा—'भद्र! कहाँ जाते हो?' चाण्डालने सब बातें कह सुनायीं। तब वह मनुष्य फिर बोला—'यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका साधन है; अतः विद्वान् पुरुषको बड़े यत्नसे इसका पालन करना चाहिये। मनुष्य जीवित रहे तो वह धर्म, अर्थ, सुख और श्रेष्ठ मोक्ष-गतिको प्राप्त कर लेता है। जीवित रहनेपर वह कीर्तिका भी उपार्जन करता है। संसारमें मरे हुए मनुष्यकी कोई चर्चा ही नहीं करता।' उसकी बात सुनकर चाण्डालने युक्तियुक्त वचनोंमें उत्तर

दिया—'भद्र! मैंने शपथ खायी है, अतः सत्यको आगे करके राक्षसके पास जाता हूँ।' तब उस मनुष्यने फिर कहा—'साधो! तुम ऐसी मूर्खता क्यों करते हो? क्या तुमने मनुजीका यह वचन नहीं सुना है—'गौ, स्त्री और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये, विवाहके समय, रतिके प्रसङ्गमें, प्राण- संकटकालमें, सर्वस्वका अपहरण होते समय—इन पाँच अवसरोंपर असत्यभाषणसे पाप नहीं लगता।'*

उस मनुष्यका कथन सुनकर चाण्डालने पुनः उत्तर दिया—'आपका कल्याण हो, आप ऐसी बात मुँहसे न निकालें। संसारमें सत्यका ही आदर होता है। भूतलपर जो कुछ भी सुख-सामग्री है, वह सत्यसे ही प्राप्त होती है। सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही जलमें रसकी स्थिति है, सत्यसे ही आग जलती और सत्यसे ही वायु चलती है। मनुष्योंको सत्यसे ही धर्म, अर्थ, काम और दुर्लभ मोक्षकी प्राप्ति होती है; अतः सत्यका परित्याग न करे। लोकमें सत्य ही परब्रह्म है, यज्ञोंमें भी सत्य ही सबसे उत्तम है तथा सत्य स्वर्गसे आया हुआ है; इसलिये सत्यको कभी नहीं छोड़ना चाहिये।'†

यों कहकर वह चाण्डाल उस मनुष्यको चुप कराकर उस स्थानपर गया, जहाँ प्राणियोंका वध करनेवाला ब्रह्मराक्षस रहता था। चाण्डालको आया देख ब्रह्मराक्षसके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उसने सिर हिलाकर कहा—'महाभाग! तुम्हें साधुवाद! तुम वास्तवमें सत्य वचनका पालन करनेवाले हो। तुम तो सत्यस्वरूप हो। मैं तुम्हें चाण्डाल नहीं मानता। तुम्हारे इस कर्मसे मैं तुम्हें पवित्र ब्राह्मण समझता हूँ। तुम्हारे मुखमें कल्याणका निवास है। अब मैं तुमसे धर्म-सम्बन्धी कुछ बातें पूछता हूँ, बताओ। 'तुमने भगवान् विष्णुके मन्दिरमें

कौन-सा कार्य किया?' मातङ्गने कहा—'सुनो, मैंने मन्दिरके नीचे बैठकर भगवान्‌के सामने मस्तक झुकाया और उनका यशोगान करते हुए सारी रात जागरण किया।' ब्रह्मराक्षसने फिर पूछा—'बताओ, तुम्हें इस प्रकार भक्तिपूर्वक विष्णुमन्दिरमें जागरण करते कितना समय व्यतीत हो गया?' चाण्डालने हँसकर कहा—'राक्षस! मुझे प्रत्येक मासकी एकादशीको जागरण करते बीस वर्ष व्यतीत हो गये!' यह सुनकर ब्रह्मराक्षसने कहा—'साधो! अब मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, वह करो। मुझे एक रातके जागरणका फल अर्पण करो। महाभाग! ऐसा करनेसे तुम्हें छुटकारा मिल जायगा; अन्यथा मैं तीन बार

---

* गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं विवाहकाले सुरतप्रसङ्गे। प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥
(२२७। ५०)

† सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनापो रसात्मिकाः। ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुतः॥
धर्मार्थकामसम्प्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा। सत्येन जायते पुंसां तस्मात् सत्यं न संत्यजेत्॥
सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्यं यज्ञेषु चोत्तमम्। सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न संत्यजेत्॥
(२२७। ५३—५५)

सत्यकी दुहाई देकर कहता हूँ कि तुम्हें कदापि नहीं छोड़ूँगा।' यों कहकर वह चुप हो गया।

चाण्डालने कहा—'निशाचर! मैंने तुम्हें अपना शरीर अर्पित कर दिया है। अतः अब दूसरी बात करनेसे क्या लाभ। तुम मुझे इच्छानुसार खा जाओ।' तब राक्षसने फिर कहा—'अच्छा, रातके दो ही पहरके जागरण और संगीतका पुण्य मुझे दे दो। तुम्हें मुझपर भी कृपा करनी चाहिये।' यह सुनकर चाण्डालने राक्षससे कहा—'यह कैसी बेसिर-पैरकी बात करते हो। मुझे इच्छानुसार खा लो। मैं तुम्हें जागरणका पुण्य नहीं दूँगा।' चाण्डालकी बात सुनकर ब्रह्मराक्षसने कहा—'भाई! तुम तो अपने धर्म-कर्मसे सुरक्षित हो; कौन ऐसा अज्ञानी और दुष्ट बुद्धिका पुरुष होगा, जो तुम्हारी ओर देखने, तुमपर आक्रमण करने अथवा तुम्हें पीड़ा देनेका साहस कर सके। दीन, पापग्रस्त, विषयविमोहित, नरकपीड़ित और मूढ़ जीवपर साधु पुरुष सदा ही दयालु रहते हैं। महाभाग! तुम मुझपर कृपा करके एक ही यामके जागरणका पुण्य दे दो अथवा अपने घरको लौट जाओ।' चाण्डालने फिर उत्तर दिया—'न तो मैं अपने घर लौटूँगा और न तुम्हें किसी तरह एक यामके जागरणका पुण्य ही दूँगा।' यह सुनकर ब्रह्मराक्षस हँस पड़ा और बोला—'भाई! रात्रि व्यतीत होते समय जो तुमने अन्तिम गीत गाया हो, उसीका फल मुझे दे दो और पापसे मेरा उद्धार करो।'

तब चाण्डालने उससे कहा—'यदि तुम आजसे किसी प्राणीका वध न करो तो मैं तुम्हें अपने पिछले गीतका पुण्य दे सकता हूँ; अन्यथा नहीं।' 'बहुत अच्छा' कहकर ब्रह्मराक्षसने उसकी बात मान ली। तब चाण्डालने उसे आधे मुहूर्तके जागरण और गानका फल दे दिया। उसे पाकर ब्रह्मराक्षसने चाण्डालको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर तीर्थोंमें श्रेष्ठ पृथूदकतीर्थकी ओर चल दिया। वहाँ निराहार रहनेका संकल्प लेकर

ब्रह्मराक्षसने प्राण त्याग दिया। उस गीतके फलसे पुण्यकी वृद्धि होनेके कारण उसका उस राक्षसयोनिसे उद्धार हो गया। पृथूदकतीर्थके प्रभावसे दुर्लभ ब्रह्मलोकमें जाकर उसने दस हजार वर्षोंतक वहाँ निर्भय निवास किया। अन्तमें वह जितेन्द्रिय ब्राह्मण हुआ और उसे पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। अब चाण्डालकी शेष कथा कहता हूँ, सुनो! राक्षसके चले जानेपर वह बुद्धिमान् एवं संयमी चाण्डाल अपने घर आया। उस घटनासे चाण्डालके मनमें बड़ा वैराग्य हुआ। उसने अपनी पत्नीकी रक्षाका भार पुत्रोंपर डाल दिया और स्वयं पृथ्वीकी परिक्रमा आरम्भ कर दी। कोकामुखसे लेकर जहाँ भगवान् स्कन्दके दर्शन होते हैं, वहाँतक गया। स्कन्दका दर्शन करके वह धारा नगरीमें गया। वहाँ भी प्रदक्षिणा करके वह पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचलपर जाकर पापमोचन तीर्थमें पहुँचा। वहाँ उस चाण्डालने स्नान किया, जो सब पापोंको दूर करनेवाला है। फिर पापरहित हो वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ।

श्रीविष्णुमें भक्ति होनेका क्रम और कलि-धर्मका निरूपण

मुनियोंने कहा—महामते! हमने भगवान् श्रीकृष्णके समीप जागरणपूर्वक गीत सुनानेका फल सुना, जिससे वह चाण्डाल परम गतिको प्राप्त हुआ। अब जिस तपस्या अथवा कर्मसे भगवान् विष्णुमें हमारी भक्ति हो सके, वह हमें बताइये। इस समय हम यही विषय सुनना चाहते हैं।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति महान् फल देनेवाली है। वह मनुष्यको जिस प्रकार होती है, वह सब क्रमशः बतलाता हूँ; ध्यान देकर सुनो। ब्राह्मणो! यह संसार अत्यन्त घोर और समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर है। नाना प्रकारके सैकड़ों दुःखोंसे व्याप्त और मनुष्योंके हृदयमें महान् मोहका संचार करनेवाला है। इस जगत्में पशु-पक्षी आदि हजारों योनियोंमें बारंबार जन्म लेनेके पश्चात् देहधारी जीव कभी किसी प्रकार मनुष्यका जन्म पाता है। मनुष्योंमें भी ब्राह्मणत्व, ब्राह्मणत्वमें भी विवेक, विवेकसे भी धर्मनिष्ठ बुद्धि और बुद्धिसे भी कल्याणमय मार्गोंका ग्रहण होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्योंके पूर्वजन्मका संचित पाप जबतक नष्ट नहीं हो जाता, तबतक जगन्मय भगवान् वासुदेवमें उनकी भक्ति नहीं होती। अतः ब्राह्मणो! श्रीकृष्णमें जिस प्रकार भक्ति होती है, वह सुनो। अन्य देवताओंके प्रति मनुष्यकी जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा तद्गतचित्तसे भक्ति होती है, उससे यज्ञमें उसका मन लगता है; फिर वह एकाग्रचित्त होकर अग्निकी उपासना करता है। अग्निदेवके संतुष्ट होनेपर भगवान् भास्करमें उसकी भक्ति होती है। तबसे वह निरन्तर सूर्यदेवकी आराधना करने लगता है। भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर उसकी भक्ति भगवान् शंकरमें होती है, फिर वह बड़े यत्नके साथ विधिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करता है। जब महादेवजी संतुष्ट होते हैं, तब मनुष्यकी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णमें होती है। तब वह वासुदेवसंज्ञक अविनाशी भगवान् जगन्नाथका पूजन करके भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है।

मुनियोंने पूछा—महामुने! संसारमें जो अवैष्णव मनुष्य देखे जाते हैं, वे श्रीविष्णुका पूजन क्यों नहीं करते? इसका कारण बतलाइये।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! इस संसारमें दो प्रकारके भूतसर्ग विख्यात हैं—एक आसुर और दूसरा दैव। पूर्वकालमें इन दोनोंकी सृष्टि ब्रह्माजीने ही की थी। दैवी प्रकृतिका आश्रय लेनेवाले मनुष्य भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं और आसुरी प्रकृतिको प्राप्त हुए लोग श्रीहरिकी निन्दा किया करते हैं। ऐसे लोग मनुष्योंमें अधम हैं। श्रीहरिकी मायासे उनकी बुद्धि मारी गयी है। ब्राह्मणो! वे श्रीहरिको न पाकर नीच गतिमें जाते हैं। भगवान्की माया बड़ी गूढ़ है। देवताओं और असुरोंके लिये भी उसका ज्ञान होना कठिन है। वह मनुष्योंके हृदयमें महान् मोहका संचार करती है। जिन्होंने मनको वशमें नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये उस मायाको पार करना कठिन है।

मुनियोंने कहा—महर्षे! अब हम आपसे जगत्के संहारकी कथा सुनना चाहते हैं। कल्पके अन्तमें जो महाप्रलय होता है, उसका वर्णन कीजिये।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! कल्पके अन्तमें तथा प्राकृत प्रलयमें जो जगत्का संहार होता है, उसका वर्णन सुनो। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं, जो देवताओंके बारह हजार दिव्य वर्षोंमें समाप्त होते हैं। समस्त चतुर्युग स्वरूपसे एक-से ही होते हैं। सृष्टिके आरम्भमें सत्ययुग होता है तथा अन्तमें कलियुग रहता है। ब्रह्माजी प्रथम कृतयुगमें जिस प्रकार सृष्टिका आरम्भ करते हैं, वैसे ही अन्तिम कलियुगमें उसका उपसंहार करते हैं।

मुनियोंने कहा—भगवन्! कलिके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, जिसमें चार चरणोंवाले भगवान् धर्म खण्डित हो जाते हैं।

व्यासजी बोले—निष्पाप मुनियो! तुम जो मुझसे कलिका स्वरूप पूछते हो, वह तो बहुत बड़ा है; तथापि मैं संक्षेपसे बतलाता हूँ, सुनो। कलियुगमें मनुष्योंकी वर्ण और आश्रमसम्बन्धी आचारमें प्रवृत्ति नहीं होगी। सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेदकी आज्ञाके पालनमें भी कोई प्रवृत्त न होगा। कलियुगमें विवाहको धर्म नहीं माना जायगा। शिष्य गुरुके अधीन नहीं रहेंगे। पुत्र भी अपने धर्मका पालन नहीं करेंगे। अग्निहोत्रका नियम उठ जायगा। कोई किसी भी कुलमें क्यों न उत्पन्न हुआ हो—जो बलवान् होगा, वही कलियुगमें सबका स्वामी होगा। सभी वर्णोंके लोग कन्या बेचकर जीवन-निर्वाह करेंगे। ब्राह्मणो! कलियुगमें जिस किसीका जो भी वचन होगा, सब शास्त्र ही माना जायगा। कलियुगमें सब देवता होंगे और सबके लिये सब आश्रम होंगे। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान करके उसमें उपवास, परिश्रम और धनका व्यय करना धर्म कहा जायगा। कलियुगमें थोड़े-से ही धनसे मनुष्योंको बड़ा घमंड होगा। स्त्रियोंको अपने केशोंपर ही रूपवती होनेका गर्व होगा। सुवर्ण, मणि और रत्न आदि तथा वस्त्रोंके भी नष्ट हो जानेपर स्त्रियाँ केशोंसे ही शृङ्गार करेंगी। कलियुगकी स्त्रियाँ धनहीन पतिको त्याग देंगी। उस समय धनवान् पुरुष ही युवतियोंका स्वामी होगा। जो-जो अधिक देगा, उसे-उसे ही मनुष्य अपना मालिक मानेंगे। उस समय लोग प्रभुताके ही कारण सम्बन्ध रखेंगे। द्रव्यराशि घर बनानेमें ही समाप्त हो जायगी। उससे दान-पुण्यादि न होंगे। बुद्धि द्रव्योंके संग्रहमात्रमें ही लगी रहेगी। उसके द्वारा आत्मचिन्तन न होगा। सारा धन उपभोगमें ही समाप्त हो जायगा। उससे धर्मका अनुष्ठान न होगा। कलियुगकी स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होंगी। हाव-भाव-विलासमें ही उनकी स्पृहा रहेगी। अन्यायसे धन पैदा करनेवाले पुरुषोंमें ही उनकी आसक्ति होगी। सुहृदोंके निषेध करनेपर भी मनुष्य एक-एक पाईके लिये भी दूसरोंके स्वार्थकी हानि कर देंगे।

ब्राह्मणो! कलियुगमें सब लोग सदा सबके साथ समानताका दावा करेंगे। गायोंके प्रति तभीतक गौरव रहेगा, जबतक कि वे दूध देती रहेंगी। कलियुगकी प्रजा प्रायः अनावृष्टि और क्षुधाके भयसे व्याकुल रहेगी। सबके नेत्र आकाशकी ओर लगे रहेंगे। वर्षा न होनेसे दुःखी मनुष्य तपस्वी-जनोंकी भाँति मूल-फल और पत्ते खाकर रहेंगे और कितने ही आत्मघात कर लेंगे। कलिमें सदा अकाल ही पड़ता रहेगा। सब लोग सदा असमर्थ होकर क्लेश भोगेंगे। कभी किन्हीं मानवोंको थोड़ा सुख भी मिल जायगा। सब लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे। अग्निहोत्र, देवपूजा, अतिथि-सत्कार, श्राद्ध और तर्पणकी क्रिया कोई नहीं करेंगे। कलियुगकी स्त्रियाँ लोभी, नाटी, अधिक खानेवाली, बहुत संतान पैदा करनेवाली और मन्द भाग्यवाली होंगी। वे दोनों हाथोंसे सिर खुजलाती रहेंगी। गुरुजनों तथा पतिकी आज्ञाका भी उल्लङ्घन करेंगी तथा पर्देके भीतर नहीं रहेगी। अपना ही पेट पालेंगी, क्रोधमें भरी रहेंगी। देह-शुद्धिकी ओर ध्यान नहीं देंगी और असत्य एवं कटु वचन बोलेंगी। इतना ही नहीं, वे दुराचारिणी होकर दुराचारी पुरुषोंसे मिलनेकी अभिलाषा करेंगी। कुलवती स्त्रियाँ भी अन्य पुरुषोंके साथ व्यभिचार करेंगी। ब्रह्मचारी लोग वेदोक्त व्रतका पालन किये बिना ही वेदाध्ययन करेंगे। गृहस्थ पुरुष न तो हवन करेंगे और न सत्पात्रको उचित दान ही देंगे। वानप्रस्थ आश्रममें रहनेवाले लोग वनके कन्द-मूल आदिसे निर्वाह न करके ग्रामीण आहारका संग्रह करेंगे और संन्यासी भी मित्र

आदिके स्नेह-बन्धनमें बँधे रहेंगे। कलियुग आनेपर राजालोग प्रजाकी रक्षा नहीं करेंगे, अपितु कर लेनेके बहाने प्रजाके ही धनका अपहरण करनेवाले होंगे।* उस समय जिस-जिसके पास हाथी, घोड़े और रथ होंगे, वही-वही राजा होगा और जो-जो निर्बल होंगे, वे ही सेवक होंगे। वैश्यलोग कृषि, वाणिज्य आदि अपने कर्मोंको छोड़कर शूद्र-वृत्तिसे रहेंगे। शिल्प-कर्मसे जीवन-निर्वाह करेंगे। इसी प्रकार शूद्र भी संन्यासका चिह्न धारण करके भिक्षापर जीवन-निर्वाह करेंगे। वे अधम मनुष्य संस्कारहीन होते हुए भी लोगोंको ठगनेके लिये पाखण्ड-वृत्तिका आश्रय लेंगे। दुर्भिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त उपद्रवग्रस्त होकर प्रजाजन ऐसे देशोंमें चले जायँगे, जहाँ गेहूँ और जौ आदिकी अधिकता होगी। उस समय वेदमार्गका लोप, पाखण्डकी अधिकता और अधर्मकी वृद्धि होनेसे लोगोंकी आयु बहुत थोड़ी होगी। कलियुगमें पाँच, छः अथवा सात वर्षकी स्त्री और आठ, नौ या दस वर्षके पुरुषोंके ही संतानें होने लग जायँगी। बारह वर्षकी अवस्थामें ही बाल सफेद होने लगेंगे। घोर कलियुग आनेपर कोई मनुष्य बीस वर्षतक जीवित नहीं रहेगा। उस समय लोग मन्दबुद्धि, व्यर्थ चिह्न धारण करनेवाले और दुष्ट अन्तःकरणवाले होंगे; अतः वे थोड़े ही समयमें नष्ट हो जायँगे।

ब्राह्मणो! जब-जब इस जगत्‌में पाखण्ड-वृत्ति दृष्टिगोचर होने लगे, तब-तब विद्वान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। जब-जब वैदिक मार्गका अनुसरण करनेवाले साधु पुरुषोंकी हानि हो, तब-तब बुद्धिमान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। जब धर्मात्मा मनुष्योंके आरम्भ किये हुए कार्य शिथिल हो जायँ, तब उसमें विद्वानोंको कलियुगकी प्रधानताका अनुमान करना चाहिये† जब-जब यज्ञोंके अधीश्वर भगवान् पुरुषोत्तमका लोग यज्ञोंद्वारा यजन न करें, तब-तब यह समझना चाहिये कि कलियुगका बल बढ़ रहा है। द्विजवरो! जब वेदवादमें प्रेम न हो और पाखण्डमें अनुराग बढ़ता जाय, तब विद्वान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। ब्राह्मणो! कलियुगमें पाखण्डसे दूषित चित्तवाले मनुष्य सबकी सृष्टि करनेवाले जगत्पति भगवान् विष्णुकी आराधना नहीं करेंगे। उस समय पाखण्डसे प्रभावित मनुष्य ऐसा कहेंगे कि 'देवताओंसे क्या लेना है। ब्राह्मणों और वेदोंसे क्या लाभ है। जलसे होनेवाली शुद्धिमें क्या रखा है।'‡ कलियुगमें मेघ थोड़ी वृष्टि करेंगे। खेतीमें बहुत कम फल लगेंगे और वृक्षोंके फल सारहीन होंगे। कलिमें प्रायः लोग घुटनोंतक वस्त्र पहनेंगे। वृक्षोंमें शमीकी ही अधिकता होगी। चारों वर्णोंके सब लोग प्रायः शूद्रवत् हो जायँगे।@ कलियुगके आनेपर प्रायः

---

* अरक्षितारो हर्तारः शुल्कव्याजेन पार्थिवाः। हारिणो जनवित्तानां सम्प्राप्ते च कलौ युगे॥ (२२९। ३४)

† यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरत्रोपलक्ष्यते। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥
यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम्। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥
प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम्। तदानुमेयं प्राधान्यं कलेर्विप्रा विचक्षणैः॥ (२२९। ४४-४६)

‡ किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शौचेनाम्बुजन्मना। इत्येवं प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहता नराः॥ (२२९। ५०)

@ जानुप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः। शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे॥ (२२९। ५२)

छोटे-छोटे धान्य होंगे। अधिकतर बकरियोंका दूध मिलेगा और उशीर (खस) ही एकमात्र अनुलेपन होगा। कलियुगमें अधिकतर सास और ससुर ही लोगोंके गुरुजन होंगे। मुनिवरो! उस समय मनोहारिणी भार्या और साले आदि ही सुहृद् समझे जायँगे। लोग अपने ससुरके अनुगामी होकर कहेंगे कि 'कौन किसकी माता है और कौन किसका पिता। सब जीव अपने कर्मोंके अनुसार ही जन्मते और मरते हैं।'* उस समय थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्य मन, वाणी और शरीरके दोषोंसे प्रभावित होकर प्रतिदिन बारंबार पाप करेंगे। सत्य, शौच और लज्जासे रहित मनुष्योंके लिये जो-जो दुःखकी बात हो सकती है, वह सब कलिकालमें होगी। संसारमें स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहाका शब्द नहीं सुनायी देगा। उस समय स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण कोई विरला ही होगा। एक विशेषता अवश्य है, कलियुगमें थोड़ा-सा ही प्रयत्न करनेपर मनुष्य वह उत्तम पुण्यराशि प्राप्त कर सकता है, जो सत्ययुगमें बहुत बड़ी तपस्यासे ही साध्य हो सकती है।

ब्राह्मणो! कलियुग धन्य है, जहाँ थोड़े ही क्लेशसे महान् फलकी प्राप्ति होती है तथा स्त्री और शूद्र भी धन्य हैं। इसके सिवा और भी सुनो। सत्ययुगमें दस वर्षतक तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदिका अनुष्ठान करनेसे जो फल मिलता है, वह त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास तथा कलियुगमें एक दिन-रातके ही अनुष्ठानसे मिल जाता है। इसीलिये मैंने कलियुगको श्रेष्ठ बताया। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें पूजन करनेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वही कलियुगमें केशवका नाम-कीर्तन करनेमात्रसे मिल जाता है। धर्मज्ञ ब्राह्मणो! इस कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही मनुष्यको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है। इसीलिये मैं कलियुगसे अधिक संतुष्ट हूँ।†

अब शूद्रोंकी विशेषताका वर्णन सुनो। द्विजोंको पहले ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है। फिर धर्मतः प्राप्त हुए धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करना पड़ता है। इसमें भी व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन और व्यर्थ धन द्विजोंके पतनके कारण होते हैं; इसलिये उन्हें सदा संयमी रहना आवश्यक है। यदि वे सभी वस्तुओंमें विधिका पालन न करें तो उन्हें दोष लगता है। यहाँतक कि भोजन और पान आदि भी उनकी इच्छाके अनुसार नहीं प्राप्त होते। वे समस्त कार्योंमें परतन्त्र होते हैं। इस प्रकार विनीत भावसे महान् क्लेश उठाकर वे उत्तम लोकोंपर अधिकार प्राप्त करते हैं; परन्तु मन्त्रहीन पाक-यज्ञका अधिकारी शूद्र केवल द्विजोंकी सेवा करनेमात्रसे अपने लिये अभीष्ट पुण्यलोकोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिये शूद्र अन्य वर्णोंकी अपेक्षा अधिक धन्यवादका पात्र है। स्त्रियाँ क्यों धन्य हैं, इसका कारण बतलाया जाता है। पुरुषोंको अपने धर्मके विपरीत न चलकर सदा ही धनोपार्जन करना, उसे सुपात्रोंको देना और विधिपूर्वक यज्ञ करना आवश्यक

---

* कस्य माता पिता कस्य यदा कर्मात्मकः पुमान्। इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः॥
(२२९। ५५)

† धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पक्लेशैर्महत्फलम्। तथा भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत॥
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्। द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः। प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साध्विति भाषितम्॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ। स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलौ॥
(२२९। ६१—६५)

है। धनके उपार्जन और संरक्षणमें महान् क्लेश उठाना पड़ता है तथा उसे उत्तम कार्यमें लगानेके लिये मनुष्योंको जो गहरी चिन्ता करनी पड़ती है, वह सबको विदित है। ये तथा और भी बहुत-से क्लेश सहन करके पुरुष क्रमशः प्राजापत्य आदि शुभ लोक प्राप्त करते हैं; परंतु स्त्री मन, वाणी और क्रियाद्वारा केवल पतिकी सेवा करनेमात्रसे उसके समान लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लेती है। वे महान् क्लेशके बिना ही उन्हीं लोकोंमें जाती हैं, जिनमें क्लेश-साध्य उपाय करके पुरुष जाता है; इसलिये तीसरी बार मैंने स्त्रियोंको साधुवाद दिया है। ब्राह्मणो! यह मैंने कलियुग आदिकी श्रेष्ठताका कारण बताया है। अब तुमलोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हो, उसे पूछो; मैं तुम्हारे इच्छानुसार उसका भी वर्णन करूँगा। जो अपने सद्गुणरूपी जलसे समस्त पापरूपी पङ्कको धो चुके हैं; उनके द्वारा थोड़े ही प्रयत्नसे कलियुगमें धर्मकी सिद्धि हो जाती है। मुनिवरो! शूद्र केवल द्विजोंकी सेवामें तत्पर रहने तथा स्त्रियाँ पतिकी शुश्रूषा करनेमात्रसे अनायास ही पुण्यलोक प्राप्त कर लेती हैं। इसलिये इन तीनोंको ही मैंने परम धन्य माना है। द्विजातियोंको सत्य आदि तीनों युगोंमें धर्मका साधन करते समय अधिक क्लेश उठाना पड़ता है, किंतु कलियुगमें मनुष्य थोड़ी ही तपस्यासे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। मुनिवरो! जो कलियुगमें धर्मका आचरण करते हैं, वे धन्य हैं।* धर्मज्ञो! तुम्हारा जो अभीष्ट विषय था, उसे मैंने बिना पूछे बता दिया; अब और क्या करूँ?

युगान्तकालकी अवस्थाका निरूपण

मुनियोंने कहा—धर्मज्ञ! हमलोग धर्मकी लालसासे अब उस कलिकालके समीप आ पहुँचे हैं, जब कि स्वल्प कर्मके द्वारा हम सुखपूर्वक उत्तम धर्मको प्राप्त कर सकते हैं। अब जिन निमित्तों (लक्षणों)-से धर्मका नाश और त्रास एवं उद्वेग करनेवाले युगान्तकालकी उपस्थिति जानी जाय, उसे बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! युगान्तकालमें प्रजाकी रक्षा न करके केवल कर लेनेवाले राजा होंगे। वे अपनी ही रक्षामें लगे रहेंगे। उस समय प्रायः क्षत्रियेतर राजा होंगे। ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ रहकर जीवन-निर्वाह करेंगे और शूद्र ब्राह्मणोंके आचारका पालन करनेवाले होंगे। युगान्तकाल आनेपर श्रोत्रिय तथा काण्डपृष्ठ (अपने कुलका त्याग करके दूसरे कुलमें सम्मिलित हुए पुरुष) एक पंक्तिमें बैठकर यज्ञकर्मसे हीन हविष्य भोजन करेंगे। मनुष्य अशिष्ट, स्वार्थपरायण, नीच तथा मद्य और मांसके प्रेमी होकर मित्र-पत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाले होंगे। चोर राजाकी वृत्तिमें रहकर अपना काम करेंगे और राजा चोरोंका-सा बर्ताव करेंगे। सेवकगण स्वामीके दिये बिना ही उसके धनका उपभोग करनेवाले होंगे। सबको धनकी ही अभिलाषा होगी। साधु-संतोंके बर्तावका कहीं भी आदर न होगा। पतित मनुष्यके प्रति किसीके

---

* अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिद्ध्यति वै कलौ। नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः॥
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्मुनिसत्तमाः। तथा स्त्रीभिरनायासात् पतिशुश्रूषयैव हि॥
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतमं मतम्। धर्मसंराधने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु॥
तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः। धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः॥
(२२९। ७८—८१)

मनमें घृणा न होगी। पुरुष नकटे, खुले केशवाले और कुरूप होंगे। स्त्रियाँ सोलह वर्षकी आयुके पहले ही बच्चोंकी माँ बन जायँगी। युगान्तमें स्त्रियाँ धन लेकर पराये पुरुषोंसे समागम करेंगी। सभी द्विज वाजसनेयी (बृहदारण्यक उपनिषद्के ज्ञाता) बनकर ब्रह्मकी बात करेंगे। शूद्र तो वक्ता होंगे और ब्राह्मण चाण्डाल हो जायँगे। शूद्र शठतापूर्ण बुद्धिसे जीविका चलाते हुए मूँड़-मुँड़ाकर गेरुआ वस्त्र पहने धर्मका उपदेश करेंगे। युगान्तके समय शिकारी जीव अधिक होंगे, गौओंकी संख्या घटेगी और साधुओंके स्वभावमें परिवर्तन होगा। चाण्डाल तो गाँव या नगरके बीचमें बसेंगे और बीचमें रहनेवाले ऊँचे वर्णके लोग नगर या गाँवसे बाहर बसेंगे। सारी प्रजा लज्जाको तिलाञ्जलि दे उच्छृङ्खलतापूर्ण बर्तावसे नष्ट हो जायगी। दो सालके बछड़े हलमें जोते जायँगे और मेघ कहीं वर्षा करेगा, कहीं नहीं करेगा। शूरवीरके कुलमें उत्पन्न हुए सब लोग पृथ्वीके मालिक होंगे। प्रजावर्गके सभी मानव निम्नश्रेणीके हो जायँगे। प्रायः कोई मनुष्य धर्मका आचरण नहीं करेगा। अधिकांश भूमि ऊसर हो जायगी। सभी मार्ग बटमारोंसे घिरे होंगे। सभी वर्णोंके लोग वाणिज्य-वृत्तिवाले होंगे। पिताके धनको उनके दिये बिना ही लड़के आपसमें बाँट लेंगे, उसे हड़प लेनेकी चेष्टा करेंगे और लोभ आदि कारणोंसे वे परस्परविरोधी बने रहेंगे। सुकुमारता, रूप और रक्तका नाश हो जानेसे नारियाँ बालोंसे ही सुसज्जित होंगी। उनमें वीर्यहीन गृहस्थकी रति होगी। युगान्तकालमें पत्नीके समान दूसरा कोई अनुरागका पात्र नहीं होगा। पुरुष थोड़े हों और स्त्रियाँ अधिक, यह युगान्तकालकी पहचान है। संसारमें याचक अधिक होंगे और एक-दूसरेसे याचना करेंगे। किंतु कोई किसीको कुछ न देगा। सब लोग राजदण्ड, चोरी और अग्निकाण्ड आदिसे क्षीण होकर नष्ट हो जायँगे। खेतीमें फल नहीं लगेंगे। तरुण पुरुष बुड्ढोंकी तरह आलसी और अकर्मण्य होंगे। जो शील और सदाचारसे भ्रष्ट हैं, ऐसे लोग सुखी होंगे। वर्षाकालमें जोरसे आँधी चलेगी और पानीके साथ कंकड़-पत्थरोंकी वर्षा होगी। युगान्तकालमें परलोक संदेहका विषय हो जायगा। क्षत्रिय वैश्योंकी भाँति धन-धान्यके व्यापारसे जीविका चलायेंगे। युगान्तकालमें कोई किसीसे बन्धु-बान्धवका नाता नहीं निभायेगा। प्रतिज्ञा और शपथका पालन नहीं होगा। प्रायः लोग ऋणको चुकाये बिना ही हड़प लेंगे। लोगोंका हर्ष निष्फल और क्रोध सफल होगा। दूधके लिये घरमें बकरियाँ बाँधी जायँगी। इसी प्रकार जिसका शास्त्रमें कहीं विधान नहीं है, ऐसे यज्ञका अनुष्ठान होगा। मनुष्य अपनेको पण्डित समझेंगे और बिना प्रमाणके ही सब कार्य करेंगे। जारज, क्रूर कर्म करनेवाले और शराबी भी ब्रह्मवादी होंगे और अश्वमेध-यज्ञ करेंगे। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले ब्राह्मण धनकी तृष्णासे यज्ञके अनधिकारियोंसे भी यज्ञ करायेंगे। कोई भी अध्ययन नहीं करेगा। तारोंकी ज्योति फीकी पड़ जायगी, दसों दिशाएँ विपरीत होंगी। पुत्र पिताको और बहुएँ सासको अपना काम करनेके लिये भेजेंगी। इस प्रकार युगान्तकालमें पुरुष और स्त्रियाँ ऐसा ही जीवन व्यतीत करेंगी। द्विजगण अग्निहोत्र और अग्राशन* किये बिना ही भोजन कर लेंगे। भिक्षा दिये बिना और बलिवैश्वदेव किये बिना ही लोग स्वयं भोजन करेंगे। स्त्रियाँ सोये हुए पतियोंको धोखा देकर अन्य पुरुषोंके पास चली जायँगी।

मुनियोंने कहा—महर्षे! इस प्रकार धर्मका नाश होनेपर मनुष्य कहाँ जायँगे? वे कौन-सा

* बलिवैश्वदेव करके अतिथि आदिके लिये पहले ही जो अन्न निकाल दिया जाता है, वह 'अग्राशन' कहलाता है।

कर्म और कैसी चेष्टा करेंगे? वे किस प्रमाणको मानेंगे? उनकी कितनी आयु होगी? और किस सीमातक पहुँचकर वे सत्ययुग प्राप्त करेंगे?

व्यासजी बोले—मुनिवरो! तदनन्तर धर्मका नाश होनेसे समस्त प्रजा गुणहीन होगी। शीलका नाश हो जानेसे सबकी आयु घट जायगी। आयुकी हानिसे बलकी भी हानि होगी। बलकी हानिसे शरीरका रंग बदल जायगा। फिर शरीरमें रोगजनित पीड़ा होगी। उससे निर्वेद (वैराग्य) होगा। निर्वेदसे आत्मबोध होगा और आत्मबोधसे धर्मशीलता आयेगी। इस प्रकार अन्तिम सीमापर पहुँचकर लोगोंको सत्ययुगकी प्राप्ति होगी। कुछ लोग कोई उद्देश्य लेकर धर्मका आचरण करेंगे, कोई मध्यस्थ रहेंगे। कोई बहुत थोड़ी मात्रामें धर्मका आचरण करेंगे और कोई-कोई धर्मके प्रति केवल कौतूहल रखेंगे। कुछ लोग प्रत्यक्ष और अनुमानको ही प्रमाण मानेंगे। दूसरे लोग सबको अप्रमाण ही मानेंगे। कोई नास्तिकतापरायण, कोई धर्मका लोप करनेवाले और कोई द्विज अपनेको पण्डित माननेवाले होंगे। युगान्तकालके मनुष्य वर्तमानपर ही विश्वास करनेवाले, शास्त्रज्ञानसे रहित, दम्भी और अज्ञानी होंगे। इस प्रकार धर्मकी डाँवाडोल परिस्थितिमें श्रेष्ठ पुरुष दान और शीलरक्षामें तत्पर हो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करेंगे। जब जगत्‌के मनुष्य सर्वभक्षी हो जायँ, स्वयं ही आत्मरक्षाके लिये विवश हों—राजा आदिके द्वारा उनकी रक्षा असम्भव हो जाय, जब उनमें निर्दयता और निर्लज्जता आ जाय, तब उसे कषायका लक्षण समझना चाहिये। (क्रोध-लोभ आदिके विकारको कषाय कहते हैं। युगान्तकालमें वह पराकाष्ठाको पहुँच जाता है।) मुनिवरो! जब छोटे वर्णोंके लोग ब्राह्मणोंकी सनातन वृत्तिका आश्रय लेने लगें, तब वह भी कषायका ही लक्षण है। युगान्तकालमें बड़े-बड़े भयंकर युद्ध, बड़ी भारी वर्षा, प्रचण्ड आँधी और जोरोंकी गर्मी पड़ेगी। यह सब कषायका लक्षण है। लोग खेती काट लेंगे, कपड़े चुरा लेंगे, पानी पीनेका सामान और पेटियाँ भी चुरा ले जायँगे। कितने ही चोर ऐसे होंगे, जो चोरकी सम्पत्तिका भी अपहरण करेंगे। हत्यारोंकी भी हत्या करनेवाले लोग होंगे। चोरोंके द्वारा चोरोंका नाश हो जानेपर जनताका कल्याण होगा। युगान्तकालमें मर्त्यलोकके मनुष्योंकी आयु अधिक-से-अधिक तीस वर्षकी होगी। लोग दुर्बल, विषय-सेवनके कारण कृश तथा बुढ़ापे और शोकसे ग्रस्त होंगे। उस समय रोगोंके कारण उनकी इन्द्रियाँ क्षीण हो जायँगी। फिर धीरे-धीरे लोग साधु पुरुषोंकी सेवा, दान, सत्य एवं प्राणियोंकी रक्षामें तत्पर होंगे। इससे धर्मके एक चरणकी स्थापना होगी। उस धर्मसे लोगोंको कल्याणकी प्राप्ति होगी। लोगोंके गुणोंमें परिवर्तन होगा और धर्मसे लाभ होनेका अनुमान दृढ़ होता जायगा। फिर श्रेष्ठ क्या है, इस बातपर विचार करनेसे धर्म ही श्रेष्ठ दिखायी देगा। जिस प्रकार क्रमशः धर्मकी हानि हुई थी, उसी प्रकार धीरे-धीरे प्रजा धर्मकी वृद्धिको प्राप्त होगी। इस प्रकार धर्मको पूर्णरूपसे अपना लेनेपर सब लोग सत्ययुग देखेंगे। सत्ययुगमें सबका व्यवहार अच्छा होता है और युगान्तकालमें साधु-वृत्तिकी हानि बतायी जाती है। ऋषियोंने प्रत्येक युगमें देश-कालकी अवस्थाके अनुसार पुरुषोंकी स्थिति देखकर उनके अनुरूप आशीर्वाद कहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके साधन, देवताओंकी प्रतिक्रिया, पुण्य एवं शुभ आशीर्वाद तथा आयु—ये प्रत्येक युगमें अलग-अलग होते हैं। युगोंके परिवर्तन भी चिरकालसे चलते रहते हैं। उत्पत्ति और संहारके द्वारा नित्य परिवर्तनशील यह संसार कभी क्षणभरके लिये भी स्थिर नहीं रहता।

नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—समस्त प्राणियोंका प्रलय नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक भेदसे तीन प्रकारका माना गया है। कल्पके अन्तमें जो ब्राह्म प्रलय होता है, वह नैमित्तिक है। मोक्षको आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं और जो दो परार्द्ध व्यतीत होनेपर हुआ करता है, उसका नाम प्राकृत प्रलय है।

मुनियोंने कहा—भगवन्! हमें शास्त्रोंमें बताये अनुसार परार्द्धकी संख्याका वर्णन कीजिये, जिसको दूना करनेसे प्राकृत प्रलयका ज्ञान हो सके।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! एकसे दूसरे स्थानपर क्रमशः दसगुना गिनते चलते हैं, इस प्रकार अठारहवें स्थानतक गिननेपर जो अन्तिम संख्या होती है, उसका नाम परार्ध[1] है। परार्धको दूना करनेसे जो काल-संख्या होती है, वही प्राकृत प्रलयका समय है। उस समय सम्पूर्ण दृश्य जगत् अपने कारणभूत अव्यक्तमें लीन हो जाता है। मनुष्यका निमेष (पलक गिरनेका काल) मात्रा कहलाता है; क्योंकि एक मात्रावाले अक्षरके उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतना निमेषमें भी लगता है। पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा और तीस काष्ठाकी एक कला होती है। पंद्रह कला एक नाड़ीका प्रमाण है। साढ़े बारह पल ताँबेके बने हुए जलके पात्रसे नाड़ीका ज्ञान होता है। उस पात्रमें चार अंगुल लंबी, चार माशेकी सुवर्णमयी शलाकासे छिद्र किया जाता है। उस छिद्रको ऊपर करके जलमें डुबो देनेपर जितनी देरमें वह पात्र भर जाय, वही एक नाड़ीका समय है। मगधदेशीय मापसे वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है। दो नाड़ीका एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्तका एक दिन-रात और तीस दिन-रातका एक मास होता है। बारह मासका एक वर्ष होता है। देवलोकमें यही एक दिन-रात कहलाता है। ऐसे तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष होता है। बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग बताया गया है। एक हजार चतुर्युगको ब्रह्माका एक दिन कहते हैं। यही एक कल्प कहलाता है। द्विजवरो! उस एक कल्पमें चौदह मनु बीत जाते हैं। उसके अन्तमें जो प्रलय होता है, उसको ब्राह्म या नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। अब मैं उसके भंयकर स्वरूपका वर्णन करता

---

१. विष्णुपुराण ६। ३। ४ की विष्णुचित्तीय टीकामें यह संख्या इस प्रकार बतायी गयी है—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शङ्कु, समुद्र, अन्त्य, मध्य और परार्ध। उक्त श्लोककी ही टीका करते हुए श्रीधर स्वामीने वायुपुराणके कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं, जो इस प्रकार हैं—

कोटिकोटिसहस्राणि परार्धमिति कीर्त्यते। परार्धद्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः॥
स्थानं दशगुणं विद्यादेकं दश शतं ततः। सहस्रमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः॥
अर्बुदं न्यर्बुदं चैव वृन्दं चैव ततः परम्। खर्वं चैव निखर्वं च शङ्खं पद्मं तथैव च॥
समुद्रो मध्यमन्त्यश्च परार्धं परमेव च। एवमष्टादशैतानि पदानि गणनाविधौ॥

अर्थात् 'कोटि कोटि सहस्र १०००००००००००००००० को एक परार्ध कहते हैं। इसको दूना करनेपर एक 'पर' होता है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। नीचे लिखे अङ्कोंके १८ स्थान उत्तरोत्तर दसगुने जानने चाहिये—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म, समुद्र, मध्य, अन्त्य तथा परार्धको दूना करनेसे 'पर' होता है। विष्णुचित्तीय और श्रीधरी टीकाकी संख्याओंके नामोंमें कुछ अन्तर है—जैसे पूर्वगणनाके अनुसार 'नियुत' दस लाखका वाचक है और द्वितीय गणनाकी रीतिसे वह एक लाखका बोध कराता है, इत्यादि।

हूँ। इसके बाद प्राकृत प्रलयका वर्णन करूँगा। एक सहस्र चतुर्युग बीतनेपर यह भूतल प्राय: क्षीण हो जाता है। उस समय सौ वर्षोंतक अत्यन्त घोर अनावृष्टि होती है—वर्षाका अत्यन्त अभाव हो जाता है। मुनिवरो! उस अनावृष्टिके कारण अल्प शक्तिवाले अनेकानेक पार्थिव जीव अत्यन्त पीड़ित होनेसे नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर रुद्ररूपधारी अविनाशी भगवान् विष्णु जगत्का संहार करनेके लिये सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें लीन कर लेनेका यत्न करते हैं। मुनिवरो! उस समय भगवान् विष्णु सूर्यकी सातों किरणोंमें स्थित होकर पृथ्वीका सम्पूर्ण जल सोख लेते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों और पृथ्वीमें स्थित समस्त जलको सोखकर वे समूची वसुधाको सुखा डालते हैं। समुद्र, नदी, पर्वतीय नदी, झरने तथा पातालोंमें जो जल होता है, वह सब वे सुखा देते हैं। तत्पश्चात् भगवान्के प्रभावसे और सब जगहके जलका शोषण करनेसे परिपुष्ट हुई वे सूर्यकी सात रश्मियाँ सात सूर्योंके रूपमें प्रकट होती हैं। उस समय ऊपर-नीचे सब ओर जाज्वल्यमान होकर वे सातों सूर्य पाताललोकसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको जला डालते हैं। उन तेजस्वी सूर्योंकी किरणोंसे जलती हुई त्रिलोकी पर्वत, नदी और समुद्र आदिके सहित नीरस हो जाती है। तीनों लोकोंके जल और वृक्ष दग्ध हो जानेके कारण यह पृथ्वी कछुएकी पीठकी भाँति दिखायी देती है।

तदनन्तर भूतसर्गका संहार करनेवाले कालाग्निरुद्र-रूपधारी श्रीहरि शेषनागके श्वासजनित तापसे नीचेके समस्त पातालोंको जलाना आरम्भ करते हैं। सातों पातालोंको भस्म कर डालनेके पश्चात् वह प्रचण्ड अग्नि भूमिपर पहुँचकर सम्पूर्ण भूमण्डलको भी भस्म कर डालती है। फिर भुवर्लोक और स्वर्लोकको जलाकर ज्वाला-मालाओंके महान् आवर्तके रूपमें वह दारुण अग्नि सब ओर चक्कर लगाने लगती है। उस समय प्रचण्ड लपटोंसे घिरी हुई यह सारी त्रिलोकी जलते हुए कड़ाह-सी प्रतीत होती है। तत्पश्चात् भुवर्लोक और स्वर्लोकके निवासी अत्यन्त तापसे संतप्त एवं क्षीणशक्ति होकर कहीं रहनेके लिये स्थान न होनेसे महर्लोकमें चले जाते हैं। वहाँके लोग भी उस महान् तापसे तप्त हो वहाँसे हटकर जनलोकमें प्रवेश करते हैं। मुनिवरो! इसके बाद रुद्ररूपधारी श्रीजनार्दन सम्पूर्ण जगत्को दग्ध करके अपने मुखके नि:श्वाससे मेघोंको प्रकट करते हैं। उस समय आकाशमें घोर संवर्तक मेघ उमड़ आते हैं, जो बड़े-बड़े गजराजोंके समान प्रतीत होते हैं। वे बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर गर्जना करते हैं। उनका आकार विशाल होता है, अपनी विकट गर्जनासे वे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त कर लेते हैं और मूसलाधार पानी बरसाकर त्रिलोकीके भीतर फैले हुए उस अत्यन्त भयंकर अग्निको पूर्णरूपसे बुझा देते हैं। रथकी धुरीके समान स्थूल धाराओंकी वर्षा करते हुए सम्पूर्ण जगत्को जलसे आप्लावित कर देते हैं। सम्पूर्ण भूतलको जलमग्न करनेके पश्चात् वे भुवर्लोकको भी डुबो देते हैं। उस समय संसारमें सब ओर अन्धकार छा जाता है। चर और अचर सब नष्ट हो जाते हैं। उस अवस्थामें वे महान् संवर्तक मेघ सौ वर्षोंसे अधिक कालतक वर्षा करते रहते हैं।

द्विजवरो! जब सारा जल सप्तर्षियोंके स्थानतक पहुँचकर स्थिर होता है, उस समय सम्पूर्ण त्रिलोकी एकार्णवमग्न हो जाती है। तदनन्तर भगवान् विष्णुके नि:श्वाससे प्रकट हुई वायु उन मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है और सौ वर्षोंसे अधिक कालतक बहती रहती है। फिर विश्वके आदिकारण, अनादि, अचिन्त्य एवं सर्वभूतमय भूतभावन भगवान् सम्पूर्ण वायुको पीकर एकार्णवके जलमें शेषनागकी शय्यापर आसीन होते हैं। वे आदिकर्ता भगवान् श्रीहरि ब्रह्माजीका रूप धारण

करके शयन करते हैं। उस समय जनलोकके सनकादि सिद्ध उनकी स्तुति करते हैं और ब्रह्मलोकके मुमुक्ष उनका चिन्तन करते रहते हैं। वे परमेश्वर अपनी मायामयी दिव्य योगनिद्राका आश्रय ले अपने ही वासुदेव नामक स्वरूपका चिन्तन करते हैं। विप्रवरो! यह नैमित्तिक नामका प्रलय है। इसमें निमित्त यही है कि उस समय ब्रह्मरूपधारी श्रीहरि शयन करते हैं। जबतक सर्वात्मा श्रीहरि जागते हैं, तबतक सारा जगत् सचेष्ट रहता है और जब वे मायामयी शय्यापर शयन करते हैं, उस समय सारा जगत् विलीन हो जाता है। ब्रह्माजीका जो सहस्र चतुर्युगका दिन होता है, एकार्णवमें शयन करनेपर उनकी उतनी ही बड़ी रात्रि होती है। रात्रिके बाद जागनेपर ब्रह्मरूपधारी अजन्मा श्रीविष्णु पुनः सृष्टि करते हैं, यह बात मैं पहले बतला चुका हूँ। यह कल्पका संहार, अन्तर प्रलय अथवा नैमित्तिक प्रलय कहा गया। अब प्राकृत प्रलयका वर्णन सुनो।

अनावृष्टि और अग्नि आदिके द्वारा जब सब प्राणियोंका संहार हो जाता है और सम्पूर्ण लोक तथा समस्त पाताल नष्ट हो जाते हैं, उस समय भगवान् विष्णुकी इच्छासे प्राकृत प्रलयका अवसर उपस्थित होनेपर महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकारोंका क्षय हो जाता है। पहले भूमिके गन्ध आदि गुणको जल अपनेमें लीन कर लेता है। गन्ध नष्ट हो जानेसे पृथ्वीका लय हो जाता है। गन्धतन्मात्राका नाश हो जानेके कारण सारी पृथ्वी जलरूपमें परिणत हो जाती है। फिर तो जल बड़े वेगसे घोर शब्द करते हुए बढ़ने लगता है और सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर लेता है। वह कहीं तो स्थिर रहता है और कहीं वेगसे बहता रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक सब ओरसे तरङ्गमालाओंसे युक्त जल-राशिद्वारा व्याप्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् जलके गुण रसको तेज पी लेता है। रसतन्मात्राका नाश होनेसे जल अत्यन्त तप्त होकर सूख जाता है। रसका अपहरण होनेसे सम्पूर्ण जल तेजःस्वरूप हो जाता है। इस प्रकार जब तेजसे आवृत होकर जल अग्निकी-सी अवस्थामें पहुँच जाता है, तब अग्नितत्त्व सब ओर फैलकर उस जलको सोख लेता है। उस समय सम्पूर्ण जगत्में धीरे-धीरे आगकी लपटें फैल जाती हैं। जब सारा जगत् ऊपर-नीचे और इधर-उधर अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त हो जाता है, तब अग्निके प्रकाशक गुण रूपको वायुतत्त्व अपनेमें लीन कर लेता है। सबके कारणस्वरूप वायुमें जब अग्निका प्रकाशक तत्त्व—रूप विलीन हो जाता है, तब रूपतन्मात्राके नष्ट हो जानेसे अग्नितत्त्व रूपहीन हो स्वयं ही शान्त हो जाता है। फिर वायु प्रचण्ड गतिसे चलने लगती है। तेजस्तत्त्वके वायुमें स्थित हो जानेसे जगत्में प्रकाश नहीं रह जाता। तब वायुतत्त्व अपने उद्भव और लयस्थान आकाशका आश्रय ले ऊपर-नीचे, अगल-बगल एवं दसों दिशाओंमें बड़े वेगसे बहने लगता है। तदनन्तर वायुके भी गुण स्पर्शको आकाश ग्रस लेता है। इससे वायु शान्त हो जाती है और केवल आवरणशून्य आकाश रह जाता है। वह रूप, रस, स्पर्श, गन्ध तथा आकारसे रहित परम महान् आकाश सबको व्याप्त करके प्रकाशित होता है। आकाश सब ओरसे गोल एवं छत्रस्वरूप है। शब्द उसका गुण है। वह शब्दतन्मात्रायुक्त आकाश सम्पूर्ण विश्वको आवृत किये रहता है। तत्पश्चात् आकाशको भूतादि (तामस अहंकार), भूतादिको महत्तत्त्व और इन सबके सहित महत्तत्त्वके मूल प्रकृति अपनेमें लीन कर लेती है। द्विजवरो! न्यूनता और अधिकतासे रहित जो सत्त्वादि तीनों गुणोंकी साम्यावस्था है, उसीको प्रकृति कहते हैं। यही प्रधान भी कहलाती है। प्रधान ही सम्पूर्ण सृष्टिका प्रधान कारण है। ब्राह्मणो! इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रकृति व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी है। इसमें जो व्यक्त स्वरूप है, वह अव्यक्तमें लीन होता है।

द्विजवरो! प्रकृतिसे भिन्न जो एक सिद्ध, अक्षर, नित्य तथा सर्वव्यापी पुरुष है, वह भी सर्वभूतमय परमात्माका ही अंश है। जो सत्तामात्रस्वरूप, ज्ञेय, ज्ञानात्मा और देहात्मसंघातसे परे है, जिसमें नाम और जाति आदिकी समस्त कल्पनाएँ विलीन हो जाती हैं, वही परब्रह्म, परमधाम, परमात्मा तथा परमेश्वर है। उसीको विष्णु कहते हैं। भगवान् विष्णु ही इस सम्पूर्ण विश्वके रूपमें स्थित हैं। उनको प्राप्त हो जानेपर मनुष्य फिर इस संसारमें नहीं लौटता। मैंने जिस व्यक्ताव्यक्त रूपिणी प्रकृतिका वर्णन किया है, वह तथा पुरुष दोनों ही परमात्मामें लीन होते हैं। वह परमात्मा सबका आधार तथा परमेश्वर है। वेदों और वेदान्तोंमें विष्णुके नामसे उसीकी महिमाका गान किया जाता है। प्रवृत्ति (कर्मयोग) और निवृत्ति (सांख्ययोग)-के भेदसे वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं। उन दोनों ही कर्मोंद्वारा मनुष्य यज्ञस्वरूप भगवान्‌की आराधना करते हैं। प्रवृत्तिमार्गके अनुयायी पुरुष ऋक्, यजुः और सामवेदोक्त मार्गोंसे यज्ञोंके स्वामी यज्ञपुरुष भगवान् पुरुषोत्तमका यजन करते हैं तथा निवृत्ति एवं योगमार्गके पथिक ज्ञानयोगके द्वारा ज्ञानात्मा, ज्ञानमूर्ति एवं मुक्तिफलदायक भगवान् विष्णुकी आराधना करते हैं। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरोंके द्वारा जिस किसी वस्तुका प्रतिपादन किया जाता है और जो वाणीका विषय नहीं है, वह सब अविनाशी भगवान् विष्णु ही हैं। वे ही व्यक्त, वे ही अव्यक्त, वे ही अव्यय पुरुष तथा वे ही परमात्मा, विश्वात्मा और विश्वरूपधारी श्रीहरि हैं। वह व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी प्रकृति तथा पुरुष भी उन्हीं अव्याकृत परमात्मामें लीन होते हैं। ब्राह्मणो! मैंने जो परार्धका काल बतलाया है, वह सर्वेश्वर भगवान् विष्णुका दिन कहलाता है। व्यक्त जगत्‌के अव्यक्त प्रकृतिमें और प्रकृतिके पुरुषमें लीन होनेपर फिर उतने ही कालकी भगवान् विष्णुकी रात्रि होती है। तपोधनो! वास्तवमें नित्यस्वरूप परमात्मा श्रीविष्णुका न तो कोई दिन है और न रात्रि ही; तथापि केवल आरोपसे उनके विषयमें ऐसा कहा जाता है। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने तुमसे प्राकृत प्रलयका वर्णन किया।

आत्यन्तिक प्रलयका निरूपण, आध्यात्मिक आदि त्रिविध तापोंका वर्णन और भगवत्तत्त्वकी व्याख्या

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होनेपर विद्वान् आत्यन्तिक लयको प्राप्त होते हैं। आध्यात्मिक तापके भी दो भेद हैं—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक तापके बहुत-से भेद हैं। उनका वर्णन सुनो। शिरोरोग, प्रतिश्याय (पीनस), ज्वर, शूल, भगंदर, गुल्म (पेटकी गाँठ), अर्श (बवासीर), श्वयथु (सूजन), श्वास (दमा), छर्दि (वमन) आदि तथा नेत्ररोग, अतीसार (पेचिश) और कुष्ठ (कोढ़) आदि शारीरिक कष्टोंके भेदसे दैहिक तापके अनेक भेद हो जाते हैं। अब मानस तापका वर्णन सुनो। काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद (चिन्ता), शोक, असूया (दोषदृष्टि), अपमान, ईर्ष्या, मात्सर्य तथा पराभव आदिके भेदसे मानस तापके अनेक रूप हैं। ये सभी प्रकारके ताप आध्यात्मिक माने गये हैं। मृग, पक्षी, मनुष्य आदि तथा पिशाच, सर्प, राक्षस और बिच्छू आदिसे मनुष्योंको जो पीड़ा होती है, उसका नाम आधिभौतिक ताप है। शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् आदिसे

होनेवाले संतापको आधिदैविक कहते हैं। मुनिवरो! इनके सिवा गर्भ, जन्म, बुढ़ापे, अज्ञान, मृत्यु और नरकसे प्राप्त होनेवाले दु:खके भी सहस्रों भेद हैं।

अत्यन्त मलसे भरे हुए गर्भाशयमें सुकुमार शरीरवाला जीव झिल्लीसे लिपटा हुआ रहता है। उसकी पीठ और ग्रीवाकी हड्डियाँ मुड़ी होती हैं। माताके खाये हुए अत्यन्त तापदायक और अधिक खट्टे, कड़वे, चरपरे, गर्म और खारे पदार्थोंसे कष्ट पाकर उसकी पीड़ा बहुत बढ़ जाती है। वह अपने अङ्गोंको फैलाने या सिकोड़नेमें समर्थ नहीं होता। मल और मूत्रके महान् पङ्कमें उसे सोना पड़ता है, जिससे उसके सभी अङ्गोंमें पीड़ा होती है। चेतनायुक्त होनेपर भी वह खुलकर साँस नहीं ले सकता। अपने कर्मोंके बन्धनमें बँधा हुआ वह जीव सैकड़ों जन्मोंका स्मरण करता हुआ बड़े दु:खसे गर्भमें रहता है। जन्मके समय उसका मुख मल-मूत्र, रक्त और वीर्य आदिमें लिपटा रहता है। प्राजापत्य नामक वायुसे उसकी हड्डियोंके प्रत्येक जोड़में बड़ी पीड़ा होती है। प्रबल प्रसूति-वायु उसके मुँहको नीचेकी ओर कर देती है और वह गर्भस्थ जीव अत्यन्त आतुर होकर बड़े क्लेशके साथ माताके उदरसे बाहर निकल पाता है। मुनिवरो! जन्म लेनेके पश्चात् बाह्य वायुका स्पर्श होनेसे अत्यन्त मूर्च्छाको प्राप्त होकर वह बालक अपनी सुध-बुध खो बैठता है। दुर्गन्धयुक्त फोड़ेसे पृथ्वीपर गिरे हुए कीड़ेकी भाँति वह छटपटाता है। उस समय उसे ऐसी पीड़ा होती है, मानो उसके सारे अङ्गोंमें काँटे चुभो दिये गये हों अथवा वह आरेसे चीरा जा रहा हो। उसे अपने अङ्गोंको खुजलानेकी भी शक्ति नहीं रहती। वह करवट बदलनेमें भी असमर्थ होता है। स्तन-पान आदि आहार भी उसे दूसरोंकी इच्छासे ही प्राप्त होता है। वह अपवित्र बिछौनेपर पड़ा रहता है। उस समय उसे खटमल और डाँस आदि काटते हैं तो भी वह उन्हें हटानेमें समर्थ नहीं होता।

इस प्रकार जन्मके समय उसे अनेक दु:ख उठाने पड़ते हैं। जन्मके बाद भी वह बाल्यावस्थामें आधिभौतिक आदि अनेक दु:खोंका भागी होता है। अज्ञानान्धकारसे आच्छादित मूढ़ अन्त:करणवाला मनुष्य यह नहीं जानता कि 'मैं कहाँसे आया हूँ? कौन हूँ? कहाँ जाऊँगा? क्या मेरा स्वरूप है? मैं किस बन्धनसे बँधा हुआ हूँ? क्या इस बन्धनका कुछ कारण भी है या यह अकारण ही प्राप्त हुआ है? मुझे क्या करना चाहिये? और क्या नहीं करना चाहिये? मेरे लिये क्या कहना और क्या न कहना उचित है? मेरे लिये क्या धर्म है? और क्या अधर्म? किसके प्रति कैसा बर्ताव करना उचित है? क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य? तथा कौन-सा कार्य गुणयुक्त है और कौन-सा दोषयुक्त?' इस प्रकार पशुके समान मूढ़ तथा शिश्नोदरपरायण मनुष्योंको अज्ञानजनित महान् दु:ख प्राप्त होते हैं।

ब्राह्मणो! अज्ञान तामसिक भाव है, अत: अज्ञानी पुरुषोंकी तामसिक कर्मोंके अनुष्ठानमें ही प्रवृत्ति होती है। इससे शास्त्रविहित कर्मोंका लोप हो जाता है। महर्षियोंने शास्त्रविहित कर्मोंके लोपका फल नरक बतलाया है। अत: अज्ञानी पुरुषोंको इस लोक और परलोकमें भारी दु:ख भोगना पड़ता है। वृद्धावस्थासे शरीरके जर्जर हो जानेपर पुरुषका प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो जाता है। उसके दाँत कमजोर होकर गिर जाते हैं। शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और सब ओर नस-नाड़ियाँ दिखायी देने लगती हैं। नेत्रोंकी दूरस्थ वस्तुओंको देखनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। नेत्रोंकी पुतलियाँ गोलकोंमें समा जाती हैं। नासिकाके छिद्रोंमें बहुत-से रोएँ जमकर बाहर निकल आते हैं। शरीर काँपने लगता है। सब हड्डियाँ दिखायी देने लगती हैं। मेरुदण्ड झुक जाता है। जठराग्नि मन्द पड़ जानेके कारण उसका आहार कम हो जाता है। उससे काम-काज भी कम ही हो पाते

हैं। घूमने-फिरने, उठने-बैठने और सोने आदिकी चेष्टा भी बड़ी कठिनाईसे होती है। कानों और नेत्रोंकी शक्ति मन्द पड़ जाती है। सदा लार बहते रहनेसे मुख मलिन हो जाता है। समस्त इन्द्रियाँ काबूके बाहर हो जाती हैं। मनुष्य मृत्युके निकट पहुँच जाता है। उसको उसी समय अनुभव किये हुए सभी पदार्थोंकी स्मृति नहीं रहती। एक बार भी कोई बात कहनेमें उसको बड़ा भारी परिश्रम होता है। वह दमे और खाँसी आदिके कष्टसे रातभर जागता रहता है। वृद्ध पुरुषको दूसरा ही उठाता और दूसरा ही सुलाता है। उसे अपने सेवक, पुत्र और स्त्रीके द्वारा भी अपमानित होना पड़ता है। उसका समस्त शौचाचार नष्ट हो जाता है। फिर भी आहार-विहारके लिये वह लालायित रहता है। उसके परिजन भी उसकी हँसी उड़ाते हैं। सभी बन्धु-बान्धव उसकी ओरसे विरक्त रहते हैं। अपनी युवावस्थाकी चेष्टाओंको वह इस प्रकार स्मरण करता है, मानो वे दूसरे जन्ममें अनुभव की हुई बातें हों; उनके स्मरणसे अत्यन्त संतप्त होकर वह लंबी साँसें लेता है। इस प्रकार वृद्धावस्थामें अनेक दु:खोंको भोगकर वह मृत्युके समय जिन क्लेशोंका अनुभव करता है, उनका वर्णन सुनो।

मृत्युकालमें मनुष्यका कण्ठ और हाथ-पैर शिथिल हो जाते हैं। उसका शरीर काँपता रहता है। उसे बार-बार मूर्च्छा होती है और कभी थोड़ी-सी चेतना भी आ जाती है। उस समय वह अपने सुवर्ण, धान्य, पुत्र, पत्नी, सेवक और गृह आदिके लिये ममतासे अत्यन्त व्याकुल होकर सोचता है—'हाय! मेरे बिना इनकी कैसी दशा होगी।' मर्म विदीर्ण करनेवाले महान् रोग भयंकर आरे तथा यमराजके घोर बाणोंकी भाँति उसके अस्थि-बन्धनोंको काटे डालते हैं। उसकी आँखोंकी पुतलियाँ घूमने लगती हैं, वह बारंबार हाथ-पैर पटकता है; उसके तालू, ओठ और कण्ठ सूखने लगते हैं। गला घुरघुराता है। उदान वायुसे पीड़ित होकर कण्ठ रुँध जाता है। उस अवस्थामें मनुष्य महान् ताप, भूख और प्याससे व्यथित हो यमदूतोंद्वारा दी हुई पीड़ा सहकर बड़े कष्टसे प्राणत्याग करता है। फिर क्लेशसे ही उसे यातनादेहकी प्राप्ति होती है। ये तथा और भी बहुत-से भयंकर दु:ख मृत्युके समय मनुष्योंको भोगने पड़ते हैं।

विप्रवरो! नरकमें गये हुए जीवोंको जो पापजनित दु:ख भोगने पड़ते हैं, उनकी कोई गणना नहीं है। केवल नरकमें ही दु:खकी परम्परा हो, ऐसी बात नहीं है; स्वर्गमें भी जिसके पुण्यका भोग क्षीण हो रहा है और जो पापके फलभोगसे भयभीत है, उसे शान्ति नहीं मिलती। जीव पुन:-पुन: गर्भमें आता और जन्म लेता है। कभी वह गर्भमें ही नष्ट हो जाता और कभी जन्म लेनेके समय मृत्युको प्राप्त होता है। कभी जन्मते ही, कभी बाल्यावस्थामें और कभी युवावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो जाती है। विप्रगण! मनुष्योंके लिये जो-जो वस्तु अत्यन्त प्रीतिकारक होती है, वही-वही उसके लिये दु:खरूपी वृक्षका बीज बन जाती है। स्त्री, पुत्र, मित्र आदि और गृह, क्षेत्र तथा धन आदिसे पुरुषोंको उतना अधिक सुख नहीं मिलता, जितना कि दु:ख उठाना पड़ता है। इस प्रकार सांसारिक दु:खरूपी सूर्यके तापसे संतप्त चित्तवाले मानवोंको मोक्षरूपी वृक्षकी शीतल छायाके सिवा अन्यत्र कहाँ सुख है। अत: विद्वानोंने गर्भ, जन्म और बुढ़ापा आदि स्थानोंमें होनेवाले आध्यात्मिक आदि त्रिविध दु:खसमूहोंको दूर करनेके लिये एकमात्र भगवत्प्राप्तिको ही अमोघ ओषधि बताया है। उससे बढ़कर आह्लादजनक और सुखस्वरूप दूसरी कोई ओषधि नहीं है। अत: बुद्धिमान् पुरुषोंको भगवत्प्राप्तिके लिये सदा ही यत्न करना चाहिये। द्विजवरो! भगवत्प्राप्तिके

दो साधन कहे गये हैं—ज्ञान और कर्म। ज्ञान भी दो प्रकारका है—शास्त्र-जन्य और विवेक-जन्य। शास्त्र-जन्य ज्ञान शब्दब्रह्मका और विवेक-जन्य ज्ञान परब्रह्मका स्वरूप है। अज्ञान गाढ अन्धकारके समान है। उसको नष्ट करनेके लिये शास्त्र-जन्य ज्ञान दीपकके समान और विवेक-जन्य ज्ञान साक्षात् सूर्यके सदृश माना गया है।

मुनिवरो! मनुजीने वेदार्थका स्मरण करके इसके विषयमें जो विचार प्रकट किया है, उसे बताता हूँ; सुनो। ब्रह्मके दो स्वरूप जानने योग्य हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। जो शब्दब्रह्ममें पारंगत है, वह परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। अथर्ववेदकी श्रुति कहती है कि परा और अपरा—ये दो विद्याएँ जानने योग्य हैं। परा विद्यासे अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होती है तथा ऋग्वेदादि शास्त्र ही अपरा विद्या हैं। वह जो अव्यक्त, जरावस्थासे रहित, अचिन्त्य, अजन्मा, अविनाशी, अनिर्देश्य, अरूप, हस्त-पादादिसे रहित, सर्वव्यापक, नित्य, सब भूतोंका कारण तथा स्वयं कारणरहित है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्य वस्तु व्याप्त है, जिसे ज्ञानी पुरुष ही ज्ञानदृष्टिसे देखते हैं, वही परब्रह्म और वही परमधाम है। मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको उसीका चिन्तन करना चाहिये। वही भगवान् विष्णुका वेदवाक्योंद्वारा प्रतिपादित परम पद है। जो सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, प्रलय, आगमन, गमन तथा विद्या और अविद्याको जानता है, उसीको 'भगवान्' कहना चाहिये। त्यागने योग्य त्रिविध गुण आदिको छोड़कर समग्र ज्ञान, समग्र शक्ति, समग्र बल, समग्र ऐश्वर्य, समग्र वीर्य और समग्र तेज ही 'भगवत्' शब्दके वाच्यार्थ हैं। इस दृष्टिसे श्रीविष्णु ही 'भगवान्' हैं। उन परमात्मा श्रीहरिमें सम्पूर्ण भूत निवास करते हैं तथा वे भी सर्वात्मारूपसे सब भूतोंमें स्थित हैं। अतः वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। पूर्वकालमें महर्षियोंके पूछनेपर स्वयं प्रजापति ब्रह्माने अनन्त भगवान् वासुदेवके नामकी यह यथार्थ व्याख्या बतलायी थी। सम्पूर्ण जगत्के धाता और विधाता भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण भूतोंमें वास करते हैं और सम्पूर्ण भूत उनमें वास करते हैं; इसलिये उनका नाम 'वासुदेव' है। वे परमात्मा निर्गुण, समस्त आवरणोंसे परे और सबके आत्मा हैं। सम्पूर्ण भूतोंकी, प्रकृति तथा उसके गुण और दोषोंकी पहुँचके बाहर हैं। सम्पूर्ण भुवनोंके बीचमें जो कुछ भी स्थित है, वह सब उनके द्वारा व्याप्त है। समस्त कल्याणमय गुण उनके स्वरूप हैं। उन्होंने अपनी मायाशक्तिके लेशमात्रसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि की है। वे अपनी इच्छासे मनके अनुरूप अनेक शरीर धारण करते हैं तथा उन्हींके द्वारा सम्पूर्ण जगत्के कल्याणका साधन होता है। वे तेज, बल और ऐश्वर्यके महान् भंडार हैं। पराक्रम और शक्ति आदि गुणोंकी एकमात्र राशि हैं तथा परसे भी परे हैं। उन परमेश्वरमें सम्पूर्ण क्लेश आदिका अभाव है। वे ईश्वर ही व्यष्टि और समष्टिरूप हैं। वे ही अव्यक्त और व्यक्तस्वरूप हैं। सबके ईश्वर, सबके द्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध वे ही हैं। जिसके द्वारा दोषरहित, परम शुद्ध, निर्मल तथा एक रूप परमात्माका ज्ञान, साक्षात्कार अथवा प्राप्ति होती है, वही ज्ञान है। जो इसके विपरीत है, उसे अज्ञान बताया गया है।

योग और सांख्यका वर्णन

मुनियोंने कहा—महर्षे! अब हमें योगका उपदेश दीजिये, जो दु:खोंको दूर करनेवाली ओषधि है तथा जिस अविनाशी योगको जानकर हम भगवान् पुरुषोत्तमका संयोग प्राप्त कर सकें।

व्यासजी बोले—विप्रवरो! मैं संसार-बन्धनका नाश करनेवाले योगका वर्णन करता हूँ, सुनो। उसका अभ्यास करके योगी पुरुष परम दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लेता है। पहले गुरुकी भक्तिपूर्वक आराधना करके बुद्धिमान् पुरुष योगशास्त्र, इतिहास, पुराण और वेदोंका श्रवण करे। तत्पश्चात् आहार, योगके दोष, देश और कालका ज्ञान प्राप्त करके निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य होकर योगका अभ्यास करे। सत्तू, जौका माँड़, मट्ठा, मूल, फल, दूध, जौका हलुआ, खुद्दी और तिलकी खली—इन सब वस्तुओंका भोजन योगकी सिद्धि करनेवाला है। जिस समय मन व्याकुल न हो, कानोंमें किसी प्रकारका शब्द न आता हो, भूख-प्यासका कष्ट न हो, हर्ष, शोक आदि द्वन्द्व, सर्दी, गर्मी तथा वायु बाधा न पहुँचाती हो, ऐसे समयमें योगसाधन करना चाहिये। जहाँ कोई शब्द होता हो तथा जो जलके समीप हो, ऐसे स्थानमें, टूटी-फूटी पुरानी गोशालामें, चौराहेपर, साँप-बिच्छू आदिके स्थानमें, श्मशान-भूमिमें, नदीके तटपर, अग्निके समीप, देववृक्षके नीचे, बाँबीपर, भयदायक स्थानमें, कुएँके समीप तथा सूखे पत्तोंपर कभी योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जो मूर्खतावश इन स्थानोंकी परवा न करके वहीं योग-साधन करता है, उसके सामने विघ्नकारक दोष आते हैं। उन दोषोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। बहरापन, जडता, स्मरणशक्तिका लोप, गूँगापन, अंधापन, ज्वर तथा अज्ञान-जनित दोष—ये सभी उसे प्राप्त होते हैं। अत: योगवेत्ता पुरुषको सदा सब प्रकारसे शरीरकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका साधन है। एकान्त आश्रममें, गूढ स्थानमें, शब्द और भयसे रहित पर्वतीय गुफामें, सूने घरमें, अथवा पवित्र रमणीय तथा एकान्त देवमन्दिरमें बैठकर रातके पहले और पिछले पहरमें अथवा दिनके पूर्वाह्न और मध्याह्नकालमें एकाग्रचित्त होकर योग-साधन करे। भोजन थोड़ा और नियमके अनुकूल हो। इन्द्रियोंपर पूरा नियन्त्रण रहे। सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठकर योगाभ्यास करना उचित है। आसन सुखद और स्थिर हो। अधिक ऊँचा या अधिक नीचा न हो। योगके साधकको नि:स्पृह, सत्यवादी और पवित्र होना चाहिये। वह निद्रा और क्रोधको अपने वशमें रखे। सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर रहे। सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करे। शरीर, चरण और मस्तकको समान स्थितिमें रखे। दोनों हाथ नाभिपर रखकर शान्त हो पद्मासनसे बैठे। दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर लगाकर प्राणायामपूर्वक मौन रहे। मनके द्वारा इन्द्रिय-समुदायको विषयोंकी ओरसे हटाकर हृदयमें स्थापित करे। दीर्घस्वरसे प्रणवका उच्चारण करते हुए मुखको बंद रखे और स्वयं भी स्थिर रहे। योगी पुरुष नेत्र बंद करके बैठे। वह तमोगुणकी वृत्तिको रजोगुणसे और रजोगुणकी वृत्तिको सत्त्वगुणसे आच्छादित करके निर्मल एवं शान्त हृदयकमलकी कर्णिकामें लीन, सर्वव्यापी, निरञ्जन, मोक्षदायक भगवान् पुरुषोत्तमका निरन्तर चिन्तन करे।

योगवेत्ता पुरुष पहले अन्त:करणसहित इन्द्रियों और पञ्चभूतोंको क्षेत्रज्ञमें स्थापित करे और क्षेत्रज्ञको परमात्मामें नियुक्त करे। तत्पश्चात् योगाभ्यास करे। जिस पुरुषका चञ्चल मन समस्त विषयोंका परित्याग करके परमात्मामें लीन हो जाता है, उसके सामने योगसिद्धि प्रकाशित होती है। जब योगयुक्त पुरुषका चित्त समाधिकालमें सब विषयोंसे निवृत्त हो परब्रह्ममें एकीभूत हो जाता है, उस समय वह परमपदको

प्राप्त होता है। जब योगीका चित्त परमानन्दको प्राप्तकर किसी भी कर्ममें आसक्त नहीं होता, उस समय वह निर्वाणपदको प्राप्त होता है। योगी अपने योगबलसे शुद्ध, सूक्ष्म, गुणातीत तथा सत्त्वगुणसम्पन्न पुरुषोत्तमको प्राप्त करके निस्संदेह मुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण भोगोंकी ओरसे निःस्पृह, सर्वत्र प्रेमपूर्ण दृष्टि रखनेवाला तथा सब अनात्मपदार्थोंमें अनित्य बुद्धि रखनेवाला योगी ही मुक्त हो सकता है। जो योगवेत्ता पुरुष वैराग्यके कारण इन्द्रियोंके विषयोंका सेवन नहीं करता और निरन्तर अभ्यासयोगमें लगा रहता है, उसकी मुक्तिमें तनिक भी संदेह नहीं है। केवल पद्मासन लगानेसे और नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखनेसे ही योगकी सिद्धि नहीं होती। वास्तवमें मन और इन्द्रियोंके संयोग—उनकी एकाग्रताको ही योग कहते हैं। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने संसार-बन्धनसे मुक्तिके साधनभूत मोक्षदायक योगका वर्णन किया।

मुनि बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपके मुखरूपी समुद्रसे निकले हुए वचनामृतका पान करनेसे हमें तृप्ति होती नहीं दिखायी देती। अतः पुनः मोक्षदायक योग और सांख्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। तपस्या, ब्रह्मचर्य, सर्वस्वत्याग और बुद्धि—जिस उपायसे मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता प्राप्त हो सके, वह बतलानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजीने कहा—विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और सर्वस्वत्यागके बिना कोई भी सिद्धि नहीं पा सकता। सम्पूर्ण महाभूत विधाताकी पहली सृष्टि है। वे प्राणियोंके शरीरमें भरे हुए हैं। पृथ्वीसे देहका निर्माण हुआ है। चिकनाहट और पसीने आदि जलके अंश हैं। अग्निसे नेत्र तथा वायुसे प्राण और अपान उत्पन्न हुए हैं। नाक, कान आदिके छिद्र आकाशतत्त्वके स्वरूप हैं। चरणोंमें विष्णु, हाथोंमें इन्द्र और उदरमें अग्नि देवता भोक्तारूपसे स्थित रहते हैं। कानोंमें श्रोत्र-इन्द्रिय और दिशाएँ हैं। जिह्वामें वाक्-इन्द्रिय और सरस्वती देवताका निवास है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं; उन्हें विषयानुभवका द्वार बतलाया गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये इन्द्रियोंके विषय हैं। इस महान् आत्माका दर्शन नेत्रों अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता। यह विशुद्ध मनरूपी दीपकसे ही बुद्धिमें प्रकाशित होता है। परमात्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धसे हीन, अविकारी तथा शरीर और इन्द्रियोंसे रहित है तो भी शरीरके भीतर ही इसका अनुसंधान करना चाहिये। जो इस विनाशशील शरीरमें अव्यक्तभावसे स्थित परमपूजित परमेश्वरका ज्ञानमयी दृष्टिसे निरन्तर साक्षात्कार करता रहता है, वह मृत्युके पश्चात् ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। ज्ञानीजन विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समभावसे ही देखनेवाले होते हैं।* जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, वह परमात्मा समस्त चराचर प्राणियोंके भीतर निवास करता है। जब जीवात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंमें अपनेको और अपनेमें सम्पूर्ण प्राणियोंको स्थित देखता है, उस समय वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। अपने शरीरके भीतर जैसा आत्मा है, वैसा ही दूसरोंके शरीरमें भी है—जिस पुरुषको निरन्तर ऐसा ज्ञान बना रहता है, वह अमृतत्व (मोक्ष)- को प्राप्त होता है।† जो सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा होकर सबके हितमें लगा हुआ है, जिसका अपना कोई मार्ग नहीं है तथा जो ब्रह्मपदको प्राप्त करना चाहता है, उसके मार्गकी खोज करनेमें देवता भी मोहित हो जाते हैं। जैसे

---

* विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥
(२३५। २०)

† सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
यावानात्मनि वेदात्मा तावानात्मा परात्मनि। य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते॥
(२३५। २२-२३)

आकाशमें चिड़ियोंके और जलमें मछलियोंके चलनेके चिह्न दिखायी नहीं पड़ते, उसी प्रकार ज्ञानियोंकी मतिका भी किसीको पता नहीं चलता।

काल सम्पूर्ण प्राणियोंको पकाता (नष्ट करता) है; किंतु जहाँ काल भी पकाया जाता है—जो कालका भी काल है, उस आत्माको कोई नहीं जानता। परब्रह्म परमात्मा न ऊपर है न नीचे है, न इधर-उधर है और न बीचमें ही; कोई किसी अंशमें उसको ग्रहण कर सकता है। सम्पूर्ण लोक उसके भीतर ही स्थित हैं। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। यद्यपि कोई धनुषसे छूटे हुए बाण अथवा मनके समान वेगसे निरन्तर आगेकी ओर दौड़ता रहे तो भी कभी उस परमेश्वरका अन्त नहीं पा सकता। उससे अधिक सूक्ष्म तथा उससे बढ़कर स्थूल दूसरी कोई वस्तु नहीं है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र हैं तथा सब ओर सिर, मुख और कान हैं। वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा भी वही है। यद्यपि वह सब प्राणियोंके भीतर निश्चय ही स्थित रहता है तो भी वह किसीको दिखायी नहीं देता।* क्षर और अक्षर—ये पुरुषके दो भेद हैं। सम्पूर्ण भूत तो क्षर (विनाशी) हैं और दिव्य अमृतस्वरूप चेतन आत्मा अक्षर (अविनाशी) है। नौ द्वारोंवाले पुर (शरीर)-का निर्माण करके जितेन्द्रिय तथा नियमपरायण हंस (आत्मा) उसमें वास करता है। समस्त चराचर भूतोंका आत्मा ऐसा ही है। अजन्मा आत्मा भाँति-भाँतिके विकल्पोंका त्याग और शरीरोंका संचय करता है, इसलिये पारदर्शी विद्वानोंने उसे 'हंस' कहा है। 'हंस' नामसे जिस अविनाशी जीवात्माका प्रतिपादन किया गया है, वह कूटस्थ अक्षर ही है। इस प्रकार जो विद्वान् उस अक्षर आत्माको जान लेता है, वह जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

ब्राह्मणो! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेपर मैंने ज्ञानयुक्त सांख्यका यथावत् वर्णन किया। अब योगकी बातें बताऊँगा, सुनो। इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्तियोंको सब ओरसे रोककर व्यापक आत्माके साथ उनकी एकता स्थापित करना ही योगशास्त्रके मतमें उत्तम ज्ञान है। योगी पुरुषको शम-दमसे सम्पन्न होना चाहिये। वह अध्यात्मशास्त्रका अनुशीलन करे, आत्मामें ही अनुराग रखे, शास्त्रोंका तत्त्व जाने और निष्कामभावसे पवित्र कर्मोंका अनुष्ठान करे। इस प्रकार साधनसम्पन्न होकर योगोक्त उत्तम ज्ञानको प्राप्त करे। काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न—ये पाँच योगके दोष हैं; इन्हें विद्वान् पुरुष जानते हैं। इन सभी दोषोंका उच्छेद करके अपनेको योगका अधिकारी बनाये।

धीर पुरुष मनको वशमें रखनेसे क्रोधपर और संकल्पका त्याग करनेसे कामपर विजय पाता है। सत्त्वगुणका सेवन करनेसे वह निद्राका नाश कर सकता है। धैर्यके द्वारा योगी शिश्न और उदरकी रक्षा करे। नेत्रोंकी सहायतासे हाथ और पैरोंकी रक्षा करे। मनके द्वारा नेत्र और कानोंकी तथा कर्मके द्वारा मन और वाणीकी रक्षा करे। प्रमादके त्यागसे भयका और विद्वान् पुरुषोंके सेवनसे दम्भका त्याग करे।† इस प्रकार योगके साधकको

---

* सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
तदेवाणोरणुतरं तन्महद्भ्यो महत्तरम्। तदन्तः सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते॥
(२३५। ३०-३१)

† क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात्। सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति॥
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा। चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा॥
अप्रमादाद् भयं जह्याद् दम्भं प्राज्ञोपसेवनात्॥
(२३५। ४०—४२)

आलस्य छोड़कर इन योग-सम्बन्धी दोषोंको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये। वह अग्नि, ब्राह्मण तथा देवताओंको सदा प्रणाम करे। मनपर प्रभाव डालनेवाली हिंसायुक्त उद्दण्डतापूर्ण वाणी न बोले। तेजोमय ब्रह्म ही वीर्य (सबका आदि कारण) है, यह सम्पूर्ण जगत् उसीका कार्य है। समस्त चराचर जगत् उस ब्रह्मके ही ईक्षण (संकल्प)-का परिणाम है। ध्यान, वेदाध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच, आत्मशुद्धि एवं इन्द्रियसंयम—इनसे तेजकी वृद्धि होती है और पापका नाश होता है।*

योगीको चाहिये कि वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान भाव रखे; जो कुछ मिल जाय, उसीसे निर्वाह करे। पापरहित, तेजस्वी, मिताहारी और जितेन्द्रिय होकर, काम और क्रोधको वशमें करके ब्रह्मपदका सेवन करे। योगी रातके पहले और पिछले पहरमें मन एवं इन्द्रियोंको एकाग्र करके ध्यानस्थ हो मनको आत्मामें लगावे। जैसे मशकमें एक जगह भी छेद हो जानेपर सारा पानी बह जाता है, उसी प्रकार यदि साधककी पाँच इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रिय भी विकृत हो विषयोंकी ओर चली जाय तो वह अपनी बुद्धि और विवेक खो बैठता है। जैसे मछुआ पहले जाल काटनेवाली मछलीको पकड़कर पीछे अन्य मछलियोंको पकड़ता है, उसी प्रकार योगवेत्ता साधक पहले अपने मनको वशमें करे। तत्पश्चात् कान, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका आदि इन्द्रियोंका निग्रह करे। इन सबको अधीन करके मनमें स्थापित करे और मनको भी संकल्प-विकल्पसे हटाकर बुद्धिमें स्थिर करे। इस प्रकार पाँचों इन्द्रियोंको मनमें और मनको बुद्धिमें स्थापित करनेपर जब ये इन्द्रिय और मन स्थिर हो जाते हैं, उस समय इनकी मलिनता दूर होकर इनमें स्वच्छता आ जाती है। फिर अन्तःकरणमें ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। योगी धूमरहित अग्नि, दीप्तिमान् सूर्य तथा आकाशमें चमकती हुई बिजलीकी भाँति आत्माका हृदयदेशमें दर्शन करता है। सब कुछ आत्मामें है और आत्मा सबमें व्यापक है; इसलिये वह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। जो महात्मा ब्राह्मण मनीषी, धैर्यवान्, महाज्ञानी और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं, वे ही उस आत्माका दर्शन कर पाते हैं। जो योगी एकान्तमें बैठकर कठोर नियमोंका पालन करते हुए थोड़े समय भी इस प्रकार योगाभ्यास करता है, वह अक्षर ब्रह्मकी समानताको प्राप्त हो जाता है।

योग-साधनामें अग्रसर होनेपर मोह, भ्रम और आवर्त आदि विघ्न प्राप्त होते हैं। दिव्य सुगन्ध आती है, दिव्य वाणीका श्रवण तथा दिव्य रूपोंके दर्शन होते हैं। अद्भुत बातें देखनेमें आती हैं। अलौकिक रस और स्पर्शका अनुभव होता है। इच्छानुकूल सर्दी और गर्मी प्राप्त होती है। वायुकी भाँति आकाशमें चलने-फिरनेकी शक्ति आ जाती है। प्रतिभा बढ़ जाती है और उपद्रवोंका अभाव हो जाता है। योगसे इन सिद्धियोंके प्राप्त होनेपर भी तत्त्ववेत्ता पुरुष उनकी उपेक्षा करके समभावसे ही उन्हें लौटा दे। वह योगका ही अभ्यास बढ़ाये और नियमपूर्वक रहते हुए पहाड़की चोटीपर, शून्य देवमन्दिरमें अथवा वृक्षोंके नीचे बैठकर योगका अभ्यास करे। इन्द्रिय-समुदायको संयममें रखकर एकाग्रचित्त हो निरन्तर आत्माका चिन्तन करता रहे। योगसे मनको उद्विग्न न होने दे। जिस उपायसे चञ्चल मनको रोका जा सके, उसमें तत्परतापूर्वक लग जाय और साधनासे कभी विचलित न हो। अपने रहनेके लिये शून्य गृहको

* ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा। शौचं चैवात्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः॥
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति॥
(२३५। ४५-४६)

स्वीकार करे, क्योंकि वहाँ चित्त एकाग्र रह सकता है। योगका साधक मन, वाणी अथवा क्रियाद्वारा भी कहीं आसक्त न हो। वह सबकी ओरसे उपेक्षाका भाव रखे, नियमित भोजन करे तथा लाभ और अलाभको समान समझे। जो उस योगीकी निन्दा करे और जो उसको मस्तक झुकाये, उन दोनोंके ही प्रति वह समान भाव रखे। वह किसी एककी बुराई या भलाई न सोचे। कुछ लाभ होनेपर हर्षसे फूल न उठे और लाभ न होनेपर चिन्ता न करे। अपितु वायुका सहधर्मी[1] होकर सब प्राणियोंके प्रति समान भाव रखे।[2] इस प्रकार स्वस्थचित्त होकर सर्वत्र समान दृष्टि रखनेवाला साधक यदि छः महीने भी निरन्तर योगके अभ्यासमें लगा रहे तो उसे ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। दूसरे लोग धनकी इच्छा या संग्रह करनेके कारण अत्यन्त विकल हैं, यह देखकर उसकी ओरसे विरक्त हो जाय। मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझे। इस प्रकार योग-मार्गपर चलनेवाला साधक मोहवश कभी उससे विचलित न हो। कोई नीच वर्णका पुरुष अथवा स्त्री ही क्यों न हो, यदि उसे धर्म करनेकी अभिलाषा हो तो वह भी इस योगमार्गसे परम गतिको प्राप्त कर सकता है। योगी पुरुष अजन्मा, पुरातन, जरावस्थासे रहित, सनातन, इन्द्रियातीत एवं अगोचर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। जो मनीषी पुरुष इस योगकी पद्धतिपर दृष्टिपात करके इसे अपनाते हैं, वे ब्रह्माजीके समान हो उस उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं, जहाँसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता।

कर्म तथा ज्ञानका अन्तर, परमात्मतत्त्वका निरूपण तथा अध्यात्मज्ञान और उसके साधनोंका वर्णन

मुनि बोले—महर्षे! यदि वेदकी ऐसी आज्ञा है कि 'कर्म करो' तथा यह भी आदेश है कि 'कर्मका त्याग करो' तो यह बताइये कि मनुष्य ज्ञानके द्वारा कर्म त्याग देनेपर किस गतिको प्राप्त होते हैं तथा कर्म करनेसे उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है? इस बातको हम सुनना चाहते हैं। क्योंकि उक्त दोनों आज्ञाएँ परस्पर विरुद्ध प्रतीत होती हैं।

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो! ज्ञानसे मनुष्य जिस गतिको पाते हैं और कर्मसे उन्हें जैसी गति मिलती है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। तुम्हारे इस प्रश्नका उत्तर गहन है। शास्त्रमें दो मार्गोंका वर्णन है—एकका नाम प्रवृत्तिधर्म है और दूसरेको निवृत्तिधर्म कहा गया है। प्रवृत्तिमार्गको कर्म और निवृत्तिमार्गको ज्ञान भी कहते हैं। कर्म (अविद्या)-से मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है; इसलिये पारदर्शी यति कर्म नहीं करते। कर्मसे मरनेके बाद जन्म लेना पड़ता है, सोलह तत्त्वोंसे बने हुए शरीरकी प्राप्ति होती है। किंतु ज्ञानसे नित्य, अव्यक्त एवं अविनाशी परमात्मा प्राप्त होते हैं। कुछ मन्दबुद्धि मानव कर्मकी प्रशंसा करते हैं, अतः वे भोगासक्त होकर बारंबार देहके बन्धनमें पड़ते हैं। परंतु जो धर्मके तत्त्वको भलीभाँति समझते हैं तथा जिन्हें उत्तम बुद्धि प्राप्त है, वे कर्मकी उसी तरह प्रशंसा नहीं करते,

---

१-सर्वत्र विचरते हुए भी कहीं आसक्त न होना ही वायुका सहधर्मी होना है।

२-यश्चैनमभिनिन्देत यश्चैनमभिवादयेत्। समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत्। समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मा मातरिश्वनः॥
(२३५। ६४-६५)

जैसे नदीका पानी पीनेवाला मनुष्य कुएँका आदर नहीं करता। कर्मके फल मिलते हैं—सुख और दुःख, जन्म और मृत्यु। किंतु ज्ञानसे उस पदकी प्राप्ति होती है, जहाँ जाकर मनुष्य सदाके लिये शोकसे मुक्त हो जाता है। जहाँ जन्म, मृत्यु, जरा और वृद्धि उसका स्पर्श नहीं करते, वहाँ केवल अव्यक्त, अचल, ध्रुव, अव्याकृत एवं अमृतस्वरूप परब्रह्मकी ही स्थिति है। उस स्थितिमें पहुँचे हुए मनुष्योंको शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व बाधा नहीं पहुँचाते। मानसिक विकार और क्रियाद्वारा भी उन्हें कष्ट नहीं होता। वे समत्वभावसे युक्त, सबके प्रति मैत्री रखनेवाले और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रहनेवाले होते हैं।

ब्राह्मणो! देह, इन्द्रिय और मन आदि जो प्रकृतिके विकार हैं, वे क्षेत्रज्ञके ही आधारपर स्थित हैं। वे जड होनेके कारण क्षेत्रज्ञको नहीं जानते, किंतु क्षेत्रज्ञ उन सबको जानता है। जैसे चतुर सारथि अपने वशमें किये बलवान् एवं उत्तम घोड़ोंसे अच्छी तरह काम लेता है, उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ भी अपने अधीन किये हुए मन और इन्द्रियोंद्वारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करता है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा उनके विषय (शब्दादि तन्मात्रा) पर—सूक्ष्म और श्रेष्ठ हैं। विषयोंसे मन पर है। मनसे बुद्धि पर है। बुद्धिसे महत्तत्त्व पर है। महत्तत्त्वसे अव्यक्त (मूल प्रकृति) पर है और अव्यक्तसे अविनाशी परमात्मा पर है। अविनाशी परमात्मासे पर कुछ भी नहीं है। वही परताकी सीमा है तथा वही परम गति है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर छिपा हुआ यह परमात्मा सबके जाननेमें नहीं आता। उसे तो सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी महात्मा ही अपनी सूक्ष्म एवं श्रेष्ठ बुद्धिसे देखते हैं।*

मनसहित इन्द्रियोंको तथा इन्द्रियोंके साथ उनके विषयोंको भी बुद्धिके द्वारा अन्तरात्मामें लीन करके नाना प्रकारके दृश्योंका चिन्तन न करे। ध्यानके द्वारा मनको विषयोंकी ओरसे हटाकर विवेकके द्वारा उसे स्थिर करे और शान्तभावसे स्थित हो जाय; ऐसा करनेसे साधक परम पदको प्राप्त होता है। जो इन्द्रियोंके वशमें रहता है, वह मानव विवेकशक्तिको खो देता है और अपनेको काम आदि शत्रुओंके हाथमें देकर मृत्युको प्राप्त होता है। इसलिये सब प्रकारके संकल्पोंका नाश करके चित्तको सत्त्वयुक्त बुद्धिमें स्थापित करे। यों करनेसे चित्तमें प्रसाद गुण आता है, जिससे यति पुरुष शुभ और अशुभ दोनोंको जीत लेता है। प्रसन्नचित्त साधक परमात्मामें स्थित होकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करता है। चित्तकी प्रसन्नताका लक्षण यह है कि सदा सुषुप्तिके समान सुखका अनुभव होता रहे अथवा वायुशून्य स्थानमें जलते हुए निष्काम दीपककी लौके समान मन कभी चञ्चल न हो।

जो मिताहारी और शुद्धचित्त होकर रातके पहले तथा पिछले भागमें आत्माको परमात्माके ध्यानमें लगाता है, वही अपने अन्तःकरणमें परमात्माका दर्शन करता है। यह उपदेश सम्पूर्ण वेदोंका रहस्य है। यह परमात्माका बोध करानेवाला शास्त्र है। धर्म और सत्यके सम्पूर्ण उपाख्यानोंमें जो सार वस्तु है, उसका दस हजार वर्षोंतक मन्थन करके यह अमृतमय उपदेश निकाला गया है। जैसे दहीसे मक्खन निकलता और काष्ठसे अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार मोक्षके लिये विद्वानोंका ज्ञान यहाँ प्रकट किया गया है। इस शास्त्रका उपदेश स्नातकोंको देना चाहिये। जिसका

---

* इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम्। अमृतान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥
एवं सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥
(२३६। २३—२५)

मन शान्त नहीं है, इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं तथा जो तपस्वी नहीं है, उसे इस ज्ञानका उपदेश नहीं करना चाहिये। जो वेदका ज्ञाता नहीं है, जिसके मनमें गुरुके प्रति भक्ति नहीं है, जो दोष देखनेवाला, कुटिल, आज्ञाका पालन न करनेवाला, व्यर्थ तर्क-वितर्कसे दूषित और चुगलखोर है, उसे भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रशंसनीय, शान्त, तपस्वी तथा सेवापरायण शिष्य अथवा पुत्र हो, उसीको इस गूढ़ धर्मका उपदेश देना उचित है; दूसरे किसीको नहीं। यदि कोई रत्नोंसे भरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी देने लगे तो भी तत्त्ववेत्ता पुरुष उसकी अपेक्षा इस ज्ञानको ही श्रेष्ठ माने। अत: मैं तुम्हें अत्यन्त गूढ़ अर्थवाले अध्यात्म ज्ञानका उपदेश देता हूँ, जो मानवीय ज्ञानसे बाहर है, जिसे महर्षियोंने ही जाना है तथा जिसका सम्पूर्ण उपनिषदोंमें वर्णन किया गया है। मुनिवरो! तुमलोग जो बात पूछते थे और तुम्हारे हृदयमें जिसके विषयमें संदेह था, वह सब तुमने सुन लिया। मेरे मनमें जैसा निश्चय था, वह सब बता दिया; अब और क्या सुनाऊँ?

मुनियोंने कहा—ऋषिश्रेष्ठ! अब पुन: अध्यात्म ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। अध्यात्म क्या है और उसे हम किस प्रकार जानें?

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! अध्यात्मका जो स्वरूप है, उसे बताता हूँ। तुम उसकी व्याख्या ध्यान देकर सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चमहाभूत सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें स्थित हैं। शब्द, श्रवणेन्द्रिय और शरीरके सम्पूर्ण छिद्र आकाशसे प्रकट हुए हैं। प्राण, चेष्टा और स्पर्शकी उत्पत्ति वायुसे हुई है। रूप, नेत्र और जठरानल—ये तीन अग्निके कार्य हैं। रस, रसना और चिकनाहट—ये जलके गुण हैं। गन्ध, नासिका और देह—ये पृथ्वीके कार्य हैं। यह पाञ्चभौतिक विकार बताया गया। स्पर्श वायुका, रस जलका, रूप तेजका, शब्द आकाशका और गन्ध भूमिका गुण है। मन-बुद्धि और स्वभाव—ये स्वयोनिज गुण हैं। ये गुणोंकी सीमाको लाँघ जाते हैं, अत: उनसे श्रेष्ठ माने गये हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार बुद्धिके द्वारा श्रेष्ठ पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेट लेता है। मनुष्यके शरीरमें पाँच इन्द्रियाँ हैं, छठा तत्त्व मन है, सातवाँ तत्त्व बुद्धि है और क्षेत्रज्ञको आठवाँ समझो। आँख देखनेके लिये ही है, मन संदेह करता है, बुद्धि निश्चय करनेके लिये है और क्षेत्रज्ञको साक्षी कहा जाता है। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण अपने कारणभूत प्रकृतिसे प्रकट हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान भावसे स्थित हैं। उनके कार्योंद्वारा उनकी पहचान करनी चाहिये। जब अन्त:करण कुछ प्रीतियुक्त-सा जान पड़े, अत्यन्त शान्तिका-सा अनुभव हो, तब उसे सत्त्वगुण जानना चाहिये। जब शरीर और मनमें कुछ संतापका-सा अनुभव हो, तब उसे रजोगुणकी प्रवृत्ति मानना चाहिये। जब अन्त:करणमें अव्यक्त, अतर्क्य और अज्ञेय मोहका संयोग होने लगे, तब उसे तमोगुण समझना चाहिये। जब अकस्मात् किसी कारणवश अत्यन्त हर्ष, प्रेम, आनन्द, समता और स्वस्थचित्तताका विकास हो, तब उसे सात्त्विक गुण कहते हैं। अभिमान, असत्य-भाषण, लोभ और असहनशीलता—ये रजोगुणके चिह्न हैं। मोह, प्रमाद, निद्रा, आलस्य और अज्ञान आदि दुर्गुण जब किसी तरह प्रवृत्त हों तब उन्हें तमोगुणका कार्य जानना चाहिये।

जैसे जलचर पक्षी जलमें विचरता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार मुक्तात्मा योगी संसारमें रहकर भी उसके गुण-दोषोंसे लिप्त नहीं होता।* इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष विषयोंमें आसक्त

* यथा वारिचर: पक्षी न लिप्यति जले चरन्। विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते॥ (२३६। ८२)

न होनेके कारण उनका उपभोग करते हुए भी उनके दोषोंसे लिप्त नहीं होता। जो सदा परमात्माके चिन्तनमें ही लगा रहता है, वह पूर्वकृत कर्मोंके बन्धनसे रहित हो सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा हो जाता है और विषयोंमें कभी आसक्त नहीं होता। गुण आत्माको नहीं जानते, किंतु आत्मा उन्हें सदा जानता रहता है; क्योंकि वह गुणोंका द्रष्टा है। प्रकृति और आत्मामें यही अन्तर है। एक (प्रकृति) तो गुणोंकी सृष्टि करती है, किन्तु दूसरा (आत्मा) ऐसा नहीं करता। वे दोनों स्वभावतः पृथक् होते हुए भी एक-दूसरेसे संयुक्त हैं। जैसे पत्थरमें सुवर्ण जड़ा होता है, जैसे गूलर और उसके कीड़े साथ-साथ रहते हैं तथा जिस प्रकार मूँजमें सींक होती है और ये सभी वस्तुएँ पृथक् होती हुई भी परस्पर संयुक्त रहती हैं, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी एक-दूसरेसे संयुक्त रहते हैं।

प्रकृति गुणोंकी सृष्टि करती है और क्षेत्रज्ञ आत्मा उदासीनकी भाँति अलग रहकर समस्त विकारशील गुणोंको देखा करता है। प्रकृति जो इन गुणोंकी सृष्टि करती है, वह सब उसका स्वाभाविक कर्म है। जैसे मकड़ी अपने शरीरसे तन्तुओंकी सृष्टि करती है, वैसे ही प्रकृति भी समस्त त्रिगुणात्मक पदार्थोंको जन्म देती है। किन्हींका मत है कि तत्त्वज्ञानसे जब गुणोंका नाश कर दिया जाता है, तब वे फिर उत्पन्न नहीं होते, उनका सर्वथा बाध हो जाता है। क्योंकि फिर उनका कोई चिह्न नहीं उपलब्ध होता। इस प्रकार वे भ्रम या अविद्याके निवारणको ही मुक्ति मानते हैं। दूसरोंके मतमें त्रिविध दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। इन दोनों मतोंपर अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करके सिद्धान्तका निश्चय करे।

आत्मा आदि और अन्तसे रहित है। उसे जानकर मनुष्य हर्ष और क्रोधको त्याग दे और मात्सर्यरहित होकर विचरण करे। जैसे तैरनेकी कला न जाननेवाले मनुष्य यदि भरी हुई नदीमें कूद पड़ते हैं तो वे डूब जाते हैं, किंतु जो तैरना जानते हैं, वे कष्टमें नहीं पड़ते, वे तो जलमें भी स्थलकी ही भाँति विचरते हैं, उसी प्रकार ज्ञानस्वरूप आत्माको प्राप्त हुआ तत्त्ववेत्ता पुरुष संसार-सागरसे पार हो जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आवागमनको जानकर सबके प्रति समभाव रखते हुए बर्ताव करता है, वह उत्तम शान्तिको प्राप्त होता है। ब्राह्मणमें इस ज्ञानको प्राप्त करनेकी सहज शक्ति होती है। मन और इन्द्रियोंका संयम तथा आत्माका ज्ञान—ये मोक्षप्राप्तिके लिये पर्याप्त साधन हैं। तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य बुद्ध (ज्ञानी) हो जाता है। बुद्धका इसके सिवा और क्या लक्षण हो सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य इस आत्मतत्त्वको जानकर कृतकृत्य हो संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अज्ञानी पुरुषोंको परलोकमें जो महान् भय प्राप्त होता है, वह ज्ञानीको नहीं होता। ज्ञानी पुरुषोंको जो सनातन गति प्राप्त होती है, उससे बढ़कर दूसरी कोई गति नहीं है।

मुनि बोले—भगवन्! अब आप उस धर्मका वर्णन कीजिये, जो सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है तथा जिससे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है।

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! मैं ऋषियोंके द्वारा प्रशंसित प्राचीन धर्मका, जो सम्पूर्ण धर्मोंसे श्रेष्ठ है, वर्णन करता हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। जैसे पिता अपने छोटे बालकोंको अपनी आज्ञाके अधीन रखता है, उसी प्रकार मनुष्य बुद्धिके बलसे अपनी प्रमथनशील इन्द्रियोंका यत्नपूर्वक संयम करे। मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता ही सबसे बड़ी तपस्या है, उसे ही सब धर्मोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ धर्म जानना चाहिये। पाँचों इन्द्रियोंसहित छठे मनको बुद्धिके द्वारा एकाग्र करके सदा अपने-आपमें ही संतुष्ट रहे, नाना प्रकारके चिन्तनीय

विषयोंका चिन्तन न करे।* जिस समय ये इन्द्रियाँ अपने विषयोंसे हटकर बुद्धिमें स्थित हो जायँगी, उसी समय तुम्हें सनातन परमात्माका दर्शन होगा। धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान उस परम महान् सर्वात्मा परमेश्वरको मनीषी ब्राह्मण ही देख पाते हैं। जलते हुए ज्ञानमय प्रदीपके द्वारा पुरुष अपने अन्त:करणमें ही आत्माका दर्शन करता है। ब्राह्मणो! तुमलोग भी इसी प्रकार आत्माका साक्षात्कार करके संसारसे विरक्त हो जाओ। जैसे साँप केंचुल छोड़ता है, वैसे ही तुम भी सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे। इस उत्तम बुद्धिको प्राप्त कर लेनेपर तुम्हारे मनमें चिन्ता तथा वेदना नहीं रहेगी। अविद्या एक भयंकर नदी है, जिसके सब ओर स्रोत हैं ; यह लोकोंको प्रवाहित करनेवाली है। पाँचों इन्द्रियाँ इस नदीके भीतर रहनेवाले ग्राह हैं। मानसिक संकल्प-विकल्प ही इसके तट हैं। यह लोभ-मोहरूपी तृण (सेवार आदि)-से आच्छादित रहती है। काम और क्रोधरूपी सर्पोंसे युक्त है। सत्य ही इससे पार करनेवाला पुण्यतीर्थ है। इसमें असत्यका तूफान उठा करता है। क्रोध ही इस श्रेष्ठ नदीकी कीचड़ है। इसका उद्गम-स्थान अव्यक्त है। यह काम-क्रोधसे व्याप्त तथा वेगसे बहनेवाली है। अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसे पार करना अत्यन्त कठिन है। यह नदी संसाररूपी समुद्रमें मिलती है। अपना जन्म ही इस नदीकी उत्पत्तिका कारण है। जिह्वारूपी भँवरके कारण इसको पार करना कठिन है। स्थिर बुद्धिवाले पवित्र मनीषी पुरुष ही इस नदीको पार कर पाते हैं। तुम सब लोग भी इस नदीके पार हो जाओ। इससे पार हो सब बन्धनोंसे मुक्त हुआ पवित्र जितात्मा पुरुष उत्तम बुद्धि पाकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। वह सब क्लेशोंसे छूट जाता है, उसका अन्त:करण प्रसन्नतासे पूर्ण रहता है तथा वह पापरहित हो जाता है। उसमें हर्ष और क्रोधरूपी विकार नहीं रह जाते। उसकी बुद्धि क्रूर नहीं होती। इस बुद्धिको प्राप्त करके तुमलोग समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयको देख सकोगे। यहाँ बताये हुए धर्मको विद्वानोंने सब धर्मोंसे श्रेष्ठ माना है। वह आत्मज्ञानका उपदेश सम्पूर्ण गुह्य रहस्योंमें भी सबसे अधिक गोपनीय है। जो कोई परम पवित्र, हितैषी तथा भक्त हो, उसीको इसका उपदेश करना चाहिये। ब्राह्मणो! मैंने यहाँ जिस ज्ञानका वर्णन किया है, वह अनायास ही आत्माका साक्षात्कार करानेवाला है। वह आत्मतत्त्व न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। उसमें दु:ख और सुख दोनोंका अभाव है। वह साक्षात् ब्रह्म है। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब उसीके रूप हैं। कोई पुरुष हो या स्त्री, जो उस ब्रह्मको जान लेता है, उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। विप्रगण! सब प्रकारके मतोंने इस विषयका जैसा प्रतिपादन किया है, उसके अनुकूल ही मैंने भी वर्णन किया है।

मुनि बोले—ब्रह्माजीने उपायसे ही मोक्षकी प्राप्ति बतायी है, बिना उपायके नहीं। अत: हम न्यायानुकूल उपायको ही सुनना चाहते हैं।

व्यासजीने कहा—महाप्राज्ञ मुनिवरो! हमलोगोंमें ऐसी ही निपुण दृष्टि होनी उचित है। उपायसे ही सब पुरुषार्थोंकी खोज करनी चाहिये। मोक्षका एक ही मार्ग है, उसे सुनो। क्षमाके द्वारा क्रोधका नाश करे। इच्छा, द्वेष और कामको धैर्यसे शान्त करे। तत्त्ववेत्ता योगी ज्ञानके अभ्याससे निद्रा तथा भेद-बुद्धिका निराकरण करे। हितकर, सुपक्व और स्वस्थ भोजनसे वह सब प्रकारके उपद्रवोंको मिटाये। विद्वान् पुरुष संतोषसे लोभ और मोहका,

---

* मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तप:। विज्ञेय: सर्वधर्मेभ्य: स धर्म: पर उच्यते॥
तानि सर्वाणि संधाय मन:षष्ठानि मेधया। आत्मतृप्त: सदाऽऽसीत बहुचिन्त्यमचिन्तयन्॥
(२३७। १८-१९)

तात्त्विक दृष्टिसे विषयोंकी आसक्तिका, दयासे अधर्मका, सबमें अनित्य-बुद्धिके द्वारा स्नेहका तथा योग-साधनासे क्षुधाका निवारण करे। पूर्ण संतोषसे तृष्णाको, उत्थान (उत्तम)-से आलस्यको, निश्चयसे तर्क-वितर्कको, मौनावलम्बनसे बहुत बोलनेकी प्रवृत्तिको, शूरतासे भयको, बुद्धिसे मन और वाणीको तथा ज्ञानदृष्टिसे बुद्धिको जीते। शान्तचित्त हो पवित्र कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए इस बातको समझे। जिसके पाप धुल गये हैं, ऐसा तेजस्वी, मिताहारी तथा जितेन्द्रिय पुरुष काम और क्रोधको अपने वशमें करके ब्रह्ममें प्रवेश करता है। अविवेक और आसक्तिका अभाव, दीनताका त्याग, अविनयसे दूर रहना, चित्तमें उद्वेग न आने देना, स्थिरता धारण किये रहना तथा मन, वाणी और शरीरको संयममें रखना—यह सब मोक्षका प्रसादपूर्ण निर्मल एवं पवित्र मार्ग है।

योग और सांख्यका संक्षिप्त वर्णन

व्यासजी कहते हैं—जिस प्रकार दुर्बल मनुष्य पानीके वेगमें बह जाता है, उसी प्रकार निर्बल योगी विषयोंसे विचलित हो जाता है। किंतु उसी महान् प्रवाहको जैसे हाथी रोक देता है, वैसे योगका महान् बल पाकर योगी भी समस्त विषयोंको रोक लेता है, उनके द्वारा विचलित नहीं होता। योगशक्तिसम्पन्न पुरुष स्वतन्त्रतापूर्वक समस्त प्रजापतियों, मनुओं तथा महाभूतोंमें प्रवेश कर जाते हैं। अमित तेजस्वी योगीके ऊपर क्रोधमें भरे हुए यमराज, काल और भयंकर पराक्रम दिखानेवाली मृत्युका भी जोर नहीं चलता। वह योगबल पाकर अपने हजारों रूप बना सकता और उन सबके द्वारा इस पृथ्वीपर विचर सकता है। फिर तेजको समेट लेनेवाले सूर्यकी भाँति वह उन सभी रूपोंको अपनेमें लीन करके उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हो जाता है। बलवान् योगी बन्धन तोड़नेमें समर्थ होता है। उसमें अपनेको मुक्त करनेकी पूर्ण शक्ति होती है।

द्विजवरो! ये मैंने योगकी स्थूल शक्तियाँ बतायी हैं। अब दृष्टान्तके लिये योगसे प्राप्त होनेवाली कुछ सूक्ष्म शक्तियोंका वर्णन करूँगा तथा आत्म-समाधिके लिये जो चित्तकी धारणा की जाती है, उसके विषयमें भी कुछ सूक्ष्म दृष्टान्त बतलाऊँगा। जिस प्रकार सदा सावधान रहनेवाला धनुर्धर वीर चित्तको एकाग्र करके प्रहार करनेपर लक्ष्यको वेध देता है, उसी प्रकार जो योगी मनको परमात्माके ध्यानमें लगा देता है, वह निःसंदेह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे सावधान मल्लाह समुद्रमें पड़ी हुई नावको शीघ्र ही किनारे लगा देता है, उसी प्रकार योगके अनुसार तत्त्वको जाननेवाला पुरुष समाधिके द्वारा मनको परमात्मामें लगाकर देहका त्याग करनेके अनन्तर दुर्गम स्थान (परम धाम)-को प्राप्त होता है। जिस प्रकार सावधान सारथि अच्छे घोड़ोंको रथमें जोतकर धनुर्धर श्रेष्ठ वीरको तुरंत अभीष्ट स्थानपर पहुँचा देता है, वैसे ही धारणाओंमें चित्तको एकाग्र करनेवाला योगी लक्ष्यकी ओर छूटे हुए बाणकी भाँति शीघ्र परम पदको प्राप्त कर लेता है। जो समाधिके द्वारा अपने आत्माको परमात्मामें लगाकर स्थिर भावसे बैठा रहता है, उसे अजर (बुढ़ापेसे रहित) पदकी प्राप्ति होती है। योगके महान् व्रतमें एकाग्रचित्त रहनेवाला जो योगी नाभि, कण्ठ, पार्श्वभाग, हृदय, वक्षःस्थल, नाक, कान, नेत्र और मस्तक आदि स्थानोंमें धारणाके द्वारा आत्माको परमात्माके साथ युक्त करता है, वह पर्वतके समान महान् शुभाशुभ कर्मोंको भी शीघ्र ही भस्म कर डालता है और इच्छा करते ही उत्तम योगका

आश्रय ले मुक्त हो जाता है।

निर्मल अन्तःकरणवाले यति परमात्माको प्राप्त करके तद्रूप हो जाते हैं। उन्हें अमृतत्व मिल जाता है, फिर वे संसारमें नहीं लौटते। ब्राह्मणो! यही परम गति है। जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित, सत्यवादी, सरल तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले हैं, उन महात्माओंको ही ऐसी गति प्राप्त होती है।

मुनि बोले—साधुशिरोमणे! दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले यति उत्तम स्थानस्वरूप भगवान्‌को प्राप्त होकर क्या निरन्तर उन्हींमें रमण करते रहते हैं? अथवा ऐसी बात नहीं है? यहाँ जो तथ्य हो, उसका यथावत् वर्णन कीजिये। आपके सिवा दूसरे किसीसे हम ऐसा प्रश्न नहीं कर सकते।

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! आपने जो प्रश्न किया है, वह उचित ही है। यह विषय बहुत ही कठिन है। इसमें विद्वानोंको भी मोह हो जाता है। यहाँ भी जो परम तत्त्वकी बात है, उसे बतलाता हूँ; सुनो। इस विषयमें कपिलके सांख्यमतका अनुसरण करनेवाले महात्माओंका विचार उत्तम माना गया है। देहधारियोंकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म शरीरको जानती हैं; क्योंकि वे आत्माके करण हैं और आत्मा भी उनके द्वारा सब कुछ देखता है। आत्मासे सम्बन्ध न रहनेपर वे काठ और दीवारकी भाँति जड़मात्र हैं तथा महासागरमें उसके तटकी भूमिकी भाँति नष्ट हो जाती हैं। विप्रवरो! जब इन्द्रियोंके साथ देहधारी जीव सो जाता है, तब उसका सूक्ष्म शरीर आकाशमें वायुकी भाँति सर्वत्र विचरता रहता है। वह यथायोग्य वस्तुओंको देखता, स्मरण करता, छूता और पहलेकी ही भाँति उन सबका अनुभव करता है। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ स्वयं असमर्थ होनेके कारण विषके द्वारा मारे हुए सर्पोंकी भाँति अपने-अपने गोलकोंमें विलीन रहती हैं। उनकी सूक्ष्म गतिका आश्रय लेकर निश्चय ही आत्मा सर्वत्र विचरता है। सत्त्व, रज, तम, बुद्धि, मन, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—इन सबके गुणोंको व्याप्त करके क्षेत्रज्ञ आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें विचरण करता है। जैसे शिष्य महात्मा गुरुका अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ क्षेत्रज्ञ आत्माका अनुसरण करती हैं। सांख्ययोगी प्रकृतिका भी अतिक्रमण करके शुद्ध, सूक्ष्म, परात्पर, निर्विकार, समस्त पापोंसे रहित, अनामय, निर्गुण तथा आनन्दमय परमात्मा श्रीनारायणको प्राप्त होते हैं। विप्रवरो! इस ज्ञानके समान दूसरा कोई ज्ञान नहीं है। इसके विषयमें तुमको संदेह नहीं करना चाहिये। सांख्यज्ञान सबसे उत्कृष्ट माना गया है। इसमें अक्षर, ध्रुव एवं पूर्ण सनातन ब्रह्मका ही प्रतिपादन हुआ है। वह ब्रह्म आदि, मध्य और अन्तसे रहित, द्वन्द्वोंसे अतीत, सनातन, कूटस्थ और नित्य है—ऐसा शान्तिपरायण विद्वान् पुरुषोंका कथन है। इसीसे जगत्‌की उत्पत्ति और प्रलय आदिरूप सम्पूर्ण विकार होते हैं। गूढ़ तत्त्वोंकी व्याख्या करनेवाले महर्षियोंने शास्त्रोंमें ऐसा ही वर्णन किया है। सम्पूर्ण ब्राह्मण, देवता, वेद तथा सामवेत्ता पुरुष उसी अनन्त, अच्युत, ब्राह्मणभक्त तथा परमदेव परमेश्वरकी प्रार्थना करते और उनके गुणोंका चिन्तन करते रहते हैं।

ब्राह्मणो! महात्मा पुरुषोंमें, वेदोंमें, सांख्य और योगमें तथा पुराणोंमें जो उत्तम ज्ञान देखा गया है, वह सब सांख्यसे ही आया हुआ है। बड़े-बड़े इतिहासोंमें, यथार्थ तत्त्वका वर्णन करनेवाले शास्त्रोंमें तथा इस लोकमें जो कुछ भी ज्ञान श्रेष्ठ पुरुषोंके देखनेमें आया है, वह सब सांख्यसे ही प्राप्त हुआ है। पूर्ण दृष्टि, उत्तम बल, ज्ञान, मोक्ष तथा सूक्ष्म तप आदि जितने भी विषय बताये गये हैं, उन सबका सांख्यशास्त्रमें यथावत् वर्णन किया गया है। सांख्यज्ञानी सदा

सुखपूर्वक कल्याणमय ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। उस ज्ञानको धारण करके भी मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं। सांख्यका ज्ञान अत्यन्त विशाल और परम प्राचीन है। यह महासागरके समान अगाध, निर्मल और उदार भावोंसे पूर्ण है। इस अप्रमेय ज्ञानको भगवान् नारायण ही पूर्णरूपसे धारण करते हैं। मुनिवरो! यह मैंने तुमसे परम तत्त्वका वर्णन किया। यह सम्पूर्ण पुरातन विश्व भगवान् नारायणसे ही प्रकट हुआ है। वे ही सृष्टिके समय संसारकी सृष्टि और संहारकालमें उसका संहार करते हैं।

क्षर-अक्षर-तत्त्वके विषयमें राजा करालजनक और वसिष्ठका संवाद

मुनियोंने पूछा—महामुने! वह अक्षर-तत्त्व क्या है, जिसको प्राप्त कर लेनेपर जीव पुनः इस संसारमें नहीं आता? तथा क्षर पदार्थ क्या है, जिसको जाननेपर भी आवागमन बना रहता है? क्षर और अक्षरके स्वरूपको स्पष्टरूपसे जाननेके लिये हम आपसे यह प्रश्न करते हैं।

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! इस विषयमें राजा करालजनक और वसिष्ठके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। एक समयकी बात है, सूर्यके समान तेजस्वी मुनिवर वसिष्ठ अपने आश्रमपर विराजमान थे। वे परमात्मतत्त्वके प्रतिपादनमें कुशल थे। उन्हें अध्यात्मतत्त्वका निश्चयात्मक ज्ञान था। उस समय राजा करालजनकने उस आश्रमपर पहुँचकर वसिष्ठजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विनययुक्त मधुरवाणीमें कहा—'भगवन्! जहाँसे ज्ञानी पुरुषोंको पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता, उस सनातन ब्रह्मके स्वरूपका मैं वर्णन सुनना चाहता हूँ। इसके सिवा जो क्षर कहा गया है, उसका तथा जिसमें इस जगत्का लय होता है, उस अनामय, कल्याणमय, अक्षरतत्त्वका भी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ; अतः आप इस विषयका उपदेश करें।'

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! सुनो। जिस प्रकार इस जगत्का क्षरण (लय) होता है, उसको तथा जिसमें इसका लय होता है, उस अक्षरको भी बतलाता हूँ। देवताओंके बारह हजार वर्षोंका एक चतुर्युग होता है। एक हजार चतुर्युगको ब्रह्माका एक दिन कहते हैं। इसीको कल्प समझो। दिनके ही बराबर ब्रह्माजीकी रात्रि भी होती है, जिसके अन्तमें वे सोकर उठते हैं और इस विशाल विश्वकी सृष्टि करते हैं। वे यद्यपि निराकार हैं तो भी साकार जगत्की रचना करते हैं। उनमें अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति आदि शक्तियोंका स्वाभाविक निवास है। वे अविनाशी ज्योतिर्मय परमेश्वर हैं। उनके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। वे ही भगवान् हिरण्यगर्भ हैं। वे ही योगशास्त्रमें महान् और विरञ्चि आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं तथा सांख्यशास्त्रमें भी उनका अनेकों नामोंसे वर्णन आता है। उनके नाना प्रकारके अनेक अद्भुत रूप हैं। वे विश्वके आत्मा और एकाक्षर कहे गये हैं। उन्होंने सम्पूर्ण त्रिलोकीको स्वयं ही धारण कर रखा है तथा वे बहुत-से रूप धारण करनेके कारण विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं। वे महातेजस्वी भगवान् अपनी शक्तिसे महत्तत्त्वकी सृष्टि करके फिर अहंकार और उसके अभिमानी देवता प्रजापतिको उत्पन्न करते हैं। राजस, तामस और सात्त्विक भेदसे तीन प्रकारके अहंकारोंसे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय तथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। मनके सहित इन सबका प्रादुर्भाव हुआ है। ये चौबीस तत्त्व सम्पूर्ण शरीरोंमें मौजूद रहते हैं। इनके स्वरूपको भलीभाँति जानकर तत्त्वदर्शी ब्राह्मण कभी शोक नहीं करते।

नरश्रेष्ठ! यह त्रिलोकी उन्हीं तत्त्वोंसे बनी है। देवता, मनुष्य, यक्ष, भूत, गन्धर्व, किंनर, महानाग, चारण, पिशाच, देवर्षि, निशाचर, दंश, कीट, मशक, दुर्गन्धित कीड़े, चूहे, कुत्ते, चाण्डाल, हिरन, पुक्कस, हाथी, घोड़े, गदहे, व्याघ्र, भेड़िये तथा गौ आदि जितने भी मूर्तिमान् पदार्थ हैं, उन सबमें इन्हीं तत्त्वोंका दर्शन होता है। पृथ्वी, जल और आकाशमें ही प्राणियोंका निवास है; अन्यत्र नहीं। यह सम्पूर्ण जगत् व्यक्त कहलाता है। प्रतिदिन इसका क्षरण (क्षय) होता है, इसलिये इसको क्षर कहते हैं। इससे भिन्न तत्त्व अक्षर कहा गया है। सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा परमेश्वरको ही अक्षर कहते हैं। इस प्रकार उस अव्यक्त अक्षरसे उत्पन्न यह व्यक्त नामवाला मोहात्मक जगत् सदा क्षयशील होनेके कारण 'क्षर' नाम धारण करता है। क्षरतत्त्वोंमें सबसे पहले महत्तत्त्वकी सृष्टि हुई है। यही क्षरका निरूपण है। महाराज! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने क्षर-अक्षरका वर्णन किया। अक्षरतत्त्व पच्चीसवाँ तत्त्व है। वह नित्य एवं निराकार है। उसको प्राप्त कर लेनेपर इस संसारमें लौटना नहीं होता। जो अव्यक्ततत्त्व इस व्यक्त जगत्की सृष्टि करता है, वह प्रत्येक शरीरमें साक्षीरूपसे निवास करता है। चौबीस तत्त्वोंका समुदाय तो व्यक्त है, किंतु उनका साक्षी पच्चीसवाँ तत्त्व परमात्मा निराकार होनेके कारण अव्यक्त है। वही सम्पूर्ण देहधारियोंके हृदयमें निवास करता है। वह चेतनरूपसे सबको चेतना प्रदान करता है। वह स्वयं अमूर्त्त होते हुए भी सर्वमूर्तिस्वरूप है। सृष्टि और प्रलयरूप धर्मसे वह सृष्टिस्वरूप भी है और प्रलयस्वरूप भी। वही विश्वरूपमें सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। वह निर्गुण होते हुए भी गुणस्वरूप है। वह परमात्मा करोंड़ों सृष्टि और प्रलय करता रहता है, तथापि उसे अपने कर्तृत्वका अभिमान नहीं होता।

अज्ञानी पुरुष तमोगुण, सत्त्वगुण और रजोगुणसे युक्त होकर तदनुकूल योनियोंमें जन्म लेता है। वह ज्ञान न होने, अज्ञानी पुरुषोंका सेवन करने तथा उनके सम्पर्कमें रहनेसे ऐसा अभिमान करने लगता है कि 'मैं बालक हूँ, यह हूँ, वह हूँ और वह नहीं हूँ' इत्यादि। इस अभिमानके कारण वह प्राकृत गुणोंका ही अनुसरण करता है। तमोगुणके सेवनसे वह नाना प्रकारके तामसिक भावोंको प्राप्त होता है। रजोगुणके सेवनसे राजसिक और सत्त्वगुणके आश्रयसे वह सात्त्विक रूप ग्रहण करता है। काले, लाल और श्वेत—ये जो तीन प्रकारके रूप हैं, उन सबको प्राकृत ही जानो। तमोगुणी पुरुष नरकमें पड़ते है, रजोगुणी मनुष्यलोकमें आते हैं और सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाले जीव सुखके भागी होकर देवलोकमें जाते हैं। केवल पापसे (पापकी प्रधानतासे) पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाना पड़ता है। पुण्य और पाप दोनोंका मेल होनेसे मनुष्यलोककी प्राप्ति होती है तथा केवल पुण्यसे (पुण्यकी प्रधानतासे) जीव देवताका स्वरूप प्राप्त करता है। अव्यक्त परमात्मामें जो स्थिति होती है, उसीको मनीषी पुरुष मोक्ष कहते हैं। वे परमात्मा ही पच्चीसवाँ तत्त्व हैं। ज्ञानसे ही उनकी प्राप्ति होती है।

क्षर-अक्षर तथा योग और सांख्यका वर्णन

जनकने कहा—मुनिश्रेष्ठ! क्षर और अक्षर (प्रकृति और पुरुष) दोनोंका सम्बन्ध तो पत्नी और पतिके सम्बन्धकी भाँति स्थिर जान पड़ता है। जैसे पुरुषके बिना स्त्री तथा स्त्रीके बिना पुरुष संतान नहीं उत्पन्न कर सकते, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी सदा एक-दूसरेसे संयुक्त होकर ही सृष्टि करते हैं। ऐसी दशामें पुरुषका मोक्ष असम्भव जान पड़ता है। यदि मोक्षके निकट पहुँचनेवाला (उसके स्वरूपका स्पष्ट बोध करानेवाला) कोई दृष्टान्त हो तो बताइये; क्योंकि आपको सब कुछ प्रत्यक्ष है। हमारे मनमें भी मोक्षकी अभिलाषा है। हम भी उस पदको प्राप्त करना चाहते हैं, जो अनामय, अजेय, बुढ़ापेसे रहित, नित्य, इन्द्रियातीत एवं परम स्वतन्त्र है।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! तुम्हारा कहना ठीक है, तुमने वेद और शास्त्रोंका दृष्टान्त देकर अपना प्रश्न उपस्थित किया है तथापि अभी ग्रन्थका यथार्थ तत्त्व तुम्हारे समझमें नहीं आया है। जो वेद और शास्त्रोंके ग्रन्थोंको रट लेता है किंतु उसके तत्त्वको नहीं समझता, उसका वह रटना व्यर्थ है। जो याद किये हुए ग्रन्थका अर्थ नहीं जानता, वह तो केवल उसका बोझ ढोता है। उसके तत्त्वका यथार्थ बोध होनेसे ही वह उसके अर्थको ग्रहण कर सकता है। जिसकी बुद्धि स्थूल और मन्द है, अतएव जो ग्रन्थके तत्त्वको ठीक-ठीक जाननेके लिये उत्सुक नहीं है, वह उस ग्रन्थके विषयका निर्णय कैसे कर सकता है। जो मनुष्य ग्रन्थके तत्त्वको जाने बिना ही लोभ अथवा दम्भवश उसपर विवाद करता है, वह पापी नरकमें पड़ता है। इसलिये महाराज! सांख्य और योगके ज्ञाता महात्मा पुरुषोंके मतमें मोक्षका जैसा स्वरूप देखा जाता है, उसे मैं यथार्थरूपसे बतलाता हूँ; सुनो। योगी जिस तत्त्वका साक्षात्कार करते हैं, सांख्यके विद्वान् भी उसीका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो सांख्य और योगको एक समझता है, वही बुद्धिमान् है। जैसे बीजसे बीजकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रियसे इन्द्रिय और देहसे देहकी प्राप्ति होती है। परंतु परमात्मा तो इन्द्रिय, बीज, द्रव्य और देहसे रहित तथा निर्गुण है; अतः उसमें गुण कैसे हो सकते हैं। जैसे आकाश आदि गुण सत्त्वादि गुणोंसे उत्पन्न होते और उन्हींमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सत्त्वादि गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न होकर उसीमें लीन होते हैं। आत्मा तो जन्म-मृत्युसे रहित, अनन्त, सबका द्रष्टा एवं अद्वितीय है। वह सत्त्वादि गुणोंमें केवल आत्माभिमान करनेके कारण ही गुणस्वरूप कहलाता है। गुण तो गुणवान्‌में ही रहते हैं, निर्गुण आत्मामें गुण कैसे रह सकते हैं। अतः गुणोंके स्वरूपको जाननेवाले विद्वान् पुरुष ऐसा मानते हैं कि जब जीवात्मा इन प्राकृत गुणोंमें अपनेपनका अभिमान करता है, उस समय वह गुणवान्-सा ही होकर भिन्न-भिन्न गुणोंको देखता है। किंतु जब उस अभिमानको छोड़ देता है, उस समय देहादिमें आत्मबुद्धिका परित्याग करके अपने विशुद्ध परमात्मस्वरूपका साक्षात्कार करता है। उस परमात्माको बुद्धि आदिसे परे सांख्य-योगस्वरूप बताया गया है। वह सत्त्वादि गुणोंसे रहित, अव्यक्त, ईश्वर (नियामक), निर्गुण, नित्य तथा प्रकृति और उसके गुणोंका अधिष्ठाता पच्चीसवाँ तत्त्व है। यह सांख्य और योगमें कुशल एवं परम तत्त्वकी खोज करनेवाले विद्वानोंका कथन है। इस प्रकार परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले क्षर-अक्षर (प्रकृति-पुरुष)-का स्वरूप बताया गया। सदा एक रूपमें रहनेवाला परमात्मा अक्षर है और नाना रूपोंमें प्रतीत होनेवाला प्राकृत जगत् क्षर कहलाता है। सारांश यह कि एकत्व ही अक्षर है और

नानात्वको ही क्षर कहते हैं। जब जीवात्मा पच्चीसवें तत्त्व परमात्मामें स्थित हो जाता है, उस समय उसकी सम्यक् स्थिति बतायी जाती है। एकत्व और नानात्व दोनों रूपोंमें उस परमात्माका ही दर्शन होता है। तत्त्ववेत्ता पुरुष एकत्व और नानात्व दोनोंके पार्थक्यको भलीभाँति जानता है। मनीषी पुरुष तत्त्वोंकी संख्या पच्चीस बतलाते हैं; परंतु उनमें पच्चीसवाँ तत्त्व परमात्मा है, जो तत्त्वोंसे विलक्षण है।

राजन्! योगीका प्रधान कर्तव्य है ध्यान; ध्यान ही योगियोंका सबसे बड़ा बल है। योगविद्याके ज्ञाता विद्वान् पुरुष मनकी एकाग्रता और प्राणायाम—ये ध्यानके दो भेद बतलाते हैं। योगीको सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके मिताहारी और जितेन्द्रिय होना चाहिये। वह रात्रिके पहले और पिछले भागमें मनको परमात्मामें लगाकर अन्तःकरणमें उनका ध्यान करे। मिथिलेश्वर! सम्पूर्ण इन्द्रियोंको मनके द्वारा स्थिर करके मनको भी बुद्धिमें स्थापित कर दे और पत्थरकी भाँति अविचल हो जाय, तभी उसे योगयुक्त कहते हैं। जिस समय उसे सुनने, सूँघने, स्वाद लेने, देखने और स्पर्श करनेका भी भान नहीं रहता, जब मनमें किसी प्रकारका संकल्प नहीं उठता तथा वह काठकी भाँति स्थिर होकर किसी भी वस्तुका अभिमान या सुध-बुध नहीं रखता, उस समय मनीषी पुरुष उसे अपने स्वरूपको प्राप्त 'योगयुक्त' कहते हैं। ध्याननिष्ठ योगीको अपने हृदयमें धूमरहित अग्नि, किरणमालाओंसे मण्डित सूर्य तथा विद्युत्के प्रकाशकी भाँति तेजस्वी आत्माका साक्षात्कार होता है। धैर्यवान्, मनीषी, वेदवेत्ता और महात्मा ब्राह्मण ही उस अजन्मा एवं अमृतस्वरूप ब्रह्मका दर्शन कर पाते हैं। वह ब्रह्म अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् कहा गया है। सर्वत्र सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित होते हुए भी वह किसीको दिखायी नहीं देता। वेदोंके पारगामी तत्त्वज्ञ विद्वानोंने उसे तमसे दूर—अज्ञानान्धकारसे परे बताया है। वह निर्मल एवं लिङ्गरहित है। यही योगियोंका योग है। इसके सिवा योगका और क्या लक्षण हो सकता है। इस प्रकार साधना करनेवाला योगी सबके द्रष्टा अजर-अमर परमात्माका दर्शन करता है। यहाँतक मैंने तुम्हें योग-दर्शनका यथार्थस्वरूप बतलाया।

अब सांख्यका वर्णन करता हूँ, यह विचार-प्रधान दर्शन है। राजन्! प्रकृतिवादी विद्वान् मूल प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं। उससे दूसरा तत्त्व प्रकट हुआ, जो 'महत्तत्त्व' कहलाता है। महत्तत्त्वसे अहंकार नामक तीसरे तत्त्वकी उत्पत्ति सुनी गयी है। सांख्य-दर्शनके ज्ञाता विद्वान् अहंकारसे सूक्ष्म भूतोंका—पञ्च-तन्मात्राओंका प्रादुर्भाव बतलाते हैं। इन आठोंको प्रकृति कहते हैं; इनसे सोलह तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है, जो 'विकृति' कहलाते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन तथा पाँच स्थूलभूत—ये ही सोलह विकार हैं। ये प्रकृति और विकृति मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं। सांख्यदर्शनमें तत्त्वोंकी इतनी ही संख्या मानी गयी है। सांख्यमार्गपर स्थित और सांख्यविधिके ज्ञाता मनीषी पुरुष ऐसा ही कहते हैं। जो तत्त्व जिससे उत्पन्न होता है, उसका उसीमें लय भी होता है। प्रकृति परमात्माके संनिधानसे अनुलोम-क्रमके अनुसार तत्त्वोंकी रचना करती है अर्थात् प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार तथा अहंकारसे सूक्ष्म भूत आदिके क्रमसे सृष्टि होती है; किंतु उसका संहार विलोमक्रमसे होता है। अर्थात् पृथ्वीका जलमें, जलका तेजमें और तेजका वायुमें लय होता है; इसी प्रकार सभी तत्त्व अपने-अपने कारणमें लीन होते हैं। जैसे समुद्रसे उठी हुई लहरें फिर उसीमें शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तत्त्व अनुलोमक्रमसे उत्पन्न होकर विलोमक्रमसे लीन होते हैं।

नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार प्रकृतिसे ही जगत्‌की उत्पत्ति और उसीमें उसका लय होता है। प्रलयकालमें तो वह एक रूपमें रहती है और सृष्टिके समय नाना रूप धारण करती है। ज्ञान-निपुण पुरुषोंको इसी प्रकार प्रकृतिके एकत्व और नानात्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

प्रकृतिका अधिष्ठाता जो अव्यक्त आत्मा है, उसके विषयमें भी यही बात है। वह भी प्रकृतिसे सम्बन्ध रखनेपर एकत्व और नानात्वको प्राप्त होता है। प्रलयकालमें तो वह भी एक ही रूपमें रहता है, किंतु सृष्टिके समय प्रकृतिको प्रेरित करनेके कारण उसकी ही अनेकतासे वह स्वयं भी अनेक-सा प्रतीत होता है। परमात्मा ही प्रकृतिको प्रसवके लिये उन्मुख करके उसे अनेक रूपोंमें परिणत करता है। प्रकृति और उसके विकारोंको क्षेत्र कहते हैं। चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न जो पच्चीसवाँ तत्त्व महान् आत्मा है, वही उस क्षेत्रमें अधिष्ठातारूपसे निवास करता है। वह क्षेत्रको जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। क्षेत्रज्ञ प्रकृतिजनित पुर (शरीर)-में शयन करता है, इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। वास्तवमें क्षेत्र अन्य वस्तु है और क्षेत्रज्ञ अन्य। क्षेत्र अव्यक्त (प्रकृति) है और क्षेत्रज्ञ उसका ज्ञाता पच्चीसवाँ तत्त्व परमात्मा है। जब पुरुष अपनेको प्रकृतिसे भिन्न जान लेता है, उस समय वह अद्वितीय परमात्मरूपसे स्थित होता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें सम्यग् दर्शन (सांख्य)-का यथार्थ वर्णन किया। जो इसे इस प्रकार जानते हैं, वे समस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

महाराज! इस प्रकार मैंने तुमसे शुद्ध, सनातन आदि ब्रह्मके यथार्थ तत्त्वका वर्णन किया है। तुम मात्सर्यका त्याग करके अपनी बुद्धिसे इस तत्त्वको ग्रहण करो। असत्यवादी, शठ, नपुंसक, कुटिल बुद्धिवाले, अपनेको पण्डित माननेवाले तथा दूसरोंको कष्ट पहुँचानेवाले मनुष्यको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। शिष्यको बोध करानेके लिये ही इस तत्त्वका उपदेश करना उचित है। जो श्रद्धालु, गुणवान्, परायी निन्दासे दूर रहनेवाले, विशुद्ध योगी, विद्वान्, वेदोक्त कर्म करनेवाले, क्षमाशील तथा सबके हितैषी हों, वे ही इस ज्ञानके अधिकारी हैं। जितेन्द्रिय तथा संयमी पुरुषको इसका उपदेश अवश्य देना चाहिये। महाराज कराल! तुमने मुझसे आज परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त किया है। अब तुम्हारे मनमें तनिक भी भय नहीं होना चाहिये। नरेन्द्र! तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया था, उसके अनुसार ही मैंने तुम्हें यह उपदेश किया है; कोई दूसरी बात नहीं कही है। यह महान् ज्ञान मोक्षवेत्ता पुरुषोंका परम आश्रय है। यह मुझे साक्षात् ब्रह्माजीसे प्राप्त हुआ है।

व्यासजी कहते हैं—मुनिवरो! पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठने जिस प्रकार पच्चीसवें तत्त्वरूप परब्रह्मके स्वरूपका वर्णन किया था, उसी प्रकार मैंने तुम्हें बताया है। यही वह ब्रह्म है, जिसे जान लेनेपर मनुष्य फिर इस संसारमें नहीं आता। यह ज्ञान हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीसे महर्षि वसिष्ठको प्राप्त हुआ, वसिष्ठजीसे देवर्षि नारदको मिला और देवर्षि नारदसे मुझको प्राप्त हुआ। वही यह सनातन ज्ञान मैंने तुम सब लोगोंको बताया है; यह परम पद है, इसका श्रवण करके अब तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जिसने क्षर और अक्षरके भेदको जान लिया, उसे किसी प्रकारका भय नहीं है। जो उन्हें ठीक-ठीक नहीं जानता, उसीको भय है। मूर्ख मनुष्य इस तत्त्वको न जाननेके कारण बारंबार उपद्रवग्रस्त हो मरता और मरनेके बाद पुनः हजारों बार जन्म-मृत्युके कष्ट भोगता है। वह देव, मनुष्य और पशु-पक्षी आदिकी योनियोंमें भटकता रहता है। अज्ञानरूपी समुद्र अव्यक्त, अगाध और भयंकर है। इसमें प्रतिदिन कितने ही प्राणी

डूबते चले जा रहे हैं। तुमलोग यह उपदेश सुनकर इस अगाध भवसागरसे पार हो गये हो। अब तुममें रजोगुण और तमोगुणका भाव नहीं रह गया। तुम्हारी शुद्ध सत्त्वमें स्थिति हो गयी है। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने सारसे भी सारभूत परमतत्त्वका वर्णन किया। यह परम मोक्षरूप है। इसे जान लेनेपर मनुष्य फिर इस संसारमें लौटकर नहीं आता। जो नास्तिक हो, जिसके हृदयमें गुरु और भगवान्‌के प्रति भक्ति न हो, जिसकी बुद्धि खोटी और हृदय श्रद्धासे विमुख हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं करना चाहिये।

श्रीब्रह्मपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार

लोमहर्षणजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार पूर्वकालमें महर्षि व्यासने सारभूत निर्दोष वचनोंद्वारा मधुरवाणीमें मुनियोंको यह पुराण सुनाया था। इसमें अनेक शास्त्रोंके शुद्ध एवं निर्मल सिद्धान्तोंका समावेश है। यह सहज शुद्ध है और अच्छे शब्दोंके प्रयोगसे सुशोभित होता है। इसमें यथास्थान पूर्वपक्ष और सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणको न्यायानुकूल रीतिसे सुनाकर परम बुद्धिमान् वेदव्यासजी मौन हो गये। वे श्रेष्ठ मुनि भी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले तथा वेदोंके तुल्य माननीय इस आदि ब्रह्मपुराणको सुनकर बहुत प्रसन्न और विस्मित हुए। उन्होंने मुनिवर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासकी बारंबार प्रशंसा की।

मुनि बोले—मुनिश्रेष्ठ! आपने हमें वेदोंके तुल्य प्रामाणिक तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला सर्वपापहारी श्रेष्ठ पुराण सुनाया है। यह कितने हर्षकी बात है। हमने भी इस विचित्र पदोंवाले पुराणका अक्षर-अक्षर सुना है। प्रभो! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो। महाभाग! आप देवताओंमें बृहस्पतिकी भाँति सर्वज्ञ हैं, महाप्राज्ञ और ब्रह्मनिष्ठ हैं। महामते! हम आपको नमस्कार करते हैं। आपने महाभारतमें सम्पूर्ण वेदोंके अर्थ प्रकट किये हैं। महामुने! आपके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है। जिन्होंने छहों अङ्गोंसहित चारों वेदों तथा सम्पूर्ण व्याकरणोंको पढ़कर महाभारत शास्त्रकी रचना की, उन ज्ञानात्मा भगवान् वेदव्यासको नमस्कार है। प्रफुल्ल कमलदलके समान बड़े-बड़े नेत्रों तथा विशाल बुद्धिवाले व्यासजी! आपको नमस्कार है। आपने (जगत्‌को प्रकाश देनेके लिये) महाभारतरूपी तेलसे भरे हुए ज्ञानरूपी दीपकको जलाया है।*

यों कहकर उन महर्षियोंने व्यासजीका पूजन किया। फिर व्यासजीने भी उन सबका सम्मान किया। तत्पश्चात् वे कृतार्थ होकर जैसे आये थे, उसी प्रकार अपने आश्रमको लौट गये।

मुनिवरो! आपने हमसे जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसके अनुसार हमने भी सब पापोंका नाश करनेवाले परम पुण्यमय इस सनातन पुराणका वर्णन किया! श्रीव्यासजीकी कृपासे ही मैंने यह सब कुछ आपलोगोंको सुनाया है। गृहस्थ, संन्यासी और ब्रह्मचारी—सबको ही इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। यह मनुष्योंको धन और सुख

* नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥
(२४५। ११)

देनेवाला, परम पवित्र एवं पापोंको दूर करनेवाला है। परम कल्याणकी अभिलाषा रखनेवाले ब्रह्मपरायण ब्राह्मण आदिको संयम और प्रयत्नपूर्वक यह पुराण सुनना चाहिये। इसको सुननेसे ब्राह्मण विद्या, क्षत्रिय संग्राममें विजय, वैश्य अक्षय धन और शूद्र सुख पाता है। पुरुष पवित्र होकर जिस-जिस काम्य वस्तुका चिन्तन करते हुए इस पुराणका श्रवण करता है, उस-उसको निश्चय ही प्राप्त कर लेता है। यह ब्रह्मपुराण भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला है। इससे सब पापोंका नाश हो जाता है। यह सब शास्त्रोंसे विशिष्ट और समस्त पुरुषार्थोंका साधक है।

यह जो मैंने आपलोगोंको वेदतुल्य पुराणका श्रवण कराया है, इसको सुननेसे सब प्रकारके दोषोंसे प्राप्त होनेवाली पापराशिका नाश हो जाता है। प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा अर्बुदारण्य (आबू)-में उपवास करनेसे जो फल मिलता है, वह इसके श्रवणमात्रसे मिल जाता है। एक वर्षतक अग्निमें हवन करनेसे पुरुषको जो महापुण्यमय फल प्राप्त होता है, वह इसे एक बार सुननेसे ही मिल जाता है। ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीको यमुनामें स्नान करके मथुरापुरीमें श्रीहरिके दर्शनसे मनुष्य जिस फलका भागी होता है, वह एकाग्रचित्त होकर इस ब्रह्मपुराणकी कथा कहनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो इसका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी उसी फलको प्राप्त करता है। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक इस वेदसम्मित पुराणका पाठ या श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है और जो ब्राह्मण मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर पर्वोंके दिन तथा एकादशी और द्वादशी तिथिको ब्रह्मपुराण बाँचकर दूसरोंको सुनाता है, वह वैकुण्ठ धाममें जाता है।* यह पुराण मनुष्योंको यश, आयु, सुख, कीर्ति, बल, पुष्टि तथा धन देनेवाला और अशुभ स्वप्नोंका नाश करनेवाला है। जो प्रतिदिन तीनों संध्याओंके समय एकाग्रचित्त हो श्रद्धापूर्वक इस श्रेष्ठ उपाख्यानका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। इसको पढ़ने और सुननेसे रोगातुर मनुष्य रोगसे, कैदमें पड़ा हुआ पुरुष वहाँके बन्धनसे, भयसे डरा हुआ मानव भयसे तथा आपत्तिग्रस्त पुरुष आपत्तिसे छूट जाता है। इतना ही नहीं; इसके पाठ और श्रवणसे पूर्वजन्मोंके स्मरणकी शक्ति, विद्या, पुत्र, धारणावती बुद्धि, पशु, धैर्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जिन-जिन कामनाओंको मनमें लेकर मनुष्य संयतचित्तसे इस पुराणका पाठ करता है, उन सबकी उसे प्राप्ति हो जाती है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।†

जो मनुष्य एकमात्र भगवान्‌की भक्तिमें चित्त लगाकर पवित्र हो अभीष्ट वर देनेवाले लोकगुरु भगवान् विष्णुको प्रणाम करके स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले इस पुराणका निरन्तर श्रवण करता है, उसके सारे पाप छूट जाते हैं। वह इस लोकमें उत्तम सुख भोगकर स्वर्गमें भी दिव्य सुखका अनुभव करता है। तत्पश्चात् प्राकृत गुणोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके निर्मल पदको प्राप्त होता है। इसलिये एकमात्र मुक्तिमार्गकी इच्छा रखनेवाले स्वधर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको,

---

* इदं हि श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसम्मितम्। यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः॥
श्रावयेद्ब्राह्मणो यस्तु सदा पर्वसु संयतः। एकादश्यां द्वादश्यां च विष्णुलोकं स गच्छति॥
(२४५। २७-२८)

† यान् यान् कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानसः। तांस्तान् सर्वानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः॥
(२४५। ३३)

मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले कल्याणकामी उत्तम क्षत्रियोंको, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न वैश्योंको तथा धर्मनिष्ठ शूद्रोंको भी प्रतिदिन इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। यह बहुत ही उत्तम, अनेक फलोंसे युक्त तथा धर्म, अर्थ एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। आप सब लोग श्रेष्ठ पुरुष हैं, अतः आपकी बुद्धि निरन्तर धर्ममें लगी रहे। एकमात्र धर्म ही परलोकमें गये हुए प्राणीके लिये बन्धुकी भाँति सहायक है। धन और स्त्री आदि भोगोंका चतुर-से-चतुर मनुष्य भी क्यों न सेवन करे, उनपर न तो कभी भरोसा किया जा सकता है और न वे सदा स्थिर ही रहते हैं। मनुष्य धर्मसे ही राज्य प्राप्त करता है, धर्मसे ही वह स्वर्गमें जाता है तथा धर्मसे ही मानव आयु, कीर्ति, तपस्या एवं धर्मका उपार्जन करता है और धर्मसे ही उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस लोकमें तथा परलोकमें भी धर्म ही मनुष्यके लिये माता-पिता और सखा है। इस लोकमें भी धर्म ही रक्षक है और वही मोक्षकी भी प्राप्ति करानेवाला है। धर्मके सिवा कुछ भी काम नहीं आता। यह श्रेष्ठ पुराण परम गोपनीय तथा वेदके तुल्य प्रामाणिक है। खोटी बुद्धिवाले और विशेषतः नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। यह श्रेष्ठ पुराण पापोंका नाश तथा धर्मकी वृद्धि करनेवाला है। साथ ही इसे अत्यन्त गोपनीय माना गया है। मुनियो! मैंने आपलोगोंके सामने इसका कथन किया और आपने भी इसे भलीभाँति सुन लिया। अब आज्ञा दीजिये, मैं जाता हूँ।*

श्रीब्रह्मपुराण सम्पूर्ण

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

---

* धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति। आयुश्च कीर्तिं च तपश्च धर्मं धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः॥
धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य धर्मः सखा चात्र परे च लोके। त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च धर्मादृते नास्ति तु किंचिदेव॥
इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसम्मितम्। न देयं दुष्टमतये नास्तिकाय विशेषतः॥
इदं मयोक्तं प्रवरं पुराणं पापापहं धर्मविवर्धनं च। श्रुतं भवद्भिः परमं रहस्यमाज्ञापयध्वं मुनयो व्रजामि॥
(२४५। ३७—४०)